जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature & Cultural Studies
New Delhi-110067, INDIA

Centre of Indian languages

Date : 19-07-2004

DECLARATION

I declare, that the work done in this thesis entitle **"NAGARJUN KE KAVYA MEIN ABHIVYAKTA SAMAJ, SAMAY AVAM SAUNDARYA"** submitted by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University / Institution.

Anjaykumar

(ANJAY KUMAR)
Research Scholar

19.7.2004

(DR. GOBIND PRASAD)
Supervisor
Center of Indian Languages
School of Languages, Literature &
Cultural Studies
J. N. U. New Delhi - 110067

(PROF. NASEER AHMAD KHAN)
Chairperson
Center of Indian Languages
School of Languages, Literature &
Cultural Studies
J. N. U. New Delhi - 110067

समर्पणः

कवि नागार्जुन को

जिनका जीवन-संघर्ष

और

सम्पूर्ण साहित्यिक-कर्म

निम्नवर्ग के लिए था ।

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

आत्मकथन I-V

पहला अध्याय 1-16

नागार्जुन का जीवन एवं बहुआयामी व्यक्तित्व : काव्यात्मक अभिव्यक्ति

(1) जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षः काव्यात्मक अभिव्यक्ति

(2) बहुआयामी व्यक्तित्वः कविता के दर्पण में

दूसरा अध्याय 17-39

नागार्जुन की काव्य दृष्टि

(1) जन प्रतिबद्धता एवं पक्षधरता का प्रश्न

(2) रूपवादी रुझानों पर व्यंग्यात्मक प्रहार

(3) कवियों पर कविताएँ

(4) संघर्ष और सौंदर्य का सामंजस्य

तीसरा अध्याय 40-87

नागार्जुन के हिन्दी काव्य में अभिव्यक्त भारतीय समाज

(1) नागार्जुन के हिन्दी काव्य में अभिव्यक्त व्यापक समाज

(2) नागार्जुन के हिन्दी काव्य में निम्न मध्यवर्ग एवं श्रमिक समाज

(3) नागार्जुन के हिन्दी काव्य में दलित, आदिवासी एवं स्त्री समाज

(4) नागार्जुन के हिन्दी काव्य में अन्य उपेक्षित पात्र एवं मानवेतर जीव-जन्तु

चौथा अध्याय 88-141

नागार्जुन की हिन्दी कविता में प्रतिरोधात्मक स्वर-संदर्भ : राजनीति एवं सत्तातंत्र

(1) स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिः आदर्श और मूल्यों का विघटन

(2) भारतीय शासनतंत्र : भ्रष्टतंत्र की दास्तान

(3) आंदोलन एवं क्रांतिः आस्था से अनास्था तक

(4) कविता के बाड़े में भारतीय नेताः एक व्यंग्य अलबम

पाँचवाँ अध्याय 142-171

नागार्जुन की हिन्दी कविता में प्रकृति सौन्दर्य

(1) नागार्जुन की हिन्दी कविता में ग्राम्य-प्रकृति

(2) नागार्जुन की हिन्दी कविता में पर्वतीय प्रकृति के विविध रंग

(3) ऋतु-सौन्दर्य

(4) प्रकृति के विविध उपादान : सौन्दर्य का नया संसार

छठा अध्याय 172-230

नागार्जुन की हिन्दी कविता का रूप-शिल्प

(1) नागार्जुन की हिन्दी कविताओं का स्थापत्य

(2) विविध शैलियाँः बदलती संवेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति

(3) भाषा का विराट उत्सव

(4) अन्य भाषिक उपकरण

उपसंहार 231-233

ग्रंथानुक्रमणिका 234-242

परिशिष्ट 'क' : आधार ग्रंथ

परिशिष्ट 'ख' : संदर्भ ग्रंथ

परिशिष्ट 'ग' : पत्र- पत्रिकाएँ

आत्मकथन

जन प्रतिबद्धता, विषय वैविध्य, व्यवस्था विरोध, व्यंग्यात्मक प्रहार एवं भाषिक चमत्कार के कारण नागार्जुन आधुनिक युग में मेरे सर्वाधिक प्रिय कवि हैं।

जबसे नागार्जुन के काव्य से मेरा परिचय हुआ तबसे मैं उनका प्रशंसक होता गया। एम.फिल. में 'नागार्जुन की कविताओं में व्यंग्य' विषय पर काम करते हुए मुझे लगा कि सिर्फ व्यंग्य कविताओं का अध्ययन करके मैं नागार्जुन से उऋण नहीं हो सकता। मुझे समग्रता में इनके काव्य का मूल्यांकन करना चाहिए, लेकिन उनके विराट काव्य-व्यक्तित्व को लघु शोध प्रबंध में मूल्यांकित कर पाना असंभव था। अतः मैंने 'समाज, समय एवं सौन्दर्य' के सन्दर्भ में नागार्जुन के काव्य को रेखांकित करने का प्रयास किया। समुद्र में गोता लगाने वाला गोताखोर ही जानता है कि समुद्र कितना अगाध है और अभी बहुत से रत्नों को खोजना बाकी है। बहरहाल शोधग्रंथ के बावजूद बहुत कुछ कहना शेष रह गया है। नागार्जुन का सम्पूर्ण साहित्य विभिन्न दृष्टियों से कई शोधग्रंथों की अपेक्षा रखता है। कई भाषाओं में, विविध विधाओं में उन्होंने इतना कुछ लिखा है कि सब पर एक जगह लिखना संभव नहीं। सिर्फ उनका काव्य-साहित्य ही इतना बहुआयामी है जिसपर कई दृष्टियों से काम करने की गुंजाइश है।

कविता को जानने-समझने के लिए कवि के 'जीवन' और 'व्यक्तित्व' को जानना-समझना जरूरी होता है इसलिए प्रथम अध्याय में मैंने नागार्जुन के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं और उनके व्यक्तित्व को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

कवि का जन्म कब, कहाँ, किस परिवार और समाज में हुआ, यह जानना जरूरी है क्योंकि वहीं से उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है। परिवार, परिवेश, शिक्षा-दीक्षा, अनुभव-यात्रा के साथ उस समय का समाज कवि के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है जिससे उनके द्वारा सृजित साहित्य की दिशा तय होती है, इन्हीं सब स्थितियों पर इस अध्याय में विचार-विमर्श हुआ है। नागार्जुन का जीवन घटना संकुल रहा है लेकिन मैंने उन्हीं मुख्य घटनाओं का उल्लेख किया है जिन्होंने उनके जीवन को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। इस संदर्भ में जन्म-तिथि, जन्म-स्थान और पारिवारिक सूचनाओं को दुहराना पड़ा है। गरीब कृषक कुल में जन्म लेने के कारण गरीबों और कृषकों के प्रति आजीवन उनकी हमदर्दी को रेखांकित किया जा सकता है। गाँव में जन्म लेने के कारण धरती से उनके गहरे लगाव को उनके साहित्य में हर जगह देखा जा सकता है। यायावरी ने उन्हें पूर्ण रूप से 'हिन्दुस्तानी' और 'जन-कवि' बनाया। मैंने अंतः साक्ष्य के आधार पर उनके जीवन के इन पहलुओं पर प्रकाश डाला है क्योंकि वही सबसे अधिक प्रमाणिक है। उनका जीवन संघर्ष उनके काव्य में कई जगहों पर उभरा है, जिससे मुझे काम करने में सहूलियत हुई। कवि का व्यक्तित्व कविता में कहीं..न..कहीं उभरता है, मैंने काव्य में उभरते उनके व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए उसका विश्लेषण किया है। कवि व्यक्तित्व की छाप काव्य पर भी पड़ती है इसी संदर्भ में मैंने उनके व्यक्तित्व पर विचार किया है। इस तरह पहला अध्याय शोधग्रंथ की भूमिका है।

दूसरे अध्याय में कवि की 'काव्य-दृष्टि' पर विचार किया गया है। किसी भी साहित्यकार का साहित्य उसके दृष्टिकोण से प्रभावित होता है। वह क्या सोचता है? किस तरह सोचता है? किन चीजों को साहित्य में उठाता है, किस तरह अभिव्यक्त करता है? सबकुछ उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है इसलिए उसका अध्ययन

जरूरी है। इस अध्याय में उनकी जन प्रतिबद्धता एवं पक्षधरता पर विचार किया गया है। यह बिन्दु उनके काव्य का प्रस्थान बिन्दु है क्योंकि उनका पूरा साहित्यिक कर्म जन प्रतिबद्धता एवं पक्षधरता का परिणाम है। यहीं से उनका रचनात्मक संघर्ष प्रारम्भ होता है जो प्रकृति और सौन्दर्य की घाटियों से होता हुआ लोक कल्याण के लक्ष्य तक पहुँचता है। विषय वस्तु, भाव, विचार, भाषा और शिल्प पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है इसलिए इसपर विचार किया गया है। अपनी पक्षधरता उन्होंने ऊँचे स्वर में घोषित की है और इसका महत्त्व बताया है। जो तटस्थ रहने वाले साहित्यकार हैं उनपर व्यंग्य वाण छोड़े हैं। कवि ने रूपवादी, छायावादी, पलायनवादी, आत्मकेन्द्रित कवियों की खबर ली है और सामाजिक, विद्रोही, संघर्षशील साहित्यकारों की प्रशंसा की है, इन सबका उल्लेख भी इसी अध्याय में किया गया है। नागार्जुन किन चीजों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, किन ताकतों से संघर्ष कर रहे हैं और उनकी नजर में सुन्दर कौन है यह सब उनकी काव्य दृष्टि से ही निर्धारित होता है इसलिए इसी अध्याय में उसका विवेचन किया गया है। भाषा, शिल्प, छंद, लय, तुक, बिम्ब, प्रतीक, मिथक इत्यादि तत्त्वों के बारे में उनके विचार का विवेचन यहाँ जान बूझ कर नहीं किया गया है। जहाँ उपरोक्त तत्त्वों का विवेचन हुआ है वहीं कवि का दृष्टिकोण भी साथ-साथ रखा गया है इसलिए यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

सच्चे अर्थों मे तीसरा अध्याय ही शोधग्रंथ का प्रस्थान बिन्दु है। भारतीय समाज बड़ा व्यापक है जिसके एक बड़े भाग का चित्रण-वर्णन नागार्जुन ने अपने काव्य में किया है। इसमें विभिन्न वर्ग, वय और श्रेणी के लोग तो हैं ही मानवेतर जीव-जन्तु भी शामिल हैं। नागार्जुन का काव्य-फलक इतना बड़ा है कि उसमें शोषक-शोषित, स्त्री-पुरूष, दलित-आदिवासी, बच्चे-बूढ़े, पशु-पक्षी, अमीर-गरीब, शहरी-देहाती, बुद्धिजीवी-अनपढ़, सुन्दर-कुरूप आदि सभी तरह के लोग समा गए हैं। उनका सुख-दुख, हास-विलास, व्यंग्य-मुस्कान, समस्या-समाधान, दुख-दर्द, यथार्थ-स्वप्न, आशा-आकांक्षा, संघर्ष-सौन्दर्य सब कुछ यहाँ मौजूद है जिसका विवेचन किया गया है। कवि की सहानुभूति शोषितों, गरीबों, दलितों, स्त्रियों और आदिवासियों के प्रति है जबकि शोषकों, नेताओं, धनी वर्ग एवं अत्याचारियों के लिए वहाँ घृणा, व्यंग्य और विरोध ही है। श्रमिकों, किसानों, बच्चों और पशु-पक्षियों के प्रति कवि का प्रेम अगाध है जिसे हर जगह देखा जा सकता है। यह अध्याय इन्हीं कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

चौथे अध्याय में नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं का विवेचन किया गया है। उन्होंने बड़े पैमाने पर राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं जो अपने समय की राजनीति पर टिप्पणी हैं। ये कविताएँ प्रतिरोधात्मक हैं। कहीं भ्रष्ट होती राजनीति का पर्दाफाश है, कहीं विसंगतियों -विडम्बनाओं पर टिप्पणी है तो कहीं राजनेताओं पर व्यंग्य है। इन कविताओं में सत्तातंत्र, विपक्ष एवं राजनेताओं के प्रति घृणा का भाव है। कुछ नेताओं को छोड़कर अधिकांश नेताओं की कमजोर प्रवृत्तियों, गलत नीतियों पर व्यंग्य किया गया है। आजाद हिन्दुस्तान के विकास का सपना कैसे टूटता है और राजनीति भ्रष्टाचार के दलदल में कैसे फँसती जाती है उन सब स्थितियों का विवेचन यहाँ किया गया है। कवि जनता के पक्ष में खड़ा है और सबसे जवाब तलब कर रहा है। 1940 के बाद की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं पर नागार्जुन ने काव्यात्मक हस्तक्षेप किया है। स्वयं नागार्जुन सक्रिय विरोध करते रहे हैं जिसके कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा है। इन सबका विवेचन इसी अध्याय में किया गया है। सत्ता विरोध नागार्जुन का स्थायी भाव है। इन कविताओं में आक्रोश है, गुस्सा है, घृणा है, व्यंग्य है, विरोध है लेकिन यहाँ जनता के प्रति प्रतिबद्धता भी है, जन-संघर्षों का समर्थन भी है और सत्तातंत्र से टकराने की अदम्य लालसा भी है। वे सत्ता तंत्र के विरोध में खड़े जन आन्दोलनों का समर्थन करते हैं, परिवर्तनकामी आन्दोलनों में साथ भी देते हैं। इस मायने में वे लड़ाकू कवि के रूप में सामने आते हैं। आपातकाल में उन्होंने इंदिरा गाँधी का विरोध व्यंग्य कविताएँ लिखकर तो किया ही और इसमें सक्रिय हिस्सा भी लिया। जेल जाने पर उन्हें सम्पूर्ण क्रांति की

असलियत मालूम हुई तो उन्होंने बाहर आकर उसका भी विरोध किया। जयप्रकाश नारायण की खामियों पर भी उन्होंने व्यंग्य किया, इससे उनके विचलन का पता नहीं चलता, इससे उनकी सतत जागरूकता का पता चलता है। पहले भी वे जनता के साथ थे और बाद में भी। तानाशाही शक्तियों का विरोध करना चाहिए और जनतंत्र एवं जनता का साथ देना चाहिए यह उनके मन में था जिसके तहत वे जेल गए, लेकिन साम्प्रदायिक और दक्षिणपंथी शक्तियों के सहयोग से परिवर्तन आए यह वे नहीं चाहते थे इसलिए वे लौट आए। किसी दल, किसी नेता की गुलामी उन्होंने कभी नहीं की, वे स्वविवेक और अपनी जन प्रतिबद्धता को अधिक महत्त्व देते हैं। देश और जनता के सामने सब लोग छोटे हैं इसलिए उन्होंने सबकी कमजोरियों पर व्यंग्य किया। इन सब तथ्यों का विवेचन इसी अध्याय में किया गया है। नागार्जुन ने राजनेताओं के कार्य-कलाप, व्यक्तित्व-चरित्र पर तो टिप्पणी की ही है नाम ले लेकर उनकी प्रवृत्तियों पर व्यंग्यपूर्ण प्रहार भी किया है। लगता है, हर तरह के नेताओं का व्यंग्यपूर्ण अलबम उनके काव्य में मौजूद है, सबका विवेचन सिलसिलेवार ढंग से करने का प्रयास किया गया है। नेताओं के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी शोधार्थी ने कवि की टिप्पणी का संवेदना के स्तर पर साथ दिया है। इंदिरा गाँधी पर किए गए निकृष्टतम व्यंग्य का विरोध शोधार्थी ने किया है क्योंकि मेरी समझ में व्यंग्य का भी एक स्तर होना चाहिए और साहित्यिक व्यंग्य की भी एक मर्यादा होनी चाहिए। गाली-गलौज के स्तर पर उतर कर न रचना साहित्यिक रह पाती है और न विरोध मर्यादित। कवि ने जहाँ कहीं भी अमर्यादित व्यंग्य लिखा है, व्यक्तिगत आक्षेप लगाया है शोधार्थी ने उससे अपनी असहमति जताई है। यह अध्याय राजनीतिक घमासान का है इसलिए नकारात्मक पहलुओं पर ही अधिक चर्चा हुई है। नेताओं के चरित्र में बदलाव नहीं हुआ है। अतः कई बातों के विवेचन में पुनरावृत्ति दोष आ गया है। एक ही कविता का विवेचन कई जगहों पर किया गया है क्योंकि उसमें कई संदर्भ छुपे हैं।

पाँचवाँ अध्याय प्रकृति पर केन्द्रित है। नागार्जुन छायावाद के बाद प्रकृति के बड़े कवि हैं। प्रकृति उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करती है। प्रकृति के हर रूप पर वे मुग्ध हैं। चाहे ग्राम्य प्रकृति हो या पर्वतीय प्रकृति नागार्जुन उनके रूप-रंग, सौन्दर्य-सुगन्ध से परस्पर जुड़ जाते हैं। कवि का प्रकृति प्रेम काल्पनिक और हवाई नहीं वास्तविक और आत्मीय है। वे अपने आप को प्रकृति का ही एक अंश मानते हैं और उसी में एकाकार हो जाते है। नागार्जुन प्रकृति संरक्षण और प्रदूषण मुक्ति के प्रश्न को भी कविताओं में उठाते हैं। यह उनकी बड़ी विशेषता है। भावुकता से अधिक यहाँ पृथ्वी और प्रकृति को प्राकृतिक रूप में बचाने की इच्छा प्रकट हुई है। गाँव में जन्म लेने के कारण ग्रामीण प्रकृति में उनकी आत्मा तृप्त होती है। कई कविताओं में उनकी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। प्रवास में रहने पर वे अपनी पत्नी के साथ पूरे ग्रामीण परिवेश को याद करते हैं। उसी तरह बहुत दिनों के बाद गाँव लौटने पर ग्रामीण प्रकृति के रूप-रंग-रस-स्पर्श प्राप्त करने पर जो तृप्ति वे महसूस करते हैं वह अभूतपूर्व है। पर्वतीय प्रदेश की प्रकृति के विविध रूप का चित्रण उन्होंने बड़े पैमाने पर अपनी कविताओं में किया है। वर्षा ऋतु उनकी प्रिय ऋतु थी, वर्षा के आते ही वे मानो बेचैन हो जाते हैं, बादलों के उमड़ते-धुमड़ते रूप को उन्होंने कई बार कविताओं में चित्रित किया है। वर्षा ऋतु के अत्याचार को भी वो वरदान मानते हैं क्योंकि इसी से धरती की प्यास बुझती है और फसलों को नई जिन्दगी मिलती है। इन कविताओं में उनके इन्द्रिय बोधात्मक सौन्दर्य रूप को देखा जा सकता है। पर्वतीय प्रदेश में बर्फ पड़ने का तो अच्छा चित्रण कवि ने किया ही है वहाँ के पेड़-पौधों का भी अच्छा स्केच खींचा है। उन्होंने प्रकृति के विविध उपादानों के अनुपम सौन्दर्य को चित्रित किया है जैसे-नदी, पेड़, पत्ते, फूल, चाँद, तारे इत्यादि। कवि के प्रकृति-चित्रण की विशेषताओं को इस अध्याय में विश्लेषित किया गया है।

छठे अध्याय में नागार्जुन की हिन्दी कविता के रूप-शिल्प एवं काव्य-भाषा पर विचार किया गया है। नागार्जुन विषय वस्तु के अनुरूप शिल्प चुनते हैं, कथ्य के अनुरूप कहीं प्रबन्ध काव्य का ढाँचा उठाते हैं तो कहीं मुक्तछंद में अपनी बात रखते हैं। कहीं पुराने छंदों का इस्तेमाल करते हैं तो कहीं लोकछंद का सर्जनात्मक उपयोग करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि भाव, विचार और कथ्य के अनुरूप वे कविता का रूप-शिल्प बदलते हैं। कई बार एक तरह की ही बातों को अलग-अलग शिल्प में प्रस्तुत करते हैं इन सब तथ्यों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उनकी लगभग 50 कविताओं के ढाँचे को चार्ट बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ताकि उनके रूप-शिल्प को सहजता से समझा जा सके।

नागार्जुन की काव्य भाषा बहुस्तरीय है। जहाँ एक ओर वे संस्कृतनिष्ठ भाषा में कविताएँ रचते हैं वहीं दूसरी ओर आम बोलचाल की हिन्दी में भी बड़ी सहजता से कविताएँ लिखते हैं। सम्प्रेषणीयता उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे हर तरह की शब्दावली का सिद्ध प्रयोग करते हैं—संस्कृत, तद्भव, देशज, विदेशज। ग्रामीण और स्थानीय शब्दों को भी वे सहज ढंग से साहित्य का श्रृंगार बनाते हैं। नागार्जुन के काव्य में अलंकारों, मुहावरों एवं कहावतों का बड़ा सुन्दर समावेश हुआ है जिस पर विचार-विमर्श किया गया है। इसी तरह छंद, तुक, टेक, ध्वनि, लय, धुन, संगीत एवं कथनभंगिमा के कलात्मक प्रयोग पर भी विचार किया गया है। काव्य भाषा के विविध उपादानों यथा-बिम्ब, प्रतीक, मिथक का भी विश्लेषण किया गया है।

नागार्जुन साहित्य को जानने समझने के लिए उन पर लिखे जिन लेखों एवं पुस्तकों का अध्ययन मैंने किया उन सबका मैं आभारी हूँ किन्तु जिन आलोचकों, लेखकों ने मेरी समझ को विकसित किया वे मेरे लिए सदैव श्रद्धा के पात्र हैं। यहाँ सबका नामोल्लेख तो नहीं किया जा सकता लेकिन उनमें से प्रमुख हैं—डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट, डॉ. विजय बहादुर सिंह, डॉ. अजय तिवारी, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ. केदारनाथ सिंह, डॉ. मैनेजर पाण्डेय, डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. प्रेमशंकर एवं डॉ. अरूण कमल।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अपने भारतीय भाषा केन्द्र के हिन्दी के प्राध्यापकों का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने बीच-बीच में निगरानी और पूछताछ करके मेरे शोधकार्य को गति दी। अनुशासन और कड़ाई पढ़ाई का ही हिस्सा है। इस संदर्भ में मैं डॉ. मैनेजर पाण्डेय और डॉ. वीर भारत तलवार का आभारी हूँ।

अपने शोध निर्देशक डॉ. गोबिन्द प्रसाद के कृतज्ञता ज्ञापन के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। जिस स्नेह, आत्मीयता, अनुशासन और सहयोग से उन्होंने मेरे शोध कार्य को सम्पन्न करवाया वह उन्हीं से संभव था। जिस परिश्रम और निष्ठा से उन्होंने मेरी त्रुटियों को दूर किया वह दुर्लभ है, यह शोधग्रंथ उन्हीं के आर्शीवाद का फल है।

दिवंगत दादी और माँ की वात्सल्यमयी मूर्ति को प्रणाम जिन्होंने कर्म और स्नेह का पाठ आजीवन पढ़ाया। पूरे परिवार के स्नेह और सहयोग के कारण ही मैं शिक्षा के इस मुकाम तक पहुँच पाया। आज मैं जो कुछ हूँ वहाँ तक मुझे मेरे कर्मठ, साहसी और जुझारू पिता ने ही पहुँचाया है। यह जिन्दगी और यह शिक्षा उन्हीं की तपस्या का प्रताप है। उनसे इस जीवन में उऋण नहीं हुआ जा सकता। छोटे चाचा जी एवं चाची जी ने दुख सहकर भी जिस तरह बुरे वक्त में साथ दिया वह कहने की बात नहीं, उसे आजीवन सिर्फ महसूस किया जा सकता है, चुकाया नहीं जा सकता। आर्थिक और मानसिक सहयोग देकर जीजा जी, दीदी एवं छोटे भाई राजेश ने मुझे जीवन-संघर्ष में शक्ति प्रदान की, वह भूलने की बात नहीं है। अन्य भाइयों में प्रेम भैया, सुनील, जयमंगल, रंजीत, अजित, रिंकू एवं लोकेश का आदर और प्यार जीवन का सम्बल बना रहा।

मुझे सदैव प्रोत्साहित करने वाले श्री कृष्ण कुमार फूफा जी एवं राधा बुआ का मैं ऋणी हूँ। आदरणीय

श्री बसंत प्रसाद एवं सुमित्रा देवी का सहयोग मुझे आशीर्वाद की तरह सहारा देता रहा है। इस दौरान मंझले चाचाजी एवं चाची जी का स्नेह सदैव बल प्रदान करता रहा है।

अपने मित्रों में मैं दिनेश राम एवं रमेश यादव को याद करना चाहूँगा जिन्होंने अच्छे-बुरे हर हाल में मेरा साथ दिया, जिनकी उपस्थिति आज भी मेरे लिए सम्बल देनेवाली है। अन्य मित्रों में चंद्रशेखर रावल, सुधांशु जी, कमलाकान्त, राजेश पासवान एवं मेनका की याद जीवन में आगे बढ़ने को प्रेरित करती है।

अनुजों में अभिषेक रौशन का चौतरफा सहयोग अविस्मरणीय रहा है, हर तरह से साथ देकर उसने इस कार्य को सम्पन्न करवाया है, आजीवन उसका ऋण नहीं चुकाया जा सकता। प्यारे वीरपाल का साथ मेरे लिए हमेशा प्रेरणादायी रहा है जो हृदय में प्रकाश-स्तम्भ के समान स्थित है। प्रिय आशुतोष एवं भारतभूषण का सहयोग सदैव याद रहेगा। प्रूफ की त्रुटियों को सुधारने में सहयोग के लिए आनन्द, अंजू, एवं प्रीति का आभारी हूँ।

इस शोधग्रंथ को लिखने में साहित्य अकादमी पुस्तकालय एवं जवाहरलाल नेहरू पुस्तकालय का सहयोग सराहनीय रहा है, वहाँ के कर्मचारियों का मैं कृतज्ञ हूँ। भारतीय भाषा केन्द्र के कर्मचारियों (अनस जी, शमशेर जी, रावत जी एवं दुलारे जी) के सहयोग के लिए उनका बहुत-बहुत आभारी हूँ।

मेरे कम्प्यूटर टाइपिस्ट श्री संतोष कुमार एवं श्री सुबोध कुमार का मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने कठिन परिश्रम करके इस शोधग्रंथ को टंकित किया।

जया जी का आभारी हूँ जिन्होंने कड़ी मेहनत करके इस शोध प्रबंध की त्रुटियों को दूर किया और इसे इस रूप में प्रस्तुत किया।

उन लोगों से क्षमा माँगते हुए मैं आत्मकथन समाप्त करता हूँ जिन्होंने कदम-कदम पर जीवन में साथ दिया किन्तु जिनका नामोल्लेख मैं यहाँ नहीं कर सका।

अंजय कुमार

अंजय कुमार

पहला अध्याय

नागार्जुन का जीवन एवं बहुआयामी व्यक्तित्व : काव्यात्मक अभिव्यक्ति

(1) **जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षः काव्यात्मक अभिव्यक्ति**

- (क) जन्मस्थान, जन्मदिन, पूर्वनाम
- (ख) जीवन संघर्ष-बेकारी, गरीबी और बीमारी
- (ग) यायावरी एवं प्रवास
- (घ) जेल जीवन

(2) **बहुआयामी व्यक्तित्वः कविता के दर्पण में**

- (क) बहुआयामी साहित्यकार
- (ख) प्रतिबद्ध जनकवि
- (ग) मानवतावादी कवि
- (घ) प्रतिरोधी कवि
- (ङ) यथार्थवादी कवि

(1) जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षः काव्यात्मक अभिव्यक्ति

किसी भी कवि की कविता उसके जीवन एवं उसके अनुभव जगत से किसी न किसी रूप में जुड़ी होती है। कवि का निजी जीवन कमोबेश उसकी कविता को प्रभावित करता है और उसका अनुभव संसार कविता को विविधतापूर्ण और समृद्घ बनाता है। नागार्जुन की कविता उनके दीर्घ जीवन के अनुभवों से प्रभावित रही है जिसे इस विराट जगत ने और अधिक विविधतापूर्ण और बहुआयामी बना दिया है। उनकी कविताओं को समझने के लिए उनके जीवन और उनके अनुभव संसार को न सिर्फ जानना होगा वरन उसे विश्लेषित भी करना होगा।

कवि अपनी कविता में कहीं न कहीं मौजूद होता है, जहाँ उसे सच्चे स्वरूप में देखा जा सकता है। स्वयं नागार्जुन ने कहा है कि - **"सारी कविताएँ मिला दो, आत्मकथा हो जाएगी।"**[1]

नागार्जुन ने कई कविताओं में अपने आप को प्रकट किया है। उन्हीं के शब्दों में उनका जो रूप उभर कर आया है, उसे शोधार्थी ने इस अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। शोधार्थी का उद्देश्य नागार्जुन की जीवनी प्रस्तुत करना नहीं है वरन उनके काव्य में अभिव्यक्त उनके जीवन अंशों को रेखांकित करते हुए उसका विश्लेषण करना है जिससे उनके काव्य के स्वरूप की पृष्ठभूमि स्पष्ट हो सके।

वस्तुतः किसी भी व्यक्ति या कवि का जीवन विविध अनुभवों, अद्भुत अनुभूतियों और विभिन्न घटनाओं की क्रिया-प्रतिक्रिया से निर्मित होता है। जिसे पूरी तरह कलमबन्द करना दुष्कर कार्य है। नागार्जुन के काव्य के विश्लेषण के सन्दर्भ में मैं सिर्फ उन बिन्दुओं की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ जिन्हें स्वंय कवि ने कविता में अभिव्यक्त किया है और जिससे उनका काव्य कहीं न कहीं प्रेरित-प्रभावित हुआ है। शोधार्थी ने अपना ध्यान वहीं केन्द्रित किया है जो स्थितियाँ कवि को बेचैन और आन्दोलित करती रही हैं, जिन्होंने उनके कवि- व्यक्तित्व के निर्माण में अहम् भूमिका निभाई है।

प्रारम्भिक जीवन (क) जन्मस्थान, जन्मदिन, पूर्वनाम

जन्म-स्थान, परिवार, परिवेश, शिक्षा-दीक्षा, भ्रमण एवं संगति का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है जिससे उसके जीवन की दिशा तय होती है। नागार्जुन पर भी इन सब तत्त्वों का व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा। नागार्जुन ने बार-बार अपनी कविता में इन तत्त्वों को लक्षित किया है, जहाँ नहीं कर सके हैं वहाँ भी उनकी कविता पर इन सब तत्त्वों के प्रभाव को रेखांकित किया जा सकता है।

मसलन ग्रामीण परिवेश में जन्म लेने और कृषक मजदूर कुल में पलने के कारण नागार्जुन आजीवन मजदूरों और कृषकों के हिमायती रहे। उन्हीं के सुख-दुख में वे सदैव शरीक रहे, उन्हीं के आँसू-हास से कविता में विविध प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। कवि की शिक्षा संस्कृत में अवश्य हुई किन्तु बनारस में उनका सम्पर्क समाजवादियों से हुआ जिससे उनके जीवन और उनकी कविता में समाज के प्रति सदैव सकारात्मक रवैया बना रहा। निरंतर भ्रमणशील रहने के कारण उन्हें अपने देश, उसके देशवासी और उनके सुख-दुख से रूबरू होने का अवसर मिला जिससे उनका जीवन तो समृद्ध हुआ ही उनकी कविता भी बहुरंगी होकर प्रकट हुई। गरीबों, दलितों, शोषितों के जीवन को निकट से देखने के कारण ही कवि की संवेदनशीलता सदैव जाग्रत रही और वे सदैव उनके पक्षधर रहे। इन्हीं प्रवृत्तियों ने उन्हें गरीब जनता का कवि बनाया, उनके विरोधी और विद्रोही तेवर को और धारदार बनाया, उनकी व्यंग्य चेतना को तीक्ष्ण किया।

---

1. मेरे साक्षात्कार-नागार्जुन, पृ. सं.-40

नागार्जुन ने स्वंय 'तीन सिरों वाला बेताल' कविता में अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

"मैं, यानी/अर्जुन नागा..... / उर्फ बैजनाथ मिसिर
उर्फ यात्री जी साक़िन मौजे तरौनी बड़की
थाना बहेड़ा / जिला दरभंगा / बिहार राज्य"[1]

यहाँ उन्होंने साफ शब्दों में अपना परिचय प्रस्तुत किया है कि वे 'बैजनाथ मिसिर' एवं 'यात्री जी' नाम से भी जाने जाते हैं। वस्तुतः 'बैजनाथ मिश्र' इनके माता-पिता का दिया गया पहला नाम है। मैथिली कविता इन्होंने 'यात्री जी' नाम से लिखी जिससे ये अपने इलाके में यात्री जी नाम से ख्यात हुए। 'नागार्जुन' नाम तो बौद्ध बनने के बाद रखा जो हिन्दी कवि के रूप में विख्यात हुआ। उनका गाँव तरौनी बड़की है, थाना-बहेड़ा, जिला दरभंगा। यहाँ यह जानना उचित होगा कि कवि का जन्म '22 जून 1911 ई.' को अपने ननिहाल 'सतलखा' में ही हुआ था किन्तु पैतृक गाँव उनका 'तरौनी' ही था। 'सतलखा' अब मधुबनी जिले में आ गया है।

मिथलांचल के ग्रामीण इलाके में जन्म लेने के कारण कवि का उस परिवेश और प्रकृति से अपार स्नेह रहा है जिसे उनकी कई कविताओं में देखा जा सकता है-'सिंदूर तिलकित भाल' और 'बहुत दिनों के बाद' जैसी कविताएँ इसके प्रमाण हैं। नागार्जुन का जीवन यायावरी रहा, प्रवास में उन्हें अपना गाँव उसी तरह याद आता रहा जैसे परदेश में रहने वाले सामान्य आदमी को आता है। पत्नी को याद करते- करते कवि अपने गाँव, वहाँ की प्रकृति, वहाँ की वनस्पतियों को इतनी गहराई और आत्मीयता से याद करता है कि पाठक भी भावुक हो उठता है। देशप्रेम का यह रूप हम प्रगतिशील कवियों की कविताओं में सहज रूप में देख सकते हैं। नागार्जुन को पूरे देश से प्रेम है किन्तु अपने गाँव, अपने इलाके से उनका लगाव देखने लायक है। जन्म स्थान के प्रेम ने उन्हें एक बड़ा कवि बनाया, जनकवि बनाया।

नागार्जुन एक गरीब, अपठित कृषक कुल में पैदा हुए थे जिससे गरीबों, कृषकों और अपठित भारतीय जनता के प्रति उनके मन में सदैव प्यार बना रहा। वे उनके हकों के हिमायती बने रहे, उनके लिए आजीवन संघर्षरत रहे और कभी अपने को उनसे ऊँचा और अलग नहीं समझा । उनकी कविता के केन्द्र में जो गरीबों के प्रति प्रतिबद्धता है, वह उनमें से एक होने के कारण है। उनका व्यंग्य, उनका विरोध, उनका विद्रोह और उनकी क्रांतिकारिता इन्हीं लोगों के कारण है। अभिजात्यता और कुलीनता को बार-बार व्यंग्य से छलनी करने की सुकुंठा यहीं से जन्म लेती है। प्रकृति ने उन्हें सर्वहारा के घर पैदा करके सर्वहारा का हार बनाया जिसे नागार्जुन नें सहर्ष स्वीकारा। उनकी संपूर्ण कविता के केन्द्र में आम जनता है क्योंकि वे स्वयं आम जनता की कोख से उत्पन्न हुए थे। अपने कुल के बारे में कवि ने लिखा है -

"पैदा हुआ था मैं-/ दीन-हीन-अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से /.....
हरा हुआ नहीं कि चरने को दौड़ते!! / जीवन गुजरता है प्रतिपल संघर्ष में !!
मुझको भी मिली है प्रतिभा की प्रसादी / मुझसे भी शोभित है प्रकृति का अंचल ।
पर न हुआ मान कभी! / किया न अनुमान कभी ।"[2]

---

1. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-64
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-13

नागार्जुन ने इस कविता में अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट किया है। रवि ठाकुर से तुलना करते हुए उन्होंने उनसे अपनी प्रतिभा को कम नहीं माना है। गरीब कुल में जन्म लेने और आजीवन गरीबी और जीवन की सामान्य समस्याओं से जूझने के कारण अपनी प्रतिभा के दुरूपयोग की आशंका व्यक्त की है। अपने व्यक्तित्व के कुंठित होने का उल्लेख किया है और संशय के साथ विश्वास भी व्यक्त किया है कि 'कलम ही मेरा हल है, कलम ही कुदाल है।' जीवन को निकट से देखना, समझना, झेलना फिर भी प्रलोभन में न पड़कर संघर्ष की ओर उन्मुख होना ही उन्हें बड़ा कवि बनाता है। वे कबीर, निराला और प्रेमचन्द की परम्परा के साहित्यकार हैं जिन्हें अपने जीवन और संधर्ष का पूर्वाभास है लेकिन जिनका मन जनता के प्रति, लेखन के प्रति प्रतिबद्ध है इसलिए उनके व्यक्तित्व में भटकाव नहीं है। गरीबी और जीवन संघर्ष व्यक्तित्व को कुंठित और प्रतिभा को कुंद कर देती है लेकिन नागार्जुन के काव्य के तेवर को देखकर ऐसा नहीं लगता। बल्कि गरीबी ने उन्हें और अधिक संवेदनशील और जीवन संग्राम ने उन्हें और अधिक संघर्षशील बना दिया। उनका पूरा साहित्य शोषण, अन्याय और विडम्बनाओं के प्रतिकार का साहित्य है जो उनकी परिस्थितियों और उनके व्यक्तित्व की देन है। कवि का संधर्ष और उनकी दृढ़ता इन पंक्तियों में देखते बनती है-

"कलम ही मेरा हल है, कुदाल है / बहुत बुरा हाल है !!!"[1]

यही कारण है कि नागार्जुन का साहित्य निम्नवर्गीय जनता और आम जनता का हिमायती, उनके दुख-दर्दों को अभिव्यक्त करने वाला और उनको जगाने वाला साहित्य है। जहाँ कहीं भी उनका शोषण कवि को नजर आया कवि ने उसका विरोध किया। आम जनता के साथ खड़े होकर संघर्ष करने की प्रेरणा उन्होंने अपनी परिस्थितियों और अपने परिवेश से ग्रहण की। अज्ञेय और पंत की कविता और नागार्जुन की कविता का फर्क बिना उनके परिवेश को समझे नहीं किया जा सकता। आधुनिक हिन्दी कविता में गरीबों का इतना बड़ा हिमायती कवि नागार्जुन के सिवा दूसरा कौन है? कथा साहित्य में प्रेमचन्द ओर रेणु ने जो काम किया वही काम कविता के क्षेत्र में नागार्जुन ने किया।

(ख) जीवन संघर्ष बेकारी, गरीबी और बीमारी

जीवन के प्रारंभिक दौर में नागार्जुन को बेकारी की समस्या से जूझना पड़ा, इस संघर्ष को उन्होंने बड़े दर्द से 'बेकार' कविता में अभिव्यक्त किया है–

"मानव होकर मानव के ही चरणों में मैं रोया!
दिन बागों में बिता रात को पटरी पर मैं सोया!
*** * * * * ***
कभी घुमक्कड़ यार-दोस्त से मिलकर, कभी अकेले–
एक-एक दाने की खातिर सौ-सौ पापड़ बेले!"[2]

अपनी भयंकर गरीबी का उल्लेख नागार्जुन ने अपनी बहुत सी कविताओं में किया है, इससे पता चलता है कि कवि गरीबी और अभावों के प्रति कितना संवेदशील रहा है, यही अहसास उन्हें गरीबों के दुख-दर्दों को गहराई से समझने में सहायक रहा है। उन्हें यह भी बोध है कि सिर्फ मेरा ही यह हाल नहीं मुझ जैसे तो कोटि-कोटि हैं। 'जयति जयति जय सर्व मंगला' कविता में कवि ने अपनी बेकारी, लाचारी, बीमारी ही नहीं, मानसिक, सामाजिक और दयनीय आर्थिक हाल का चिट्ठा खोला है। यहाँ उन जैसों की कहानी कवि की जुबानी कही गई है, संतोष यही है कि सिर्फ कवि का ही यह हाल नहीं, सबका यही हाल है–

"लटक रही है तलवार रात- दिन इस गर्दन पर / -बेकारी की / -लाचारी की

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-14-15

2. शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ. सं.-21

-बीमारी की / चैन नहीं, आराम नहीं है
सपने में भी सुख- सुविधा का नाम नहीं है
तन विष्ण्ण, मन चिर अशांत है
पल पल छन छन भयाक्रांत है कैसे लिखूँ 'शांति' पर कविता ?
*** * * * * ***

मैं दरिद्र हूँ / पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके जैसी जीभ से / मेरा लहू चाटती आई !
मैं न अकेला/ मुझ जैसे तो लाख-लाख हैं, कोटि-कोटि है
यों तो सबका यही हाल है / सभी सरों पर यह बवाल है
सभी दुखी हैं / दो प्रतिशत भी नहीं सुखी हैं / कैसे लिखूँ शांति पर कविता?''[1]

नागार्जुन ने कविता में खुद इतना और स्पष्ट ढंग से कह दिया है कि इसकी व्याख्या करना इसको दुहराना होगा। यहाँ सिर्फ यही कहना है कि एक निम्नवर्गीय आम आदमी का जीवन इसी तरह का होता है जैसे नागार्जुन का रहा है। प्रतिभा से इन्होंने नाम और यश अवश्य कमाया, कुछ धन भी किन्तु आजीवन दाल-रोटी से ऊपर नहीं उठ सके।

बेचैनी, अभाव और संघर्ष के इस आलम में भी कवि ने कविता लिखना नहीं छोड़ा, हाँ ! कविता को अपनी और अपने जैसों के दुख दर्दों की अभिव्यक्ति का माध्यम अवश्य बनाया। कवि को यह बोध सदैव रहता है कि कवि होने से वह विशिष्ट नहीं, वह भी अन्य लोंगो की तरह सामान्य मानव है, यही बोध उन्हें अपने वर्ग से जोड़े रखता है। नागार्जुन की यह विशेषता है कि अन्य कवि जहाँ आम आदमी से अपने को श्रेष्ठ और विशिष्ट मानते हैं वहीं नागार्जुन अपने को साधारण मानव मानते रहे जिससे उनकी कविता में निम्न वर्ग के प्रति घृणा या उनके प्रति अलगाव की भावना नहीं पनपी। 'मनुष्य हूँ' नामक कविता में उन्होंने स्पष्ट लिखा है–

"कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ
अतिमानव या लोकोत्तर किसको कहते हैं-नहीं जानता ! / कैसे जानूँ
सुख-सुविधा में हुलस-हुलस कर / दुख-दुविधा में झुलस-झुलस कर
सब कैसे अपने जीवन को बिता रहे हैं / वैसे मैं भी अपना जीवन बिता रहा हूँ!"[2]

नागार्जुन 'दमे' के मरीज थे, बार-बार दमा उभर आता था और वे परेशान हो जाते थे, एक बार दमे से परेशान होकर उन्होंने इसका उल्लेख 'घुट रहे हैं प्राण' कविता में किया–

''सभी अपने, सभी साथी, सभी तो हैं बंधु
फिर भी घुट रहे हैं प्राण.....
दिलाएगा कौन मुझको इस दमा से त्राण?''[3]

(ग) यायावरी एवं प्रवासी जीवन

नागार्जुन का जीवन एक अथक यायावर का जीवन रहा है। किशोरावस्था से जो यात्रा का चस्का लगा वह आजीवन बना रहा। यह घर की जिम्मेदारियों से पलायन नहीं था बल्कि ज्ञान की खोज की कोशिश थी। बुद्ध और राहुल जी की तरह नागार्जुन का गृह त्याग ज्ञान की सतत खोज का प्रयास था किन्तु नागार्जुन भावुक मानव भी थे और संवेदनशील कवि भी इसलिए सदैव घर लौट आते रहे। प्रवास में भी कवि को अपने

---

1. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-156-157
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-78-79
3. शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-101

गाँव, पत्नी और बच्चों की यादें आती रही हैं जिन्हें इन्होंने छुपाया नहीं है, कुछ सुन्दर और सशक्त कविताओं का जन्म इस प्रवास के कारण भी हुआ है। इस प्रसंग से जुड़ी कई कविताएँ हैं,

(1) एक मित्र को पत्र (युगधारा) (2) सिन्दूर तिलकित भाल (सतरंगे पंखोंवाली)
(3) वह दंतुरित मुस्कान (सतरंगे पंखोंवाली) (4) ऋतु-सन्धि (युगधारा)
(5) बहुत दिनों के बाद (सतरंगे पंखोंवाली) आदि।

प्रवासी जीवन उनकी कविताओं की संवेदनशीलता को बढ़ाता है और अपने देश,उसके निवासियों को नए ढंग से जानने की संभावना उत्पन्न करता है। एक ओर यह अपनी जन्मभूमि के प्रेम को प्रगाढ़ करता है तो दूसरी ओर बाह्य जगत से नया सम्बन्ध स्थापित करने का मौका देता है। जैसे सूरदास के कृष्ण मथुरा जाने पर अपनी जन्मभूमि 'ब्रज' को याद करते हुए कहते हैं 'उद्धव मोहिं ब्रज बिसरत नाहि' उसी तरह कवि नागार्जुन कहते हैं–

" घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल! / याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल! / .....
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम / याद आतीं लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग / याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान"[1]

यह कविता कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो पत्नी को याद करते हुए यह अपनी उदात्तता में व्यापक भावभूमि को प्रकट करती है। आधुनिक युग में गृहस्थ आश्रम के प्रति आसक्ति और प्रेयसी प्रेम के जमाने में पत्नी को गाँव के साथ याद करना कवि के शुद्ध भारतीय जनकवि की छवि प्रकट करता है। प्रगतिशील कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन जी ने गृहस्थ आश्रम पर विश्वास व्यक्त करते हुए पत्नी प्रेम की अभिव्यक्ति की है जिससे उनकी एकनिष्ठा, भारतीयता एवं उसके मूल्य के प्रति आस्था का पता चलता है। नागार्जुन पत्नी को याद करते वक्त कितने मर्यादित, भावुक और गंभीर हैं यह इस कविता में देखा जा सकता है।

वास्तव में यह कविता इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अपने गाँव, उसकी प्रकृति को पूरी आत्मीयता से याद किया गया है। इस प्रसंग में डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट का विचार उचित लगता है–"**प्रवासी जीवन अपना लेने पर, विरहावस्था में स्मृति के ये कण उड़-उड़ कर कवि-हृदय पर जम रहे हैं, पर कवि के प्रणय चित्रों की यह विशेषता है कि हम उनमें कहीं भी सामाजिक शील का ध्वंस नहीं बल्कि सहज गार्हस्थिक प्रेम का स्वस्थ रूप पाते हैं। उनमें शालीनता का भाव सर्वत्र विद्यमान है। 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता अपनी गरिमा के कारण प्रणय-परक रचनाओं का भाल ही है।**"[2]

प्रवासी जीवन का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है–परिवार से कवि का लगाव। 'वह दंतुरित मुस्कान' (सतरंगे पखोंवाली, पृ. सं.-50) कविता में नागार्जुन ने अपने नवजात शिशु के साथ अपने वात्सल्य भरे व्यवहार को अभिव्यक्त किया है। नागार्जुन विविध भावों, मनोभावों के कवि हैं उनकी कई कविताओं से इन तथ्यों की पुष्टि होती है 'गुलाबी चूड़ियाँ' में भी वात्सल्य भाव प्रकट हुआ है। आधुनिक काल में सुभद्रा कुमारी चौहान के बाद वात्सल्य भाव पर अच्छी कविता नागार्जुन ने ही लिखी है। उनकी यह विशेषता उन्हें प्रगतिशील कवियों में भी ऊँचा उठाती है। 'वह दंतुरित मुस्कान' की कुछ पंक्तियाँ पठनीय हैं–

" तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान/ मृतक में भी डाल देगी जान
..... छोड़ कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात

---

1. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-48-49
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट, नागार्जुन : जीवन और साहित्य, पृ. सं.-46-47

..... तुम मुझे पाये नहीं पहचान / ..... धन्य तुम, माँ भी तुम्हारी धन्य ।
इस अतिथि से प्रिय तुम्हारा क्या रहा सम्पर्क
*** * * * * ***
देखते तुम इधर कनखी मार / और होतीं जबकि आँखें चार
तब तुम्हारी दंतुरित मुस्कान / मुझे लगती बड़ी ही छविमान ।''[1]

वास्तव में नागार्जुन की कई कविताओं का प्रभाव समग्र रूप से ही पड़ता है उसे तोड़कर उद्धरण देने से उसकी आत्मा मर जाती है।

प्रवास में उन्हें अपने ग्रामीण क्षेत्र के सुनहरे मौसम की भी खूब याद आती है। नागार्जुन घूमते रहने वाले कवि हैं। वर्षा उन्हें अत्यधिक उद्वेलित करती है। वे प्रवास में हैं और वर्षा नहीं हो रही, उसी पर उन्होंने अपने गाँव को याद करते हुए लिखा है-

" सुमुखि, वर्षा हुई होगी एक क्या कै बार/गा रहे होंगे मुदित हो लोग खूब मलार
भर गई होगी अरे वह वाग्मती की धार / उगे होंगे पोखरों में कुमुद पद्म मखान
आँखे मूँदे कर रहा मैं ध्यान / लिखूँ क्या प्रेयसि, यहाँ का हाल
सामने ही बह रही भागीरथी, बस यही है कल्याण''[2]

(घ) जेल-जीवन :

जीवन के यादगार दिनों में जेल-जीवन का अपना महत्त्व है। व्यवस्था का विरोध नागार्जुन में प्रारम्भ से है, यह विरोध जब सक्रिय और लेखकीय हो जाता है तो सरकार कवि को जेल भेज देती है, एक नहीं चार-चार बार जेल जाकर नागार्जुन ने साबित कर दिया है कि अंग्रेज सरकार ही नहीं अपनी सरकार भी जनकवि के लेखकीय विरोध को नहीं सह पाती है, वहाँ उन्हें नई अनुभूतियाँ भी हुईं और उन्होंने–'रजनीगंधा' (युगधारा, पृ. सं.110-111), वो चाँदनी ये सीखचें (खिचड़ी विप्लव देखा हमने,पृ. सं.-80), 'रहा उनके बीच मैं' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-99) जैसी कई कविताओं की रचना की।

कवि प्रकृति प्रेमी है, जेल में भी उसका यह सौन्दर्य बोध कुम्हलाया नहीं है। जीवन के कटु और कठिनतम क्षण में भी 'रजनीगंधा' की महक उनके मन को सुवासित कर देती है–

" तुम खिलो रात की रानी! / हो म्लान भले यह जीवन और जवानी
तुम खिलो रात की रानी ! / प्रहरी -परिवेष्टित इस बंदीशाला में
मैं सड़ूँ सही पर ताजी रहे कहानी / तुम खिलो रात की रानी !
यह प्रहरी के बूटों की कर्कश टापें / रह-रहकर बहुधा नींद तोड़ जाती है
आँखे खुलती तो बस झुंझला उठता हूँ / ये हृदयहीन! ये नर-पिशाच! ये कुत्ते !
इतने में अनुपम सुवास से सुरभित / शीतल समीर का हल्का झोंका आता
सारे अभाव-अभियोग भूल जाता हूँ / यह आकुल मन इतना प्रमुदित हो जाता
जय हो जय हो कल्याणी ।"[3]

कवि जेल जीवन और सामान्य जीवन की तुलना विडम्बनापूर्ण ढंग से करते रहे-सौन्दर्य और सजा को साथ-साथ भोगते हुए वे लिखते हैं–

''वो चाँदनी, ये सींखचे

---

1. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-50-51
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-53-54
3. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-110

कैसे गुथें, कैसे बचें /याँ ये घुटन, याँ ये कुढ़न
..... फिर दूधिया माहौल वो
कैसे रुचे, कैसे पचें
वो चाँदनी, ये सीखचें
कैसे गुथें, कैसे बचें!"[1]

जीवन के विविध अनुभवों ने कवि को अनुभव समृद्ध बनाया। नागार्जुन न सिर्फ एकाधिक भाषाओं के ज्ञाता थे, वरन अतियात्रा और विविध अनुभवों के कारण भाव समृद्ध कवि भी रहे। इससे उनकी कविता में विविधता के साथ-साथ गहराई और आत्मीयता भी आई।

2. बहुआयामी व्यक्तित्व : कविता के दर्पण में

किसी भी कवि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है उसका व्यक्तित्व! वही उसके काव्य व्यक्तित्व का आधार है। इसलिए उसकी कविता को समझने के लिए उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है। वास्तव में कवि के व्यक्तित्व का कविता पर गहरा असर होता है क्योंकि वहीं से उसकी कविता की दिशा तय होती है।

नागार्जुन बहुआयामी व्यक्तित्व सम्पन्न कवि हैं। भाव, चिन्तन और कला पक्ष की समृद्ध चेतना ने उन्हें एक सम्पूर्ण मानव ही नहीं बनाया बल्कि एक विशिष्ट कवि भी बनाया। नागार्जुन ने कविता और कला को जीवन से इस तरह जोड़ दिया है कि जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव का प्रकाशन साहित्य में सहज ही हो सका है। साक्षात्कार देते समय एक बार **नागार्जुन** ने कहा था - **"जनता के बीच समाज में इस तरह अपने व्यक्तित्व को घुला दीजिए जैसे शक्कर अपने आपको शरबत में पूरी तरह घुला देती है।"[2]**

इस बात का प्रमाण स्वयं उनका व्यक्तित्व है। उन्होंने अपने कवि व्यक्तित्व को जनता के बीच इस तरह घुला दिया कि जनता के दुख-दर्द उनके अपने दुख-दर्द बन गए इसलिए काव्य में उसकी अभिव्यक्ति इतनी सजीव बन पड़ी है। चूँकि जीवन से विराट, विविध एवं बहुरंगी कोई चीज नहीं इसलिए नागार्जुन की कविता जीवन और जगत के विराट एवं बहुरंगी बोध का सजीव, चित्रमय, साहित्यिक दस्तावेज है।

(क) बहुआयामी साहित्यकार

नागार्जुन का दीर्घ जीवन अनुभव-सिक्त, ज्ञानमय और यात्रा-संकुल रहा है जिससे उनका व्यक्तित्व विराट बन सका है। लोक और शास्त्र का गहरा ज्ञान जहाँ एक ओर उन्हें संवेदनशील जनकवि बनाता है वहीं दूसरी ओर शोषण और अत्याचार एक प्रखर व्यंग्यकार और क्रांतिकारी कवि भी। शायद ही कोई भाव (स्थायी या संचारी) और कोई रस उनकी कलम से अछूत रहा हो। कविता में नए और वर्जित विषयों को सहजता से समेट लेना नागार्जुन की प्रतिभा का ही कमाल है। जहाँ तक पुरानी चीजों को नया बनाने की बात है, नागार्जुन के पारस व्यक्तित्व के स्पर्श से वह भी नई होकर पाठकों के सम्मुख आती है। आधुनिक कविता में वैविध्य का विराट बोध कराने वाला नागार्जुन से बड़ा कवि नहीं हुआ। यह सब विराट व्यक्तित्व के कारण ही संभव हो सका।

नागार्जुन के साहित्य को देखकर कोई भी यह कह सकता है कि वे प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। 13 भाषाओं का ज्ञान, 4 भाषाओं में काव्य रचना, साहित्य की कई विधाओं पर समान अधिकार स्वयं नागार्जुन को इसका भान है किन्तु अभिमान नहीं–

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.- 80
2. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.- 42

"मुझको भी मिली है प्रतिभा की प्रसादी /मुझसे भी शोभित है प्रकृति का अंचल
पर न हुआ मान कभी ! / किया न अनुमान कभी !"[1]

नागार्जुन हर चीज में रस लेने वाले कवि हैं, रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श सबका आकर्षण उन्हें खींचता है और कवि उनका उपभोग जीवन में भी करता है और साहित्य में भी ! 'बहुत दिनों के बाद' जैसी कविता में उन्होंने इस बात को पुष्ट किया है -

"बहुत दिनों के बाद / अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भू पर
- बहुत दिनों के बाद !"[2]

जनता के साथ जहाँ नागार्जुन विनम्र हैं वहीं शोषकों, राजनेताओं के सामने गर्वोन्नत। चुनौती और ललकार के समय उनका स्वाभिमान देखते बनता है, यह मुद्रा दर्शनीय है -

"देवि, तुम्हारी प्रतिमा से मैं दूर खड़ा हूँ / छोटा हूँ, पर, उन बौनों से बहुत बड़ा हूँ
* * * * * * * * * *
जनकवि हूँ क्यों चाटूँगा मैं थूक तुम्हारी/श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बन्दूक तुम्हारी"[3]

(ख) प्रतिबद्ध जनकवि

नागार्जुन के व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण पक्ष है-जन प्रतिबद्धता। इसी प्रतिबद्धता ने उन्हें प्रतिरोध का कवि बनाया। जनविरोधी क्रियाकलापों का विरोध नागार्जुन के काव्य की मूल चेतना है। चाहे जातिवाद हो, साम्प्रदायिकता हो, अत्याचार हो, शोषण हो नागार्जुन का काव्य उसका विरोधी अवश्य होगा। वे इसे अपनी नैतिक जिम्मेदारी मानते हैं। गाँधी जी के हत्यारों के प्रति नागार्जुन का यह भाव देखने योग्य है -

1. "शैतान आयेगा रह-रह हमको भरमाने / अब खाल ओढ़ कर तेरी सत्य अहिंसा का
एकता और मानवता के / इन महाशत्रुओं की न दाल गलने देंगे
हम नहीं चलने देंगे / यह शक्ति और समता की तेरी दीपशिखा
बुझने न पायेगी छन भर भी
* * * * * *
तेरे उन अगणित स्वप्नों को / हम रूप और आकृति देंगे
हम कोटि -कोटि / तेरी औरस संतान, पिता"[4]
2. "हाँ बापू, निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूँ
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे–
हिन्दू-मुसलिम-सिक्ख फासिस्टों से न हमारी / मातृभूमि यह जब तक खाली होगी–
सम्प्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह / जब तक खंडहर न बनेंगे
तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा / लौह-लेखनी कभी विराम न लेगी।
* * * * * *
इस पवित्र पावक को, बापू, मैं प्रज्वलित रखूँगा
ठंडा पानी सींच न पायेगी इस पर सरकार!"[5]

नागार्जुन सजग रूप से जनकवि हैं। उन्होंने जनकवि होने के लिए साधना की है, जब कभी उनका मन भटकने लगता है वे उसे याद दिलाते हैं कि यह जनकवि को शोभा नहीं देता। अपने से उठाई गई यह

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-13
2. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-26
3. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-83
4. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-45
5. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-49-50

प्रतिबद्धता उन्होंने आजीवन निभाई। नागार्जुन ने लिखा है–

"कैसे कहलाता कोई धरती का बेटा
आसमान में सतरंगी बादल पर चढ़कर
कैसे जनकवि धान रोपता
समझ गया हूँ
कैसे जनकवि जमींदार के उन अमलों को मार भगाता
हरे बाँस की हरी-हरी वह लाठी लेकर!"[1]

बड़े दायित्व का काम है जनकवि होना, जनता के प्रति ईमानदार होते हुए कवि अपने को नैतिक रूप से जवाबदेह मानता है–

" जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ?
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ?"[2]

लेकिन सचमुच नागार्जुन को हकलाने की जरूरत नहीं पड़ी। वे सदैव जनता के हित, जनता के साथ, जनता के लिए खड़े रहे। यहीं से उनके काव्य को शक्ति मिलती है,यही उनके व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

नागार्जुन कविता में जितने बहुरंगी और नाटकीय हैं, जीवन में उतने ही साधारण और सहज। वे अपने को विशिष्ट कभी नहीं मानते। सामान्य जनता का साथ उन्हें सहज मानव बनाता हैं इसे वे नहीं भूलते, यही उनकी विशिष्टता है -

" कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ / अतिमानव या लोकोत्तर किसको कहते हैं
नहीं जानता ! / कैसे जानूँ / सुख- सुविधा में हुलस-हुलस कर
दुख-दुविधा में झुलस-झुलस कर / सब जैसे अपनी जीवन को बिता रहे हैं
वैसे मैं भी अपना जीवन बिता रहा हूँ।"[3]

इतना सहज, इतना निराभिमानी, इतना साधारण कवि आधुनिक हिन्दी कविता में और कौन है ?

नागार्जुन व्यवस्था विरोधी, सत्ता परिर्वतनकामी भी थे लेकिन अपने देश, यहाँ की जनता और यहाँ की प्रकृति, जीव-जन्तुओं से उन्हें अपार प्रेम था। गहरी आत्मीयता में उन्होंने कई बेजोड़ कविताएँ रची हैं -

1. **" जनयुग का यह रिक्तहस्त कवि**
देवि, तुम्हारे लिए आज निज शीश झुकाता
जय जय जय हे भारतमाता ।"[4]
2. **" झूठ-मूठ सुजला-सुफला के गीत न हम अब गायेंगे,**
भात-दाल-तरकारी जब तक नहीं पेट भर पायेंगे,
सड़ी लाश है जमींदारियाँ, इनको हम दफनायेंगे,
गाँव-गाँव पाँतर-पाँतर को हम भू-स्वर्ग बनायेंगे,
खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है,
इसलिए तो हमको इसका चप्पा-चप्पा प्यारा है,"[5]

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-80
2. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-145
3. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-78
4. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-71
5. नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-49

कवि को अपने गाँव, वहाँ की प्रकृति से अद्‌भुत लगाव है–

"याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम / याद आतीं लीचियाँ , वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग / याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान
याद आते शस्य-श्यामल जनपदों के / रूप-गुण-अनुसार ही रक्खे गए वे नाम
याद आते वेणुवन वे नीलिमा के निलय, अति अभिराम।"[1]

चाहे उत्तराखण्ड का पर्वतीय प्रदेश हो, मध्यप्रदेश का जंगल, झारखण्ड का पठार या गंगा की कछार सर्वत्र नागार्जुन का प्रकृति प्रेम एक समान है जो काव्य में यथावसर प्रकट हुआ है।

(ग) मानवतावादी कवि

नागार्जुन के व्यक्तित्व का जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है वह है–गरीब, शोषित, मजदूर, कृषक, औरत एवं आम जनता के प्रति असीम प्रेम। यूँ कहना चाहिए ये उनकी कविता के केन्द्र में हैं। उन्हीं के प्रेम, विश्वास एवं लगाव ने इन्हें बड़ा कवि बनाया। इनका चित्रण, इनके शोषण का विरोध, यही इनकी कविता का मुख्य स्वर है। नागार्जुन के काव्य की एक-एक पंक्ति इसकी साक्षी है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

1. **" धनपतियों की खुशियों में खुश तुम भी रहना**
उनके ही हित की हुगली में तुम भी बहना
अस्सी प्रतिशत जनता की खातिर कृपाण है
बाकी लोगों की खातिर बस पुष्प बाण है "[2]
2. **" भूखों मरते हों बच्चे तो यों ही मत रह जाओ**
आँते सूख रही हों तो आँसू मत वृथा बहाओ
हाथ पैर वाले हो, नाहक कायर नहीं कहाओ
कीड़ों और मकोड़ों जैसे यों मत प्राण गँवाओ
भूखों मरते हों बच्चे तो यों मत रह जाओ ।"[3]

नागार्जुन इन्हीं लोगों का चित्रण बड़ी आत्मीयता से अपनी कविताओं में करते हैं। इन्हीं के शोषण का प्रतिकार उनकी कविताओं में ललकार बनकर प्रकट हुआ है। इन्हीं की विसंगति एंव विडम्बना को देखकर वे शोषकों पर व्यंग्य-वाण चलाते हैं, इन्हीं लोंगो के अत्याचार का विरोध वे यथाशक्ति करते हैं, इन्हीं के जीवन में खुशहाली एवं मुस्कान लाने के लिए वे रचनात्मक आन्दोलन चलाते हैं। हिंसा का उत्तर है प्रतिहिंसा, कवि ने स्वंय स्वीकारा है कि यही प्रतिहिंसा उनकी ताकत है–

"नव-दुर्वासा, शवर-पुत्र मैं, शवर-पितामह / सभी रसों को गला-गलाकर
अभिनव द्रव तैयार करूँगा / महासिद्ध मैं, मैं नागार्जुन
अष्ट धातुओं के चूरे की छाई में मैं फूँक भरूँगा / देखोगे, सौ बार मरूँगा
देखोगे, सौ बार जियूँगा / हिंसा मुझसे थर्राएगी
मैं तो उसका खून पियूँगा / प्रतिहिंसा ही स्थायिभाव है मेरे कवि का
जन-जन में जो ऊर्जा भर दे, मैं उद्‌गाता हूँ उस रवि का ।"[4]

---

1. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-49*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-37*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-57*
4. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-11*

वात्सल्य भाव पर कम कवियों ने कलम चलाया है, सूरदास, तुलसीदास के बाद आधुनिक युग में सुभद्रा कुमारी चौहान जी ने इस भाव पर कविताएँ लिखी हैं, निराला जी ने कुछ पंक्तियों में इस भाव को पुष्ट किया है किन्तु नागार्जुन की कई कविताएँ इस भाव पर हैं। 'गुलाबी चूड़ियाँ' और 'यह दंतुरित मुस्कान' कविताएँ उदाहरण स्वरूप दी जा सकती हैं–

1. " **प्राइवेट बस का ड्राइवर है तो क्या हुआ / सात साल की बच्ची का पिता तो है !**
सामने गीयर से ऊपर /हुक से लटका रक्खी हैं / कांच की चार चूड़ियाँ गुलाबी
*** * * * * ***
लाख कहता हूँ, नहीं मानती है मुनिया / टाँगें हुए है कई दिनों से
अपनी अमानत / यहाँ अब्बा की नजरों के सामने / मैं भी सोचता हूँ
क्या बिगाड़ती हैं चूड़ियाँ / किस जुर्म पे हटा दूँ इनको यहाँ से ?"[1]

2. " **तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान / मृतक में भी डाल देगी जान**
धूलि-धूसर तुम्हारे ये गात.../ छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जालजात!"[2]

यह प्रेमभाव पशु-पक्षी और अन्य प्राणियों के लिए भी है। मानवेतर प्राणियों पर जितनी कविताएँ नागार्जुन ने लिखी हैं उतनी अन्य किसी ने नहीं । जितनी आत्मीयता से उन्होंने उन जीव-जन्तुओं पर कविताएँ लिखी हैं वह भी अपने आप में एक आह्लाद-जनक अनुभूति को जन्म देती है। नेवला, तोता, मादा सूअर, खच्चर, बाघ, बगुला, मेंढक, तिलचट्टा को वे इस तरह कविता में लाते हैं जैसे उनकी उनसे बहुत जान पहचान है। कवि उनसे संवाद भी करता है। ये कविताएँ वात्सल्य, आत्मीयता, कौतुक, जिज्ञासा और औत्सुक भाव से भरी हुई हैं। 'डियर तोताराम' कविता में कवि की आत्मीयता देखने योग्य है–

" मियाँ मिट्ठू, / (महोदय आत्माराम)
आप तो नाहक ही हमारे पैरों की आहट से भड़क गए !
भला, य भी कोई बात हुई! /आइए, इत्मीनान से / इन टहनियों में उल्टा लटकिए !
मौसम की ताजगी का स्वाद लीजिए! / लेकिन आप तो भई
'गृह-पालित' नहीं आजाद तोता थे ना ? / आइए बेखटके आइए।
उल्टा लटकिए/ हमारा मनोरंजन कीजिए / प्लीज डियर तोताराम!"[3]

हृदय में गुदगुदी पैदा करने वाले ऐसे भाव भी कवि के लिए अछूते नहीं, यही नागार्जुन की शक्ति है, यही उनके यश का आधार है।

(घ) प्रतिरोधी कवि

वे बदलाव, निर्माण और परिवर्तन की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाना चाहते हैं, इसका प्रमाण उन्होंने विस्फोटक राजनीतिक कविताएँ लिखकर, किसान आन्दोलन में भाग लेकर और आपातकाल में सरकार का विरोध करके दिया, इन्हीं कारणों से वे चार बार जेल गए। घर, परिवार के मोह को छोड़ नागार्जुन ने जनता का साथ कई बार दिया आधुनिक कविता में उनके जैसा व्यक्तित्व शायद ही किसी ने बनाया। एक कविता में उन्होंने लिखा भी है–

"नई-नई सृष्टि रचने को तत्पर / कोटि-कोटि कर-चरण
देते रहें अहरह स्निग्ध इंगित / और मैं अलस-अकर्मा
पड़ा रहूँ चुपचाप ! / यह कैसे होगा? / यह क्योंकर होगा?"[4]

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.- 25*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.- 50*
3. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-20-21*
4. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-14*

निष्क्रिय सौ वर्ष जीने से अच्छा है सक्रिय एक पल जीना, ऐसी ही जिन्दगी नागार्जुन चाहते हैं। नागार्जुन लड़ाकू कवि हैं, कुव्यवस्था भंग हो, सत्ता परिवर्तित हो-यह उनकी हार्दिक कामना है, यही भाव उन्हें उत्साहित, ऊर्जस्वित करता रहता है। कहीं वे तरुणों, मुक्ति सैनिकों का स्वागत करते हैं, कहीं व्यवस्था परिवर्तन के लिए उनका आवाह्न करते हैं कहीं स्वयं उनका साथ देने के लिए आगे हाथ बढ़ाते हैं। यही सक्रियता उन्हें महान कवि बनाती है -

1. "तो उठो -/ मन और तन की समूची ताकत लगा कर
विघ्न-बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, ढाह दो।
अमंगल के, अशुभ के उन हेतुओं को ध्वस्त कर दो।
खोद कर निर्मूल कर दो कन्टकावृत झाड़ियों को।
राह में रोड़े पड़े हैं अमित-अगणित../ उन्हीं से अतलान्त गह्वर पाट डालो।"[1]

2. "आओ आगे आओ, अपना दायभाग लो/ अपने स्वप्नों को पूरा करने की खातिर
तुम्हें नहीं तो और किसे हम देखें बोलो! / निविड़ अविद्या से मन मूर्छित
तन जर्जर है भूख-प्यास से / व्यक्ति-व्यक्ति दुख-दैन्य ग्रस्त है
दुविधा में समुदाय पस्त है /लो मशाल, अब घर-घर को आलोकित कर दो
सेतु बनो प्रज्ञा-प्रयत्न के मध्य / शांति को सर्वमंगला हो जाने दो
खुश होंगे हम-"[2]

नागार्जुन क्रांतिकारी कवि हैं, डॉ. रामविलास शर्मा ने उनके इस रूप को ठीक ही पकड़ा है—"नागार्जुन जितने क्रांतिकारी सचेत रूप से हैं, उतने ही अचेत रूप से भी हैं। उनका क्रान्तिकारीत्व एक ओर साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूंजीवाद की प्रखर आलोचना में प्रकट होता है, दूसरी ओर वह उनकी कला द्वारा हिन्दी जातीयता के स्तर पर विभिन्न जनपदों की श्रमिक जनता को एकताबद्ध करने में भी प्रकट होता है।"[3]

कवि परिवर्तनकामी क्रांतिकारी मुक्ति-सैनिकों को अपने हृदय का अपार स्नेह देता है क्योंकि वो नई दुनिया का निर्माण करेंगे जिसमें गरीबों का शोषण नहीं होगा। निम्नलिखित कविता में उन्होंने लिखा है—

"मैं तुम्हीं को अपनी यह शेष आत्मा अर्पित करूँगा
मैं तुम्हारे ही लिए जिऊँगा, मरूँगा / मैं तुम्हारे ही इर्द-गिर्द रहना चाहूँगा
मैं तुम्हारे ही प्रति अपनी वफादारी निबाहूँगा / आओ, खेत-मजदूर और भूमिदास नौजवान
आओ, खदान-श्रमिक और फैक्ट्री वर्कर नौजवान
आओ, कैम्प के छात्र और फैक्लटियों के नवीन प्रवीण प्राध्यापक
हाँ, हाँ तुम्हारे ही अन्दर तैयार हो रहे हैं / आगामी युगों के लिबरेटर
आओ भई, सामने आओ ! / मैं तुम्हारा चुम्बन लूँगा
मैं तुममें से एक-एक का सिर सूँघूँगा / आओ भई, सामने आओ !
मुझ पगलेट के साथ बातचीत करो / हँसो-खेलो मेरे साथ

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.- 73*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवालीं, पृ. सं.-30*
3. *रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. सं.-154*

मैं तुम्हारी जूतियाँ चमकाऊँगा / दिल बहलाऊँगा तुम्हारा
कुछ भी करूँगा तुम्हारे लिए...../ मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा .....''[1]

इन पंक्तियों में नागार्जुन की उदारता, अहंशून्यता अपनी पराकाष्ठा पर है जिसमें उनके व्यक्तित्व की महानता की झलक मिलती है।

नागार्जुन घोषित रूप से वामपंथी और बुद्धिजीवी हैं जहाँ धार्मिक कर्मकाण्ड और आस्तिकता के लिए स्थान नहीं किन्तु सूर्योदय का मनोहर दृश्य देखकर उनका (बचपन का) ब्राह्मण संस्कार जाग उठता है और वे मन्त्र और जल से उसको अर्घ चढ़ाते हैं, इसे वे छुपाते नहीं दिखाते हैं -

''उगते सूरज का अरूण-अरूण पूर्ण बिंब
जाने कब से नहीं देखा था शिशु भास्कर
*** * * * * ***
देर तक देखेंगे, जी भरकर देखेंगे / करेंगे अर्पित बहते जल का अर्घ
गुनगुनाएँगे गद्‌गद होकर / ''ओं नमो भगवते भुवन-भास्कराय
''ओं नमो ज्योतिरीश्वराय / ''ओं नमः सूर्याय सवित्रे ... ।''
*** * * * ***
पछाड़ दिया है आज मेरे आस्तिक ने मेरे नास्तिक को
साक्षी रहा तुम्हारे जैसा नौजवान 'पोस्ट-ग्रेजुएट'
मेरे इस 'डेविएशन' का ! / नहीं ? मैं झूठ कहता हूँ ?
मुकर जाऊँ शायद कभी ....
कहाँ मैंने तो कभी झुकाया नहीं था यह मस्तक !
कहाँ! मैंने तो कभी दिया नहीं था अर्घ सूर्य को !
तो तुम रत्नेश्वर, मुसकुरा भर देना मेरी उस मिथ्या पर .....''[2]

अपने ऊपर निर्ममता से व्यंग्य करने के कारण ही डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी की यह टिप्पणी सटीक लगती है कि–**''नागार्जुन हिन्दी के उन विरल कवियों में से हैं जिनमें 'आत्मदया' की मनःस्थिति नहीं मिलेगी।''[3]** धन कुबेरों की अय्यासी देखकर कवि का मन विचलित हो उठता है, वह अराजक होकर उसका विरोध करता है, कवि ने लिखा है–

'' मन करता है : / नंगा होकर कुछ घंटों तक सागर-तट पर मैं खड़ा रहूँ
यों भी क्या कपड़ा मिलता है / धनपतियों की ऐसी लीला!''[4]

कवि अपने मन के संशय को प्रकट करके उसे पलायन से बचाता है, 'भोजपुर' कविता में नागार्जुन लिखते हैं –

'' मुन्ना मुझको / पटना-दिल्ली मत जाने दो / भूमिपुत्र के संग्रामी तेवर लिखने दो
पुलिस दमन का स्वाद मुझे भी तो चखने दो / मुन्ना, मुझे पास आने दो
पटना- दिल्ली मत जाने दो
*** * * * * * ***

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-93-94*
2. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-13-14*
3. *नामवर सिंह (सं.), आलोचना, जुलाई-सितम्बर-1987, वर्ष-36 अंक-82, पृ. सं.-68*
4. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-31*

देखो जनकवि, भाग न जाओ / तुम्हें कसम है इस माटी की
इस माटी की / इस माटी की / इस माटी की !''[1]

(ङ) यथार्थवादी कवि

नागार्जुन तीखे यथार्थ बोध के कवि हैं। कल्पना, स्वप्न और मानसिक विलास उनमें बहुत कम है। नागार्जुन की दृष्टि अत्यंत तीक्ष्ण है इसलिए भविष्य का सही अनुमान वे कर पाते हैं यह दृष्टि प्रेमचन्द में थी। यथार्थ के साक्षात्कार के कारण ही उनका व्यंग्य इतना खरा, तीखा और मर्मभेदी हो पाया है, ऐसा लगता है उनकी दिव्यदृष्टि काल और स्थिति के पार सत्य को देख रही है इसलिए उनका अनुमान इतना सही निकलता है। कई कविताएँ दी जा सकती है लेकिन एक उदाहरण ही काफी होगा समग्र क्रांति पर व्यंग्य करते हुए नागार्जुन ने लिखा है–

'' अगले पचास वर्ष और बने रहें कूड़ों के ढेर
भंगियों के जीवन में हो नहीं किंचित भी हेर-फेर
गल्लों के आढतिये मचाएँ अधिकाधिक अंधेर
चुपचाप देते रहें पुष्ट चन्दा अबेर-अबेर
बढ़ती जाए फिर भी समग्र क्रान्ति थी टेर
*** * * * * * * ***
ऊपर-ऊपर मूक क्रांति, विचार क्रांति, सम्पूर्ण क्रांति
कंचन क्रांति, मंचन क्रांति, वंचन क्रांति, किंचन क्रांति
फल्गु-सी प्रवाहित रहेगी भीतर-भीतर तरल मदिर भ्रांति''[2]

ऐसी बहुत सी कविताएँ हैं जहाँ नागार्जुन की दूरदर्शिता का लोहा मानना पड़ता है।

नागार्जुन जहाँ कहीं विसंगति और विडम्बना देखते हैं उनकी व्यंग्य चेतना सक्रिय हो जाती है और वे काव्य-व्यंग्य से उस पर शर-संधान करते हैं। जीवन-जगत की विसंगतियों ने उन्हें एक बड़ा व्यंग्य-कवि बनाया। लेकिन उनका व्यंग्य हल्का और हास्यमय नहीं हो पाया है। समकालीन परिस्थितियों पर व्यंग्य करना निर्भीकता की निशानी है, नागार्जुन में जोखिम उठाने का यह साहस अपार है। नागार्जुन ने प्रचुर मात्रा में व्यंग्य लिखा है इसी प्रचुरता की वजह से आधुनिक कविता में एक व्यंग्य-कवि के रूप में वे विख्यात हो गए हैं जबकि उन्होंने अन्य भावों पर भी पर्याप्त मात्रा में लिखा है।सिर्फ एक उदाहरण देना ही काफी होगा। 'स्वदेशी -शासक' पर व्यंग्य करते हुए नागार्जुन ने लिखा है -

'' हमें सीख दो शान्ति और संयत जीवन की/ अपने खातिर करो जुगाड़ अपरिमित धन की
बेच-बेच कर गाँधीजी का नाम / बटोरो वोट / हिलाओ शीश / निपोड़ो खीस
बैंक -बैलेन्स बढ़ाओ / राजघाट पर बापू की वेदी के आगे अश्रु बहाओ
तैरो घी के चहबच्चों में, अमरित की हौदी में बाबू खूब नहाओ ''[3]

नागार्जुन जहाँ दूसरों पर व्यंग्य करने में तीखे हैं वहीं अपने पर व्यंग्य करने में कठोर। उन्होंने अपने स्वभाव, रूप-गुण, आन्तरिक भाव पर भी कड़ा व्यंग्य किया है जो उन्हें अन्य कवियों से अलग करता है। 'भूल जाओ पुराने सपने', 'स्वगत्: अपने को संबोधित', 'कैसे रहा जाएगा' एवं 'इतना भी कम है प्यारे' जैसी कविताओं में उनके इस रूप को देखा जा सकता है। एक कविता उदाहरण के लिए काफी है–

---

1. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-20-21
2. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-21-22
3. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.- 92

"आदरणीय, / अब तो आप / पूर्णतः मुक्त जन हो !
कम्पलीट्ली लिबरेटेड... / जी हाँ कोई ससुरा / आपकी ..... नहीं
उखाड़ सकता, जी हाँ ! / जी हाँ आपके लिए / कोई भी करणीय -कृत्य
शेष नहीं बचा है - / जी हाँ, आप तो अब / इतिहास पुरूष हो ....
स्थित प्रज्ञ- / निर्लिप्त, निरंजन ..... / युगावतार ! /
जो कुछ भी होना था / सब हो चुके आप! "[1]

आत्ममोह से ग्रस्त नागार्जुन का अपने आप पर ऐसा व्यंग्य करना यही दिखाता है कि यही तटस्थता, निर्ममता उनके व्यंग्य को पैना बनाती है और सत्य को देखने की सूक्ष्म दृष्टि देती है।

डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट ने अपने अंदाज में उनके व्यक्तित्व का उल्लेख किया है—**"नागार्जुन का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद-सी भारतीय कृषक-मजदूर वर्ग के प्रति आत्मीयता, निराला-सा फक्कड़पन और अक्खड़पन तथा अनुचित बातों पर कबीर-सी फटकार-सबका मिला-जुला रूप ही नागार्जुन के व्यक्तित्व का आधार है।"[2]**

ये बिन्दु मिलकर ही नागार्जुन का कवि व्यक्तित्व निर्मित करते हैं। ईमानदारी, करुणा, प्रेम, साहस, सौन्दर्य, आक्रोश और व्यंग्य जैसे परस्पर विरोधी भाव धाराओं से कवि नागार्जुन का व्यक्तित्व अद्‌भुत बन पड़ा है जिसमें सर्वहारा के प्रति कल्याण की कामना है।

---

1. नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-11
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट, नागार्जुन : जीवन और साहित्य, पृ. सं.-40

दूसरा अध्याय

नागार्जुन की काव्य दृष्टि

(1) जन प्रतिबद्धता एवं पक्षधरता का प्रश्न

(2) रूपवादी रुझानों पर व्यंग्यात्मक प्रहार

(3) कवियों पर कविताएँ

(4) संघर्ष और सौंदर्य का सामंजस्य

नागार्जुन दृष्टि-सम्पन्न कवि हैं इसलिए उन्होंने अपने को भटकावों से बचाया है। उन्होंने अपनी प्रकृति, रुचि, संस्कार, शिक्षा और प्रशिक्षण के अनुरूप अपने जीवन और लेखन का लक्ष्य निर्धारित किया और आजीवन उसी पथ पर अग्रसर रहे।

(क) जन प्रतिबद्धता एवं पक्षधरता का प्रश्न

मुक्तिबोध ने लिखा है- "**मनुष्य एक पक्षधर प्राणी है।**"[1] उसे अपनी पक्षधरता घोषित करनी पड़ती है। नागार्जुन 'जनता' के कवि हैं। उनके साहित्य के केन्द्र में 'जनता' है इसी के प्रति वे प्रतिबद्ध हैं और इसी की पक्षधरता उन्हें पसंद है। उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी पक्षधरता घोषित की है—"**अस्सी प्रतिशत जनता हमारी इष्टदेवता है, जो जीवन के आस-पास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हूँ। मैं समाज के घटना-प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हूँ।**"[2]

वे अपने को बार-बार जनकवि कहते हैं और सचेत रूप से अपनी इस छवि की लाज रखते हैं। वे नैतिक रूप से भारत की आम जनता से जुड़े हैं और इन्हीं के कल्याण के लिए अपने जीवन और साहित्य को न्योछावर कर देना चाहते हैं। जनता उन्हें कितनी प्रिय है यह इस बात से प्रमाणित है कि नागार्जुन के पहले काव्य संग्रह 'युगधारा' की पहली कविता 'जन-वन्दना' है। पहले के कवि जहाँ अपनी कविता मंगलाचरण, ईश-वन्दना से शुरू करते थे वहीं नागार्जुन ने 'जन वन्दना' से अपनी कविता की शुरूआत की है। इसमें उन्होंने भारत की कोटि-कोटि जनता में अखण्ड-विश्वास व्यक्त किया है, उनका यह विश्वास मृत्यु पर्यन्त बना रहा।

इस कविता में उन्होंने जनता की वन्दना करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की है—

"हे कोटिशीर्ष हे कोटिबाहु हे कोटि चरण!
युग की लक्ष्मी भव की विभूति कर रहीं तुम्हारा स्वयं वरण
*** * * * * ***
तुम साधारण, तुम निर्विशेष
*** * * * * ***
सुख-सुविधा सब के हेतु सहज
सब सक्षम, सब होंगे प्रबुद्ध
आबाल वृद्ध वनिता-सारे कर्तव्यनिरत, निर्माणशील
सब स्थित प्रज्ञ, सब कलाकार, सब स्निग्ध-शान्त
सब एक सूत्र में गुंफिल, कुसुमावलि -समान
सब में दीपित आत्माभिमान
अमरत्व न चाहेगा कोई, सम होंगे जीवन और मरण !!

---

1. नेमिचन्द्र जैन (सं.), मुक्तिबोध रचनावली, भाग-5, पृ. सं.-180
2. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-72

हे कोटिशीर्ष हे कोटिबाहु हे कोटिचरण !"[1]

कवि ने जनता को ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित कर उसकी वन्दना की है—यह नई काव्य -दृष्टि है, यहीं से निर्णय होता है कि कवि के लिए 'जनता' का क्या स्थान है। कवि की आस्था के केन्द्र में जनता है इसलिए उसकी निष्ठा उसी के प्रति है। नागार्जुन ने सबके कल्याण की कामना करते हुए उसी कविता में लिखा है—

" मैं मुग्ध-मुदित-मन देख रहा उज्ज्वल भविष्य का उपोद्घात
हे निःसंशय, दुविधाविहीन / मैं निष्ठापूर्वक सोच रहा -
कल, व्यक्ति-व्यक्ति के हेतु सुलभ होंगे / अवश्य मौक्तिकाऽऽभरण !!
हे कोटिशीर्ष हे कोटिबाहु हे कोटिचरण !"[2]

नागार्जुन घोषित रूप से प्रतिबद्ध जनकवि हैं। नामवर सिंह ने उनकी प्रतिबद्धता प्रकट करते हुए लिखा है—"इस क्रम में सबसे दिलचस्प है अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा। नागार्जुन प्रतिबद्ध ही नहीं, संबद्घ भी हैं और आबद्घ भी।"[3] उनकी प्रतिबद्धता जनता के प्रति है। उनकी प्रगति के लिए, अपने स्वार्थ के खिलाफ, सबको सही राह दिखलाने हेतु वे प्रतिबद्ध हैं, उन्हीं की पंक्तियों में—

"प्रतिबद्ध हूँ / सम्बद्ध हूँ / आबद्ध हूँ / प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ ..... /.....
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा, प्रतिबद्ध हूँ"[4]

नागार्जुन अपने लक्ष्य के प्रति स्पष्ट हैं, उन्हें कोई संशय अथवा भ्रम नहीं इसलिए सीधे-सीधे अपने लक्ष्य को सबके सामने रखा है। हर तरह के भाव के प्रति अपनी सम्बद्धता और स्वजन-परिजन के प्रेम में आबद्धता कवि स्वंय स्वीकार कर चुका है। उन्होंने जो कुछ लिखा इन्हीं भावों के तहत लिखा, जो कुछ किया इन्हीं भावनाओं को पुष्ट करने के लिए किया। इसी स्पष्टता ने उन्हें भटकाव से बचाया है।

नागार्जन ने सत्ता की दलाली कभी नहीं की। अपनी सुख-सुविधा के लिए उन्होंने कभी किसी राजनेता के आगे अपना सर नहीं झुकाया, हाथ नहीं फैलाया। जब भी उन्हें लगा कि फलां राजनेता जनता के कल्याण के लिए काम नहीं कर रहा उन्होंने उसपर व्यंग्य किया, उनको सचेत किया इसलिए उनकी व्यंग्य की धार कभी भोथरी नहीं हुई और चुनौती तथा ललकार का स्वर उनमें बराबर बना रहा, जनता का ईमानदार कवि ही देश के प्रधानमंत्री को यह कहने का साहस कर सकता है—

"देवि, तुम्हारी प्रतिमा से मैं दूर खड़ा हूँ
छोटा हूँ, पर उन बौनों से बहुत बड़ा हूँ
** * * * * *
जनकवि हूँ, क्यों चाटूँगा मैं थूक तुम्हारी
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बन्दूक तुम्हारी"[5]

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं-9-10*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं-10-11*
3. *नामवर सिंह, नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-8*
4. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-57*
5. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ.सं.-83*

न नागार्जुन को सत्ता का भय है, न शासन का डर, न अपने सुख का लोभ, न किसी चीज का लाभ। सच्चा जनकवि होना काँटों के पथ पर लगातार चलना है किन्तु नागार्जुन में वह साहस, वह धैर्य है तभी तो वे जनकवि हैं। किसी से न डरना उनकी काव्य-दृष्टि है और खरी-खरी बात कहना उस काव्य-दृष्टि का परम धर्म।

नागार्जुन की प्रतिबद्धता स्व-विवेक और आत्म-अनुशासन का हिस्सा है। प्रतिबद्धता का अर्थ उनके लिए राजनीतिक दल की अंध भक्ति नहीं है, जहाँ उन्हें लगा कि दल के लोग संकुचित दृष्टिकोण अपना रहे हैं वहाँ उन्होंने दल की सदस्यता छोड़ दी। अपने साक्षात्कार में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि—**"हम साहित्यकार हैं तो राजनीति की चाटुकारिता वैचारिक प्रतिबद्धता के नाम पर नहीं करेंगे।"**[1]

जब चीन की वामपंथी सरकार ने हमारे देश भारत पर आक्रमण किया तो नागार्जुन से नहीं रहा गया। जनता और देश से अपनी नैतिक प्रतिबद्ता महसूस करते हुए उन्होंने चीन के खिलाफ लिखा। इस संदर्भ में 'पुत्र हूँ भारत माता का, और कुछ नहीं' (नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ. सं.-373-374) कविता पठनीय है। इस क्रम में उन्होंने वामपंथी दल की सदस्यता भी छोड़ दी। अंधभक्ति प्रतिबद्धता के वे कभी समर्थक नहीं रहे। उन्होंने अंदर से प्रतिबद्धता के अनुशासन को स्वीकार किया था, वह उनकी साहित्यिक नैतिकता थी इसलिए वे देश और जनता के साथ खड़े थे। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने साक्षात्कार में कहा है—**"इसलिए प्रतिबद्धता भीतर से हो, ऊपर से थोपी हुई या ओढ़ी हुई न हो। मैं चीनी आक्रमण (1962) से पहले तक सी.पी.आई. का सदस्य रहा। मैंने चीन के खिलाफ लिखा और सदस्यता छोड़ दी। इससे वैचारिक प्रतिबद्धता में मेरे लिए विचार से तो मुझमें कोई फर्क नहीं आया।"**[2]

उनकी प्रतिबद्धता 'मानव जाति' से है, जहाँ कोई बन्धन इसके बीच आता है उसे वे पल भर में तोड़ देते हैं। ऊपर से लगता है कि नागार्जुन में चंचलता है, भावुकता है, अपरिपक्वता है किन्तु ऐसा है नहीं। आन्दोलन के द्वारा सत्ता परिवर्तन हो और जनता का अधिक से अधिक कल्याण हो यह नागार्जुन की इच्छा थी। इसलिए वे जे. पी. आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा लेते हैं किन्तु वहाँ लोगों के भटकाव को वे नजदीक से देख कर पुनः उसके विरोध में चले गए। नागार्जुन में यह परिवर्तन जन प्रतिबद्धता के कारण ही हुआ। अपना मजाक उड़वा कर भी उन्होंने अपनी भूल को सुधारा। आन्दोलन में भाग न लेना कायरता थी। जेल जाकर आन्दोलन के सच्चे स्वरूप को देखकर उसके खिलाफ लिखना अधिक साहस का काम था लेकिन नागार्जुन तो इसी साहस के लिए जाने जाते हैं अपनी भूल और आपने भटकाव को जनता के सामने लाते हैं। जे. पी. आन्दोलन के बारे में उनका स्पष्टीकरण जानना चाहिए इससे भ्रम दूर होता है, - "हमें **सही लगा तो हम जे. पी. के साथ गए। जेल के भीतर महसूस किया कि जे. पी. का आन्दोलन भटका हुआ है तो बाहर आने पर आंदोलन के विरोध में अपनी बात रखी। ....हमें जो सही लगता है हम करते हैं। हमारी वैचारिक प्रतिबद्धता मानव जाति के लिए है ।"**[3]

नागार्जुन शोषितों, मजलूमों का समर्थन करते हैं क्योंकि यही जनकवि की कविता का मुख्य उद्देश्य है उन्होंने निडर होकर फाँसी की सजा पाए हुए बारह वीरों को सांत्वना देते हुए लिखा—

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-47

2. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-46-47

3. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-47

" झूलने देंगे नहीं हम तुम्हे फाँसी पर /जेल में सड़ने नहीं देंगे तुम्हें हम
सजा के उस एकतर्फा फैसले को बदलवा कर ही रहेंगे -
हे तिलंगे वीर बारह, तुम्हारे ये प्राण हैं अनमोल
इसका अन्त हम होने न देंगे- / कोटि कंठो का निषेधी स्वर सुनाई दे रहा है
मुझे आशा ही नहीं विश्वास है दृढ़, / बाध्य होकर सुनेंगे समवेत स्वर शासक
खुलेगा फिर केस जिसमें सफाई तुम दे सकोगे / न्याय होगा न्याय का नाटक न होगा
बारहो तुम फिर हमारे बीच जल्दी लौट आओगे"[1]

शायद ही किसी कवि की कविता श्रमशील जनता के समर्थन में इस तरह खड़ी है। यदि कविता हमें अन्याय का विरोध करना नहीं सिखाती तो कविता लिखने से क्या फायदा। प्रेमचन्द ने 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक लेख में साहित्य और साहित्यकार के कर्तव्य पर प्रकाश डालते हुए ठीक ही लिखा था - **"यों कहिये कि वह मानवता, दिव्यता और भद्रता का बाना बाँधे होता है। जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है।"[2]**

नागार्जुन प्रेमचन्द और निराला के बताए हुए इसी रास्ते के राही थे। जो काम उन लोगों ने अपने साहित्य द्वारा किया उसे नागार्जुन ने और प्रखर ढंग से अपनी कविताओं के माध्यम से किया।

नागार्जुन हर समस्या का समाधान जनता को सामने रख कर करते हैं। कश्मीर हमारे लिए आजादी के समय से ही सिरदर्द बना हुआ है, जितना इसे सुलझाने का प्रयास किया जाता है वह उतना ही उलझता जाता है, नागार्जुन ने इसका एक मात्र समाधान जनता के मत के ऊपर छोड़ा है। थोपा हुआ समाधान न आज तक सफल हुआ है न होगा, जहाँ समस्या है वहाँ की जनता इसका समाधान करेगी, सरकार को उसी के अनुरूप रणनीति बनानी चाहिए। 50 वर्षों के अनुभव से यदि हमने इतना भी नहीं सीखा तो कुछ भी कहना व्यर्थ है, नागार्जुन ने प्रारम्भ में ही लिखा था -

TH-12113

"नहीं तुम्हारा नहीं हमारा काशमीर जनता का है काशमीर !
जोड़ नही सकता अब कोई हरिसिंह की यह फूटी तकदीर !
*** * * * * ***
काश्मीरी ही काश्मीर का कर सकते उद्धार !
भैया, आप करेगी जनता अपना बेड़ा पार!"[3]

जनकवि को ही जनता पर इतना विश्वास हो सकता है। इस कविता में नागार्जुन राजा से अधिक प्रजा को महत्त्व देते हैं। यही उनकी काव्य दृष्टि है।

कवि नागार्जुन विसंगति और विडम्बनाओं को पूरे सन्दर्भ सहित उभारने वाले कवि हैं। जहाँ कहीं भी उन्होंने असंतुलित समाज देखा उनकी लेखनी प्रहार करते हुए चल पड़ी! 'अन्न-पचीसी' कविता इसी तरह की कविता है। इसमें कवि ने अन्न को ब्रह्म कहते हुए सामाजिक विसंगति को उभारा है, वे समाज के शोषित तबके को उठ खड़े होने का आह्वान करते हैं, स्वयं वे कवियों को स्वप्न लोक से निकल कर यथार्थ धरातल पर उतरने की सलाह देते हैं। स्वप्न की दुनिया, शोषण की दुनिया, विसंगत दुनिया कवि को कभी नहीं आकर्षित करती; वे सदैव उसके परिवर्तन की बात सोचते हैं। कवि की दृष्टि से यह बात छुपी नहीं

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-27
2. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ. सं.-13
3. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.- 40-41

Jawaharlal Nehru University Library

है कि शोषण युक्त समाज का खात्मा कभी न कभी होगा इसलिए जितनी जल्दी हो उसके अन्त का उपाय करो। कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–

"बैलों के साथी हलधर, तुम हँसिया वाले आओ!
खान श्रमिक तुम भूत सरीखे काले-काले आओ ! / .....
आओ तुम बेकार पंगु तुम, बैठे-ठाले आओ !
बैलों के साथी हलधर, तुम हँसिया वाले आओ! /.....
हम भी अब हल -बैल सँभालें रचना-फचना छोड़ें!
काफी गोद लिया कागज, आओ अब धरती कोड़ें,
खिला चुके आकाश कुसुम, मिट्टी से नाता जोड़ें
अन्न नहीं है उधर, इधर आओ अपना रुख मोड़ें!"[1]

नागार्जुन ठोस काव्य-दृष्टि वाले कवि हैं। वे बीमारी के मुख्य कारण को पकड़ लेते हैं–'रोटी, कपड़ा और मकान' हमारे देश की मुख्य समस्या है, इस पर उन्होंने बहुत सी कविताएँ लिखी हैं। नागार्जुन अचूक काव्य-दृष्टि वाले कवि हैं वे जीवन और जगत को सुखमय बनाना चाहते हैं ताकि आदमी आदमी की तरह जी सके, कीड़े मकोड़े की तरह नहीं। इसलिए बार-बार उनकी दृष्टि इस मूल समस्या की ओर जाती है। कबीर से नागार्जुन प्रेरणा लेते हैं जनता पर उन्हें अटल विश्वास है–

"कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ
बन्दा क्या घबराएगा, जनता देगी साथ"[2]

नागार्जुन खुद को जनकवि समझते हैं, यही भाव उनका सम्बल है, इसी भाव की बदौलत वे शोषक समुदाय से निडर भिड़ते हैं। कई कविताओं में उन्होंने इस बात को बदल-बदल कर कहा है -

"कोटि-कोटि / अन्नहीन, वस्त्रहीन जनों का प्रतिनिधि !
तू भला बाहर नहीं निकलेगा ! / किसकी सामर्थ्य है / जो तुझे रोक सके!"[3]

इस शक्ति का राज उनकी जन सम्पृक्ति है। श्रमिकों, कृषकों और निम्नवर्गीय जनता के प्रति उनका लगाव देखने योग्य है। गोआ तट के मछुआरों पर अपना प्यार छलकाते हुए नागार्जुन ने लिखा है-

"मैं भी इन पर बलि-बलि जाऊँ । / मैं भी इन पर बलि-बलि जाऊँ ।
मेरी इस भावुकता मिश्रित / बुद्धूपन पर तुम मुसकाओ
पागल कह दो, कुछ भी कह दो / पर मैं इन पर बलि-बलि जाऊँ!"[4]

कवि का यह प्रेम न ऊपरी है न दिखावा । यह उनकी निश्छल हार्दिक अभिव्यक्ति है, इसलिए उन्हें अपने जनकवि होने पर गर्व है। कवि क्रांतिकारियों और प्रतिरोधियों के साथ है, उन्होंने बार-बार इस बात को कविता में प्रकट किया है, वे शहीद होना चाहते हैं-

"एक-एक को गोली मारो..... / हाँ-हाँ भाई मुझको भी तुम गोली मारो
..../ मैं भी यहाँ शहीद बनूँगा / अस्पताल की खटिया पर क्यों प्राण तजूँगा

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-59
2. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-60
3. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या, पृ. सं.-70
4. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंनें, पृ. सं.-12

...../ संग तुम्हारे, साथ तुम्हारे / मैं न अभी मरने वाला हूँ .....
मर-मर कर जीने वाला हूँ .....''[1]

जो शोषितों के साथ शहीद होना चाहता है वह मरकर भी अमर होता है। जो जीवन से मोह करता है वह गुमनाम मौत मरता है इसलिए कवि कहते हैं 'मर-मर कर जीने वाला हूँ .....' यह विश्वास जन समर्थन के कारण ही है।

जनता के कारनामों का कवि रस ले लेकर वर्णन करता है जैसे कवि उनसे बहुत प्रसन्न है । जनता की जागरूकता सक्रियता उनको आह्लादित करती है, एक जगह जनता गुंडों की धुनाई करती है। इस पर कवि प्रफुल्ल होकर लिखते हैं कि -

''वो तो पब्लिक के तेवर थे / गुंडों की हो गई धुनाई ।
पुलिस सहमकर अलग हट गई / उसने अपनी जान बचाई''[2]

नागार्जुन शाषितों को अपनी जान से भी अधिक चाहते हैं वे उनका समर्थन ही नहीं करते हैं, उनके लिए जीना-मरना चाहते हैं। 'मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा' कविता में उन्होंने लिखा है–

''आगामी युगों के मुक्ति-सैनिक, कहाँ हो तुम?
निपीड़ित-शोषित मानवता के उद्धारक, कहाँ हो तुम ?
आओ, सामने आओ बेटे / मैं तुम्हारा चुम्बन लूँगा
मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा
*** * * * * * * ***
मैं तुम्हीं को अपनी यह शेष आत्मा अर्पित करूँगा
मैं तुम्हारे ही लिए जिऊँगा, मरुँगा / मैं तुम्हारे ही इर्द-गिर्द रचना चाहूँगा
मैं तुम्हारे ही प्रति अपनी वफादारी निबाहूँगा
आओ, खेत मजदूर और भूमिदास नौजवान
आओ, खदान -श्रमिक और फैक्ट्री-वर्कर नौजवान
आओ कैम्प के छात्र और फैक्लटियों के नवीन प्रवीण अध्यापक
हाँ-हाँ, तुम्हारे ही अन्दर तैयार हो रहे हैं / आगामी युगों के लिबरेटर
आओ भई, सामने आओ ! / मैं तुम्हारा चुम्बन लूँगा
मैं तुममें से एक-एक का सिर सूँघूँगा / आओ भई, सामने आओ !
मुझ पगलेट के साथ बातचीत करो / हँसों-खेलो मेरे साथ
मैं तुम्हारी जूतियाँ चमकाऊँगा / दिल बहलाऊँगा तुम्हारा
कुछ भी करूँगा तुम्हारे लिए ...../ मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा ....''[3]

इसे कहते हैं जनप्रतिबद्धता, जहाँ कवि अपनी जान, अपना सबकुछ न्योछावर करने में भी संकोच नहीं करता ।

(ख)रूपवादी रुझानों पर व्यंग्यात्मक प्रहार

नागार्जुन कविता को जन-मन अभिव्यक्ति और जन-जागरण का गम्भीर साहित्यिक माध्यम समझते हैं इसलिए जो कवि विषय वस्तु से अधिक रूप-शिल्प पर, तत्कालीन समस्या से अधिक शाश्वत मूल्यों पर और जीवन-जगत की महत्त्वपूर्ण समस्या से अधिक कला पर जोर देते हैं उनपर वे कटु व्यंग्य करते हैं। प्रेमचन्द

---

1. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-13
2. नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-31
3. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-93-94

और वामपन्थी साहित्यकारों की तरह वे साहित्य को जन-जागरण का एक सशक्त माध्यम मानते हैं इसलिए कल्पना और स्वप्न में जीने वाले सुकुमार अभिजात्य कवियों, साहित्यकारों की प्रवृत्तियों पर व्यंग्य करते हैं। यह नागार्जुन की काव्य -दृष्टि है कि साहित्य को जनता के कल्याण के लिए काम करना चाहिए नहीं तो उसका सृजन व्यर्थ है।

'एक मित्र को पत्र' कविता में नागार्जुन ने अपने उस कवि मित्र पर करारा व्यंग्य किया है जिसके पास बाप-दादों की उर्पाजित भूमि है, जो सर्वसाधन सम्पन्न है, जो 2-3 प्रेमिकाओं को याद करता रहता है और मधुर कविताएँ लिखता है।

कवि का कहना है कि बेकारी, गरीबी, बीमारी और लाचारी के ऐसे भयानक माहौल में इस तरह की कविता करना क्या खतरनाक नहीं हैं। यदि हम अपने माहौल के प्रति इतने संवेदनहीन हो गए हैं और सिर्फ अपने स्वार्थी भावों को अभिव्यक्त कर रहे हैं तो हम कितने खोखले हैं, यह स्वंय विचारणीय प्रश्न है। उन्होंने अपनी गरीबी और उस कवि के अय्याश जीवन की तुलना व्यंग्यपूर्ण ढंग से की है–

"मैं प्रवासी
मित्र, तुम तो देश में हो
हो रही ईर्ष्या तुम्हारे भाग्य से पर क्या करूँ
अभिशप्त ठहरा
बंधु, मेरे पास भी यदि बाप-दादों की उपार्जित भूमि होती
धान होता बखारों में आम-कटहल -लीचीयों के बाग होते
पोखरा होता मछलियों से भरा फिर क्या न मैं भी
याद कर प्रथमा द्वितीया या तृतीया (प्रेयसी) को सात छेदों की रूपहली बाँसुरी में फूँक भरता
* * * * * * * * *
कलम घिसुओं का हमारा यह नया संसार
किसी भी श्रीमंत से क्या माँगता है भीख?
लेखनी ही है हमारा फार
धरा है पट, सिंधु है मसिपात्र
* * * * * * * * *
क्योंकि हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद है मालूम
कि हम पर सीधे पड़ी है गरीबी की मार
सुविधा प्राप्त लोगों ने सदा समझा हमें भू भार / लिखूँ क्या प्रिय मित्र
तुम तो स्वंय हो सज्ञान / पूर्वजों की परिधि में ही कैद रह कर
कर रहे हो विकट प्रायश्चित / प्राणदीप जला करके / अंधेरे में
सदानीरा के किनारे / सतत तुम आसीन / बनोगे क्या बोधिसत्व नवीन?"[1]

यहाँ नागार्जुन का व्यंग्य उतना तीखा नहीं हो सका है क्योंकि उसमें अपनी तुलना शामिल है। इसमें कवि कहना चाहते हैं कि तुम साहित्य की सेवा नहीं कर रहे, उसका भोग कर रहे हो। जबकि अभाव ग्रस्त हम जैसे कवि संघर्ष में जीकर भी साहित्य की श्री वृद्धि कर रहे हैं। लेकिन सब अमीर लेखकों के बारे में कवि का यह मत नहीं है, 'रवि ठाकुर' कविता में कवि ने बड़े सम्मान के साथ उनको याद किया है क्योंकि

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-65-66

साधन सम्पन्न होते हुए भी उन्होंने अकर्मण्यता का रास्ता नहीं अपनाया । आलसी और विलासी नहीं हुए।

नागार्जुन जनता के कवि हैं, जन पक्षधरता उन्हें स्वीकार है वे तटस्थ रह कर यथास्थिति देखने वाले कवि नहीं हैं। न ही अपने समय और समाज की समस्याओं से मुँह मोड़ने वाले कवि हैं। जिस कवि में वे पलायन की प्रवृत्ति देखते हैं, व्यंग्य करते हैं। पंत जी छायावाद के बड़े कवि थे लेकिन 1950 ई0 के आस-पास वे जनता से कटने लगे थे उस पर व्यंग्य करते हुए नागार्जुन ने उन्हें सचेत करने का प्रयास किया है—

"चाहते हो - / शान्ति, शाश्वत शान्ति / घन आनन्द / चिर कल्याण
अक्षय अमृतधारा / तो उठो - / मन और तन की समूची ताकत लगा कर
विघ्न-बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, ढाह दो। / .....
राह में रोड़े पड़े हैं अमित-अगणित..../ इन्हीं से अतलान्त गह्वर पाट डालो!
*** * * * * * * * ***

अन्यथा - / कुछ भी नहीं तुम कर सकोगे।
बहुत होगा, भाग कर शिमला कि नैनीताल / अथवा मसूरी के पास जाकर
ललित लोकायन बनाकर / वहीं क्षेत्रान्यास लोगे
*** * * * * * * * ***

अजी आओ - / इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत,
कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है / पक्षधर की भूमिका धारण करो.....
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा.../ अगर तुम निर्माण करना चाहते हो
शीर्ण संस्कृति को अगर सप्राण करना चाहते हो।"[1]

नागार्जुन ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि शान्ति चाहते हो तो जीवन और जगत की विसंगतियों को खत्म करो, जनता का पक्ष लो, जगह बदल लेने से समस्याएँ ओझल नहीं होती, यह पलायन है इससे बचो।

नागार्जुन न सिर्फ रूपवादी, कलावादी प्रवृत्तियों पर ही व्यंग्य करते हैं वरन फैशनपरस्त कवियों की वेशभूषा को भी अपने कटाक्ष का निशाना बनाते हैं। आम जनता से दूर ऐसे कवि अपने अभिजात्य रहन-सहन से जिस प्रवृत्ति को हवा दे रहे हैं कवि उनकी आलोचना करते हैं-

"कोटरगत नेत्र, धँसे हुए गाल / उदयशंकर -कट के कुंतलीन बाल
गमन मराल का, चितवन चकोर की / कुहासा -सी भाषा, साँझ की न भोर की
कलित कलकंठ, विकल वेदनामय गाना / पौरूष नदारद, स्त्रैण सवा सोलह आना
*** * * * * * * * ***

कौन हैं आप ? शिव-शिव ! हरे हरे !! / और कौन होगा अरे !
मृदु मसृण विधुवदनी छवि है / ढलते दिनमान का छायावादी कवि है!"[2]

यहाँ कविवर पंत पर यह प्रहार किया गया है छायावाद के प्रमुख कवि पंत बाद में जनता से कितने अलग हो गए थे और अपने रहन-सहन पर इस तरह ध्यान देने लगे थे कि कविता की पकड़ उनसे छूट गई, बाद का उनका काव्य एकाकी होते कवि की कल्पना भर रह गई। यही होता है जब कवि जनता से कटकर दिशाहीन हो जाता है, प्रतिभा को घुन लग जाता है और कविता की मौत हो जाती है।

इसी तरह जो कवि देश और दुनिया से ध्यान हटा कर सिर्फ स्वार्थ लिप्सा में लगा रहता है वह

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-73-74
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-81

किसी का क्या कल्याण कर सकता है, नागार्जुन ने 'कवि कोकिल' कविता में ऐसे कवियों की खबर ली है–

"सुरभित चीनांशुक फैला कर राखों पर, धूलों पर
देश-काल का ख्याल हटा कर झूल रहे झूलों पर / अजी, धन्य हो कवि कोकिल तुम!
आज नहीं तो कल अवश्य ही नंदनवन में आग लगेगी
भस्मसात होने वाला है नीड़ तुम्हारा / काम आएगी स्वर्णकिरण की जाली
पैरासूट बना लेना प्रिय / डैनों में रह गई न ताकत / उड़ तो क्या सकते हो !!"[1]

अपने समय और समाज की समस्याओं से कट कर कोई कवि न सच्चा नागरिक हो सकता है न सच्चा कवि। जब समाज समस्याओं की आग में जल रहा हो तो कवि का घर कब तक बच सकता है? इसलिए पलायन करना व्यर्थ है, जूझना ही सत्य है। कवि सुख के झूले में झूलने वाले कवियों पर व्यंग्य करता है। एक अन्य कविता 'पुलकित-कुलकित' (नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ. सं.-168) में भी नागार्जुन ने पंत जी की नाजुक अदा पर व्यंग्य किया है।

साहित्य सृजन में वस्तु और रूप, विषय और कला का महत्त्व बराबर है किन्तु सिर्फ कला पर ध्यान देने वाले कवियों पर नागार्जुन प्रहार करते हैं। जब आपको विषय का ज्ञान ही नहीं है तो कला की कलाबाजी कितने दिनों तक जनता को प्रभावित-प्रेरित कर सकती है। मूल चीज है विषय। यदि कवि सही विषय नहीं चुन पाता है तो उसे कितना भी क्यों न सजाया जाए उसका कुछ नहीं हो सकता । कला और रूप विषय के बाद ही हैं। शरीर के बाद ही श्रृगांर शोभा देता है। नागार्जुन ने ऐसे कवियों पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है -

"नहीं नहीं, अभी नहीं / अभी तो सिरिफ श्री गणेश है
अपने पदों को / बार-बार माँजो/माँजो और माँजो, माँजते जाओ
लय करो ठीक, फिर फिर गुनगुनाओ / मत करो पर्वाह- क्या है कहना
कैसे कहोगे, इसी पर ध्यान रहे / चुस्त हो सेन्टेन्स दुरूस्त हो कड़ियाँ
पकें इतमीनान से गीत की बड़ियाँ / ऐसी जल्दी भी क्या है?
*** * * * * * * * * ***
वस्तु है भूसी, रूप है चमत्कार / ध्वनि और व्यंग पर मरता है संसार
*** * * * * * * * ***
ध्वनि-ही-ध्वनि देते, देते मात्र लय-तान / भावों की दलदल में आकंठ-मग्न काव्यकला
त्राहि-त्राहि कर रही उद्धार करो उसका"[2]

नागार्जुन कथ्य और कला दोनों पर बराबर ध्यान देने वाले कवि हैं इसलिए उनकी कविता जनप्रिय है जो लोग सिर्फ कला की अराधना करते हैं उनकी कविता कमजोर हो जाती है। नागार्जुन ने अज्ञेय जैसे कवियों पर इन कविताओं के माध्यम से व्यंग्य किया है।

'आत्मा की बाँसुरी' कविता में नागार्जुन का व्यंग्य लाजबाब है। उन साहित्यकारों -आलोचकों के प्रति जो आत्मा और शाश्वत शांति की खोज में लगे रहते हैं, जो सांस्कृतिक संकट का रोना रोते हैं किन्तु मोटी-मोटी तनख्वाह पाते हैं और गंभीर साहित्यक चर्चा करते हैं। जिन्हें न जनता की फिक्र है, न देश की, न इनकी समस्याओं से कोई सरोकार। वे बड़ी-बड़ी बात, बड़े-बड़े सिद्धातों की आड़ में मलाई उड़ाते हैं और

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-83

2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-106-107

सांस्कृतिक संकट का रोना रोते हैं, कविता उद्धृत करता हूँ क्योंकि वही बहुत कुछ कहती है -

"पता नहीं / कितनी छेद हैं / तुम्हारी आत्मा की बाँसुरी में

*** * * * * * * * * * ***

जपते रहो निश-दिन माला बना कर / परिमल परिमल मकरंद-मकरंद
पराग-पराग-पराग सुरभि-सुरभि-सुरभि / मूठ की मूठ जलाओ अगरबत्तियाँ एक ही बैठक में
गुलाब-गुलदाउदी-चम्पा-चमेली की / अधखिली कलियों से सजाओ गुलदस्ते
मटनचाप, आइस्क्रीम, कटलेट, कॉफी...../ करो तरोताजा दिन-ओ-दिमाग को
और फिर निकाल कर रेशमी रूमाल / तरल त्रिभुज अधरोष्ठ चट से पोंछ लो
आकर ब्वाय ले गये तस्तरियाँ

*** * * * * * * * * * * ***

सर्वतन्त्र स्वतंत्र, निर्लिप्त-निरंजन कलाकार / अन्तरतर के प्रति सर्वथा ईमानदार
बड़ी-बड़ी तनख्वाह, प्रचुरतम रायल्टी / एकमात्र शाश्वत सत्य के प्रति लायल्टी
बाकी सब ठीक है

*** * * * * * * * * * * * ***

सभी ओर धुंध/ सब ओर कुहासा / निकलोगे कैसे विकट चक्रव्यूह से ?
लील तुम्हें जाएगा सांस्कृतिक संकट / नादान अभिमन्यु, क्या तुम करोगे ?"[1]

परिमल ग्रुप के कवियों-आलोचकों के बनावटी साहित्यिक संकट पर कवि ने चुभता हुआ व्यंग्य किया है। इस प्रवृति से न साहित्य का भला होगा, न समाज का फिर इतना आडम्बर क्यों?

नागार्जुन उन कवियों को भी नहीं छोड़ते जो शासन की गोद में बैठ कर सत्ता का सुख भोगते हैं और तमाम सरकारी सुविधाओं का दोहन करते हैं। उनका ध्यान जनता और साहित्य के प्रति कम होता है अपनी सुविधाओं के प्रति अधिक। 'रचो-रचो मधुर गीतम्' में कवि कहते हैं-

"रचो रचो मधुर गीतम् / विविध भारती आमन्द / सैर करो निखिल विश्व
मौज करो निर्द्वंद्व / ले लो कवि इमर्ती / ले लो कवि कलाकन्द
बनो जी देवीदयाल / गिरधारी फटकचन्द"[2]

इस तरह हम देखते हैं कि जनता से विमुख, समाज की समस्याओं से असंपृक्त, रूपवादी , कलावादी, अभिजात्य, सुविधाभोगी कवियों की विलास पूर्ण साहित्य सर्जना के नागार्जुन घोर विरोधी हैं और अवसर पाते ही उनपर व्यंग्य करते हैं। वे जनता के संघर्षो में साथ देने वाले, उनको जगाने वाले उनकी हिमायत करने वाले साहित्यकारों की प्रशंसा करते हैं यही उनकी मूल चेतना है, यही उनकी काव्य-दृष्टि है।

(ग) कवियों पर कविताएँ

नागार्जुन ने देशी-विदेशी कवियों, साहित्यकारों पर बहुत सी कविताएँ लिखी हैं। कुछ कवियों-साहित्यकारों से वे प्रभावित हैं, कुछ से प्रेरणा लेते हैं, कुछ को प्यार करते हैं कुछ को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं इस तरह एक लम्बी फेहरिस्त है इन कवियों-साहित्यकारों की । इनको बार-बार याद करना नागार्जुन की काव्य-दृष्टि का एक हिस्सा है।

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-21
2. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या, पृ. सं.-33

नागार्जुन बहु पठित कवि हैं, प्राचीन साहित्य का पर्याप्त ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया है इसलिए अपनी परम्परा के उन कवियों को वार-बार याद करते हैं जो उन्हें पसन्द हैं। 'कालिदास' ऐसे ही महाकवि हैं जो नागार्जुन की काव्य-चेतना के हिस्सा हैं। संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन ही नागार्जुन ने नहीं किया वरन संस्कृत में उन्होंने कविताएँ भी लिखी हैं, बादल और प्रकृति को याद करते हुए वे कालिदास की रचना भूमि से टकराते हैं -

"कहाँ गया धनपति कुबेर वह / कहाँ गयी उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के / व्योम प्रवाही गंगाजल का
ढूँढा बहुत परन्तु लगा क्या / मेघदूत का पता कहीं पर
कौन बताये वह छायामय / बरस पड़ा होगा न यहीं पर
जाने दो, वह कवि कल्पित था ..... बादल को घिरते देखा है।"[1]

संस्कृत में नागार्जुन कालिदास से सबसे अधिक प्रभावित हैं, उन्होंने स्वीकार किया है—**"संस्कृत में कालिदास की सूझ (मेघदूत) लाजवाब है। भारतीयता के प्रतीक के रूप में यदि एक ही व्यक्ति का नाम लेने को कहा जाए तो मैं कालिदास का ही नाम लूँगा"[2]**

कालिदास की प्रतिभा का कवि कायल है, कालिदास की परदुखकातरता, साहित्य में उसकी संवेदशील अभिव्यक्ति कवि के लिए चुनौती है जिसे कवि ने बड़े मार्मिक प्रश्न के द्वारा उठाया है-

"कालिदास, सच-सच बतलाना ! / इंदुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे? / कालिदास सच-सच बतलाना ।
*** * * * * * ***

पर पीड़ा से पूर-पूर हो / थक-थक कर और चूर-चूर हो
अमलधवन गिरि के शिखरों पर / प्रियवर, तुम कब तक सोये थे?
रोया यक्ष कि तुम रोये थे ? / कालिदास सच-सच बतलाना!"[3]

नागार्जुन संघर्षशील परम्परा की ऊर्जा अपनी शिराओं में महसूस ही नहीं करते उसे अभिव्यक्त भी करते हैं। कबीर के बारे में उनका कहना है- **"हाँ, कबीर हमको बहुत भाते हैं। बहुत अच्छे लगते हैं।"[4]** कबीर के संघर्ष, विरोध, विद्रोह और व्यंग्य से कवि को प्रेरणा मिलती है तभी तो वे कह उठते हैं—

"कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ
बन्दा क्या घबराएगा, जनता देगी साथ"[5]

यहाँ नागार्जुन अपने आप को कबीर कह रहे हैं, वे अपने को उन्हीं का वंशज मानते हैं, बेलाग-बेलौस कहने में क्या वे कबीर से कम हैं ?

नागार्जुन अपने देश के महान और बड़े साहित्यकारों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं इसमें देश की अन्य भाषाओं के कवि भी शामिल हैं । हिन्दी के तीन वरिष्ठ साहित्यकारों से नागार्जुन बहुत कुछ सीखते हैं, ये तीनों हैं-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर नागार्जुन ने एक कविता लिखी उसमें उनके साहित्यिक और ऐतिहासिक योगदान

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-68
2. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-47
3. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-44-45
4. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-48
5. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-60

की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है और आज के आजाद भारत की विडम्बना का उल्लेख किया गया है।एक ओर कवि उनको याद करके उनकी प्रशंसा कर रहा है तो दूसरी ओर प्रजातंत्र के बुरे हाल पर आँसू बहा रहा है। नागार्जुन कभी वर्तमान को नहीं भूलते यह उनकी खासियत है। उसी कविता में उन्होंने लिखा है–

"जय फक्कड़ सिरताज, जयति हिंदी निर्माता !
जय कवि-कुल गुरु! जयति-जयति चेतना प्रदाता!
क्लेश और संघर्ष छोड़ दिखलावे क्या छवि
दीन-दुखी दुर्बल दरिद्र हम भारत के कवि !
जो बना निवेदन कर दिया, काँटे थे कुछ, शूल कुछ।
नीरस कवि ने अर्पित किए लो श्रद्धा के फूल कुछ ।"[1]

'प्रेमचन्द' हिन्दी साहित्य के ऐसे अनुपम रचनाकार हैं जो अपनी कमर्ठता, संघर्षशीलता और साहित्यिक योगदान के लिए सभी लेखकों के प्रेरणास्रोत हैं, वे नागार्जुन को विशेष प्रिय हैं, नागार्जुन बार-बार उन्हें आदर के साथ याद करते हैं और उन्हें अपना साहित्यिक गुरु मानते हैं-

"अब तक भी हम हैं अस्त-व्यस्त / मुदित-मुख निगड़ित चरण-हस्त
उठ-उठकर भीतर से कण्ठों में टकराता है हृदयोद्‌गार
आरती न सकते हैं उतार / युग को मुखरित करने वाले शब्दों के अनुपम शिल्पकार।
हे प्रेमचन्द
*** * * * * ***
हे अग्रज इनसे तुम भली-भाँति परिचित थे।
*** * * * * ***
तुम जला गये हो मशाल / बन गया आज वह ज्योति-स्तम्भ
कोने-कोने में बढ़ता ही जाता है किरनों का पसार / लो, देखो अपना चमत्कार।"[2]

नागार्जुन आशावादी साहित्यकार हैं। प्रेमचन्द द्वारा चलाई गई मशाल के प्रकाश को नागार्जुन जन-जन तक पहुँचा रहे हैं।

नागार्जुन ने प्रेमचन्द पर एक और कविता लिखी है हालाँकि उसका सन्दर्भ दूसरा है। प्रेमचन्द की जन्म शताब्दी वे लोग मना रहे हैं जो उनकी विचारधारा के घोर विरोधी थे इसलिए नागार्जुन ने व्यंग्य करते हुए लिखा–'लमही से भागे प्रेमचन्द'।

"आ जुटे अचानक गुपचुप ही
कुछ नाम उछालू गर्जमन्द
दौड़े शब्दों के सौदागर
दौड़े शिल्पों के नटनागर
पंडों ने घेर लिया घर को
लमही से भागे प्रेमचन्द"[3]

इससे बड़ा प्रेमचन्द का अपमान क्या होगा कि उनके विरोधी उनकी जन्म शताब्दी का जश्न मना रहे हैं।

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-17
2. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-9-10
3. नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-44

छायावाद के प्रमुख कवि निराला जी पर नागार्जुन का असीम प्रेम है। वे उनकी तारीफ करते नहीं थकते। निराला का संघर्षमय जीवन, निम्न जनता से प्रेम, उदार हृदय, करुणामय, महादानी और महा-अभिमानी रूप कवि की आँखों में छाया है, वे उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा करते हुए उनसे प्रेरणा लेते हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंनें स्वीकार किया है कि **"निराला की दानवीरता अपने आप में अनोखी थी। ममता से ओत-प्रोत उनके हृदय में संत का निवास था।....उनका स्वाभिमान मुझे हौसला देता है।"**[1]

निराला पर नागार्जुन ने दो कविताएँ लिखी हैं जो अपनी प्राण शक्ति और प्रशंसात्मक ऊर्जा के कारण बेजोड़ हैं। नागार्जुन जब किसी पर व्यंग्य करते हैं तो उसकी धज्जी उड़ा देते हैं और जब किसी की प्रशंसा करते हैं तो उसे महान बना देते हैं, ऐसे निराला महान थे, और उनकी प्रशंसा के योग्य भी–

"हे औढ़र औघड़ बंभोला / परम प्रबुद्ध महाकवि
हे ममतामय पिता, स्नेही सखा / अकारण बंधु / सिद्ध आचार्य
*** * * * * ***

प्रपितामह तुम नये-नये पौधों के / तुम उपादान कारण मानस सौधों के
महामहिम, शुभमूर्ति, यशोधन / तुम से ही पाते आए हैं हम उद्‌बोधन
प्रतिभा की यह कली-खिली है / तुम से ही चेतना मिली है
जय लोकोत्तर ! जय युग द्रष्टा ! कवि-कुलगुरू भीम ललाम।
जनयुग का यह रिक्त हस्त कवि सादर करता तुम्हें प्रणाम!"[2]

दूसरी कविता में नागार्जुन ने उन्हें 'दधीचि' और 'नीलकंठ' जैसे विशेषणों से विभूषित किया है यह सर्वथा उनके गुण के उपयुक्त है। नागार्जुन ने अपने को निराला की परम्परा से इसलिए जोड़ा है कि दोनों जनता का ध्यान रखकर लिखते थे। नागार्जुन अपनी परम्परा खोज लेते हैं, उससे सीख लेते हैं और आगे का मार्ग प्रशस्त करते हैं । निराला के जीवित रहते उन्होंने ये कविताएँ लिखी थी मानो वे उन्हें धैर्य दे रहे हैं, उन्हें दिलासा दे रहे हैं कि आप व्याकुल न हों जनता आपको सर आँखों पर रख रही है।नागार्जुन ने 'दधीचि निराला' कविता में लिखा है-

"हे कवि कुल गुरु, हे महिमामय, हे संन्यासी!
तुम्हें समझता है साधारण भारतवासी
राज्यपाल या राष्ट्रप्रमुख क्या समझे तुमको
कुचल रहीं जिनकी संगीनें कुसम-कुसुम को
इस मिट्‌टी का कण-कण, सुनो, गीत तुम्हारे गा रहा
सुखमय, कृतज्ञ, समदृष्टि वह जनयुग जल्दी आ रहा ।"[3]

नागार्जुन अन्य भारतीय कवियों से भी प्रेरणा ग्रहण करते हैं। बंगला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मलयालम के बल्लतोल से नागार्जुन साहित्य सृजन की प्रेरणा लेते हैं। नागार्जुन आजीवन सीखने वाले कवि हैं, उनमें महान कवियों, के प्रति आदर का गहरा भाव है जो इन कविताओं में छलक पड़ा है, ऐसा कवि ही हमारी सामासिक संस्कृति की गरिमा को बरकरार रख सकता है, भारतीय भाषाओं की एकता का सूत्रधार हो सकता है दूसरे की महानता स्वीकारना उदार और महान कवि का ही स्वभाव होता है, नागार्जुन में यह

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-47-48
2. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पृ. सं.-25
3. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पृ. सं.-27

गुण है। 'रवि ठाकुर' कविता में वे अपनी तुलना उनसे करते हुए भी उनकी महानता को स्वीकारते हैं–

" रून झुन रून झुन...../ सुने थे तुमने / भगवती वीणापाणि शारदा के नुपुर
विश्वबन्ध भारतीय महाकवि ठाकुर / पाया था अनुपम प्रतिभा का अवदान
यहाँ से, वहाँ से / जाने कहाँ-कहाँ से / धन्य तुम पुरुषोत्तम !!
*** * * * * * ***

आशीष दो मुझको- / मन मेरा स्थिर हो !!
नहीं लौटूँ, चीर चलूँ, कैसा भी तिमिर हो !!
प्रलोभन में पड़कर बदलूँ नहीं रुख
रहूँ साथ सबके, भोगूँ साथ सुख-दुख / गुरूदेव मेरे ।
*** * * * * * ***

आवेश में आकर बहुत कुछ कह गया / पितामह, क्षमा करो ।
मेरी यह धृष्टता, कटुता, उदंडता / क्षमा करो पितामह ।।"[1]

शायद ही किसी कवि के प्रति नागार्जुन के मन में इतना गहरा आदर का भाव हो। कवि ने उनसे ऐसा आशीर्वाद माँगा, यह भी सराहनीय है, अपने लिए कुछ नहीं सिर्फ सही रास्ते पर कदम रहे, जनता का साथ रहे। मन स्थिर हो। लेखन एक साधना है, तपस्या है, उसमें मन अविचल, एकाग्र लगा रहे। यही प्रेरणा वे रवीन्द्रनाथ से लेते हैं।

केरल के कवि वल्लतोल से जब नागार्जुन प्रेरणा ग्रहण करते हैं तब उनकी उदारता देखते बनती है। यह है सभी भाषाओं को आदर देने का अपना तरीका, सबकी अच्छाइयों से सीखने की आकांक्षा, एक हिन्दी साहित्यकार के लिए यह नया अनुभव है यही उदारता उन्हें अन्य भाषाओं में भी लोकप्रिय बनाती है–

" वल्लतोल हमारे दिल में / विश्वशांति और नव रचना के
शुभ संकल्प जगाते हैं। / केरल की सरसब्ज भूमि पर
धान नारियल काजू वन की / हरियाली लहराती है
श्रमिकों कृषकों की नव संस्कृति / सुधी जनों के अंर्तमन में
दिन-से-दिन गहराती है / केरल की सरसब्ज भूमि पर
जी-हाँ, जी हाँ हरियाली लहराती है।"[2]

नागार्जुन कई समकालीन साहित्यकारों की भी प्रशंसा करते हैं क्योंकि वे जनता के साहित्यकार हैं। केदरानाथ अग्रवाल, फणीश्वरनाथ रेणु, माधवन आनन्द शंकर ऐसे ही साहित्यकार हैं। इसमें केदारनाथ अग्रवाल पर लिखी 'ओ जन-मन के सजग चितेरे' कविता मित्र-संवाद की सबसे महत्त्वपूर्ण कविता है एक प्रगतिशील कवि अपने दूसरे प्रगतिशील मित्र कवि की तारीफ करते हुए अपने आपको धन्य समझता है क्योंकि उसको कवि का निश्छल प्यार मिला। नागार्जुन रिश्ता बनाने में नहीं रिश्ता निभाने में विश्वास करते थे। जनकवि केदारनाथ अग्रवाल के प्रति उनके मन में अगाध स्नेह था जो शब्द बनकर इस कविता में छलक आया है–

"जणगण मन के जाग्रत शिल्पी / तुम धरती के पुत्र : गगन के तुम जामाता !
नक्षत्रों के स्वजन कुटुम्बी, सगे बंधु तुम नद-नदियों के !
झरी ऋचा पर ऋचा तुम्हारे सबल कंठ से

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-12-15
2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-31-32

स्वर लहरी पर थिरक रही है युग की गंगा
अजी, तुम्हारी शब्दशक्ति ने बाँध लिया है / भुवनदीप कवि नेरूदा को
मैं बड़भागी, क्योंकि प्राप्त है मुझे तुम्हारा / निश्छल निर्मल भाई-चारा
मैं बड़भागी, तुम जैसे कल्याण मित्र का जिसे सहारा
मैं बड़भागी, क्योंकि चार दिन बुंदेलों के साथ रहा हूँ
मैं बड़भागी क्योंकि केन की लहरों में कुछ देर बहा हूँ
बड़भागी हूँ, बाँट दिया करते हो हर्ष-विषाद
बड़भागी हूँ, बार-बार करते रहते हो याद "[1]

कवि नागार्जुन रेणु के गाँव गए, उन्होंने उनके साथ धान रोपे, उस अद्‌भुत अनभूति को उन्होंने कविता में व्यक्त किया है। साथ ही साथ रेणु की प्रशंसा भी की है -

"कृषकपुत्र मैं, तुम भी खुद दर्दी किसान हो / मुरलीधर के सातसुरों की सरस-तान हो
धन्य जादुई मैला आँचल, धन्य -धन्य तुम / सहज सलोने तुम अपूर्व, अनुपम, अनन्य तुम"[2]

जिन लोगों ने अपने साहित्य को जनता से सम्पृक्त कर दिया, कवि ने उनकी प्रशंसा की है, इन्हीं में दक्षिण भारत के एक कवि को नागार्जुन ने याद किया है–

"भवताप तप्त..../ अहर्निश के अभिशप्त.../तरूणों के लेखे तुम मातृतुल्य अभयंकर
तुम विनिद्र वाल्मीकि प्रतिभा के
समझ न पाएँगे तुम्हें सात-सात ऋषि, दस-दस दिक्पाल
दीपंकर तुम, तुम विमलशील / बन्धु, तुम युग-युग जियो / माधवन आनन्द शंकर"[3]

व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की प्रशंसा में भी नागार्जुन ने कविता लिखी। नागार्जुन इन कविताओं के माध्यम से कवितामय समालोचना का काम कर गए हैं। कम से कम शब्दों में सटीक तारीफ करना कोई नागार्जुन से सीखे–

"छूटने लगे अविरल गति से जब परसाई के व्यंग वाण
सरपट भागे तब धर्मध्वजी दुष्टों के कम्पित हुए प्राण
*** * * * * * ***

बहुजन -हित-व्रत की आँचों में यह शिल्प पगा, ये तीर ढले
परसाई वाली पीढ़ी के युगजीत चले, प्रणवीर चले
*** * * * * * ***

रवि की प्रतिमा को नमस्कार शनि की प्रतिमा को नमस्कार
वक्रोक्ति-विशारद, महासिद्ध हरि की गरिमा को नमस्कार"[4]

नागार्जुन ने कुछ कवियों की मृत्यु के बाद उन्हें याद करते हुए कविताएँ लिखी हैं। राजकमल चौधरी के असामयिक निधन से कवि मर्माहत हैं, उन्होंने दो कविताओं में उनको याद किया है। बड़े आत्मीय ढंग से उनकी विशेषताओं को उकेरते, डाँटते डपटते, छेड़ते कवि ने उन्हें याद किया है। पूरी कविता उद्‌धृत करने योग्य है किन्तु कुछ पंक्तियों से ही संतोष करना चाहिए–

''हाँ सा'ब, वो अदना पागल नहीं था

---

1. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-63
2. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंनें, पृ.सं.-53
3. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ.सं.-35
4. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ.सं.-42-43

बड़ा ही विचित्र प्राणी था वो
बीसियों नौजवान मानते थे उसे अपना मसीहा
अजी वाह, अजी वाह!
इसमें अति की गन्ध आयी आपको ?
मालूम है जनाब
'अजनबी' तक प्रणत के उस 'जीनियस' के प्रति
तो ऐसा था वो राजकमल चौधरी।"[1]

एक अन्य कविता में भी उन्होंने राजकमल चौधरी को इस तरह श्रद्धांजलि दी है–

"बाहर छलनामय, भीतर थे निश्छल
तुम तो थे अद्‌भुत व्यक्ति, चौधरी राजकमल।
इस-उस पीढ़ी के लिए विरोधाभास प्रबल
तुम चर्चाओं के केन्द्र बिन्दु, तुम नित्यनवल!"[2]

नागार्जुन नई पीढ़ी को अभयदान देने वाले कवि हैं। इसलिए तो उनके इतने प्रिय भी हैं। जो स्नेह नहीं दे सकता, संवेदना नहीं दे सकता वह कुछ पा भी नहीं सकता। निराला की तरह नागार्जुन उदार और करुण हृदय कवि थे, उन्होंने अपनी करुणा से सबको प्यार और सहारा दिया।

गीतकार शैलेन्द्र के प्रति भी नागार्जुन का हृदय प्रेम से भरा था। उनकी मृत्यु के बाद उन्होंने उन्हें याद किया है। उनकी विशेषताओं को याद करते हुए वे लिखते हैं–

"गीतों के जादूगर का मैं छंदो से तर्पण करता हूँ
अपने युग की व्यथा-कथा ही कड़ियों में ढलती जाती थी।
जाने कितना नेह भरा था, बाती थी जलती जाती थी
गीत तुम्हारे गूँज रहे हैं अब भी लाख-लाख कानों में
होठ तुम्हारे फड़क रहे हैं छाया-छवि की मुस्कानों में
सच बतलाऊँ, तुम प्रतिभा के ज्योतिपुत्र थे, छाया क्या थी
भली भाँति देखा था मैंने दिल ही दिल थे, काया क्या थी
जहाँ कहीं भी अन्तर-मन से ऋतुओं की सरगम सुनते थे
ताजे कमल शब्दों में तुम रेशम की जाली बुनते थे
जन-मन-जब हुलसित होता था, वह थिरकन भी पढ़ते थे तुम
साथी थे, मजदूर-पुत्र थे, झंडा लेकर बढ़ते थे तुम
युग की अनुगुंजित पीड़ा ही घोर घन-घटा सी गहराई
प्रिय भाई शैलेन्द्र तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति नभ में लहराई"[3]

पूरी कविता में कितनी आत्मीयता, कितनी संवेदनशीलता, कितनी स्नेहसिक्त तरलता मौजूद है यह पढ़ने वाला ही जान सकता है। अपने मित्रों को, सहकर्मियों को इस तरह फूट-फूट कर याद करना नागार्जुन की अपनी विशेषता है मानो कवि साहित्य में विलाप कर रहा हो । नागार्जुन का व्यंग्य, क्रोध और प्रेम सब अपनी तरह

---

1. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-25
2. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-142
3. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-33

का अनूठा है। अपने साथियों के प्रति उनका यह प्रेम कितना निश्छल, कितना अकृत्रिम और कितना गहरा है।

(घ) संघर्ष और सौंदर्य का सामंजस्य

नागार्जुन की कविताओं में संघर्ष और सौंदर्य का अद्‌भुत सम्मिश्रण देखने को मिलता है। स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है कि **"यदि हमारे मन में मानव-प्रेम और मानवीय सौंदर्य की भावना नहीं होगी तो हम संघर्ष के लिए तत्पर नहीं होंगे। प्रेम जितना गहरा और व्यापक होता है, संघर्ष के प्रति हमारा विश्वास भी उतना ही मजबूत होता है। इसी अनुभव से धीरे-धीरे सार्थक लेखन की भूमिका बनती है।"**[1] संघर्ष उनकी शक्ति है और सौदंर्य की अभिव्यक्ति उनकी सम्पूर्णता। जीवन और जगत को बेहतर बनाने के लिए किए जा रहे संघर्ष का कवि साथी है और जीवन जगत में जो कुछ भी सुंदर है कवि उसका उपासक है। यही दोनों कवि के काव्य का मुख्य पक्ष है। उनकी कविता का आकाश इन्हीं दो आधार स्तम्भों पर खड़ा है। उनके संघर्ष के कई मोर्चे हैं, कवि एक साथ उनमें सक्रिय है। उसी तरह उनकी सौन्दर्य चेतना इतनी व्यापक है कि उसे संक्षेप में समेटना एक कठिन कार्य है। फिर भी संक्षेप में उनकी काव्य-दृष्टि के इन दो महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाल कर उनके काव्य को समझा जा सकता है।

नागार्जुन मुख्यतः संघर्ष के कवि हैं।जीवन-जगत में जहाँ कहीं समस्या है। वहीं उससे उबरने के लिए संघर्ष मौजूद है, और कवि हर मोर्चे पर जी जान से संघर्षरत है। चाहे प्रश्न व्यक्ति का हो, समाज का हो, देश का हो, निम्नवर्गीय जनता का हो कवि सबके पक्ष में हर चुनौती का सामना करने के लिए तैयार है। जनकवि होकर यह जिम्मेदारी स्वयं उन्होंने अपने कंधों पर ली है। इसलिए अनमने भाव से वे सिर्फ अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते बल्कि पूरे उत्साह और जोश-खरोश के साथ दुनिया को बदलने के लिए संघर्षरत हैं। यह संघर्ष उनके काव्य की विशेषता है जिसे किसी भी बिन्दु में देखा जा सकता है। जैसे साम्प्रदायिक ताकतों से जूझने का यह भाव नागार्जुन में प्रारम्भ से है -

"शैतान आयेगा रह-रह हमको भरमाने
अब खाल ओढ़ कर तेरी सत्य अहिंसा का
एकता और मानवता के
इन महाशत्रुओं की न दाल गलनें देंगे
हम नहीं एक चलने देंगे
यह शक्ति और समता की तेरी-दीपशिखा
बुझने न पायेगी छन भर भी।"[2]

गाँधी जी की हत्या पर जो आक्रोश सम्प्रदायवादियों के प्रति कवि के मन में अंकुरित हुआ उसकी यह चिंगारी है। 'शपथ' कविता में भी संघर्ष का यही मुद्‌दा मौजूद है।सामाजिक विषमता भारतीय समाज के पिछड़ेपन का मुख्य कारण है, यदि देश को उन्नति के पथ पर ले जाना है तो सांसारिक बाधाओं को मिटाना होगा, नागार्जुन ने ठीक ही लिखा है–

"मन और तन की समूची ताकत लगाकर
विघ्न-बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, ढाह दो / .....

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-46
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-45

राह में रोड़े पड़े हैं अमित-अगणित..
उन्हीं से अतलान्त गह्वर पाट डालो।"[1]

देश के किसी कोने में परिर्वतन के लिए संघर्ष होता है कवि उसकी जय-जयकार करता है। जन-कल्याण के लिए हुए परिवर्तन से कवि चहक उठता है -

"जय अरूणोदय! / जय सिन्दूरी किरण सुहानी !
उछल रही तुझे देख कर नई जवानी / बुरे ग्रहों का अन्त निकट है।
सदाबहार बसंत निकट है। / शांतिपूर्ण सुखमय जीवन की खातिर यह संघर्ष हमारा
कैसे भला रुकेगी युग-गंगा की धारा / यह सचेत तरुणों की टोली बढ़ी आ रही
शुभ-स्वतंत्रता शांति-प्रगति के गीत गा रही / लक्ष्य स्पष्ट है, पंथ कठिन है
रात्रि शेष यह, आगे दिन है / जय सिन्दूरी किरण सुहानी! / जय अरुणोदय।"[2]

कवि सर्वहारा के संघर्ष का समर्थक है। वह सच्ची यानि आर्थिक आजादी का समर्थन करता है–

"अब आजाद होंगे नगर, आजाद होंगे गाँव
अब आजाद होगी भूमि / अब आजाद होंगे खेत / अब आजाद होंगे कारखाने
मशीनों पर और श्रम पर, उपज के सब साधनों पर
सर्वहारा स्वयं अपना करेगा अधिकार स्थापित
* * * * * * * * * * * *
निष्कंटक करो इस कंटकवृत भूमि को
अपनी परिधि का करो तुम प्रस्तार / हे नवशक्ति!"[3]

आदिवासी इलाके को जगाते हुए कवि कहता है कि तुम जागो, स्वयं अपने विकास का मार्ग खोलो, क्यों किसी का इंतजार कर रहे हो, पूरे प्रदेश के प्रति कवि का यह भाव द्रष्टव्य है–

" उठो, उठो करना है नव निर्माण / तुम पर निर्भर जन-जागरण समस्त
* * * * * * * * * * *
अब भी तो विकसित हों तेरे बाल / देखो तुमसे माँग रहे द्युति दान
निर्विकल्प निश्चल सौ-सौ दिनमान! / उठो, उठो, उठ जाओ विन्ध्य महान!"[4]

नागार्जुन ने कई कविताओं में नवयुवकों के परिवर्तनकामी कदम की सराहना की है, उनके संघर्षों को सहारा दिया है–

"लो मशाल अब घर-घर को अलोकित कर दो / सेतु बनो प्रज्ञा-प्रयत्न के मध्य
शांति को सर्वमंगला हो जाने दो / खुश होंगे हम-"[5]

शोषण कहीं भी हो कवि उसका खात्मा करना चाहता है, जो शोषण करने वाले हैं उनकी साजिशों को नाकाम करने वालों के संघर्ष में कवि शामिल है। स्पष्ट शब्दों में नागार्जुन ने घोषित किया है कि "मैं दीन दुखियों की दरिद्रता और उनके होने वाले शोषण से भीतर ही भीतर सुलगता रहता हूँ। जैसा

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-73*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-103*
3. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-1-6*
4. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-76*
5. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-30*

महसूस करता हूँ वैसी ही एक-एक पंक्ति रचता हूँ। अपने आपको बड़ा समझने वाले, मठाधीश और राजनेता जितने भी नाराज हों मैंने इसकी चिंता नहीं की ।''[1]

नागार्जुन न सिर्फ संघर्षरत जनता का साथ देते हैं वरन जरूरत पड़ने पर स्वंय ललकार उठते हैं–

"जनकवि हूँ, क्यों चाटूँगा मैं थूक तुम्हारी / श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बन्दूक तुम्हारी"[2]

आधुनिक युग में सत्ता, शासन और राजनीति के आगे तन कर खड़ा होने वाले साहित्यकारों में नागार्जुन अग्रणी हैं। उनमें न डर है न भय । कवि संघर्ष की चेतना को जिंदा रखना चाहता है इसलिए 'हरजिनगाथा' कविता में नवजात शिशु को लेकर भागने की सलाह देता है -

"अरे भगाओ इस बालक को
होगा यह भारी उत्पाती
जुलुम मिटाएँगे धरती से
इसके साथी और संघाती
*** * * * ***
श्याम सलोना यह अछूत शिशु
हम सबका उद्धार करेगा
आज यही सम्पूर्ण क्रांति का
बेड़ा सचमुच पार करेगा ।''[3]

ऐसी कई कविताएँ हैं जिनका मूल भाव संघर्ष ही है, सबको यहाँ प्रस्तुत करना भावों को दुहराना ही होगा इसलिए एक अन्य कविता का उदाहरण देकर ही इस प्रसंग को खत्म करना उचित होगा। जनता के संघर्ष में नागार्जुन हर मोर्चे पर तैनात हैं–

''लेकिन क्योंकर बुझने दूँ मैं अपना बाजिब क्रोध ?
बच्चों के हत्यारों से पब्लिक लेगी प्रतिशोध!
इस पवित्र प्रतिशोध-यज्ञ में मैं हूँ सबके साथ ..
क्यों गूँगा होऊँ, बतलाओ झुकने दूँ क्यों माथ?''[4]

सौन्दर्य

जैसे नागार्जुन को संघर्ष पसन्द है वैसे ही सौन्दर्य भी। जीवन और जगत के बीच फैले किसी भी तरह के सौन्दर्य के प्रति कवि संवेदनशील है।कवि सौन्दर्य के प्रति न सिर्फ आकृष्ट होता है वरन् उसका आस्वाद करता हुआ साहित्य में उसे बखूबी अभिव्यक्त भी करता है।

नागार्जुन का सौन्दर्य-बोध विराट है। उन्होंने उन चीजों में भी सौन्दर्य ढूँढ निकाला जो सामान्य आदमी की संवेदना में इतर भाव जगाते हैं। नागार्जुन आम जनता की सौन्दर्य चेतना की परिधि बढ़ाने वाले और उनकी सौन्दर्य चेतना का परिष्कार करने वाले कवि हैं। यह बड़े कवि का लक्षण है। नागार्जुन न सिर्फ मानवी

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-46
2. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-83
3. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं. -122-124
4. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पृ. सं.-89

सौन्दर्य को प्रकट करनेवाले कवि हैं और न प्राकृतिक सौन्दर्य तक उनकी दृष्टि संकुचित है, बल्कि पशु जगत एवं पक्षी-संसार तक उनकी सौन्दर्य दृष्टि का प्रसार है। यहाँ तक कि पके हुए कटहल और सिंके हुए भुट्टे को जब कवि अपनी सौन्दर्य वादी दृष्टि से देखते हैं तो वह अत्यंत स्वादयुक्त हो उठता है। यह सौन्दर्य बोध कम साहित्यकारों में है। प्रेमचन्द एवं रेणु के बाद नागार्जुन में यह सौन्दर्य बोध विद्यमान है।

नागार्जुन सूक्ष्म सौन्दर्यबोध के कवि हैं। वे सौन्दर्य के इतने पक्ष उद्घाटित करते हैं कि उनका काव्य विलक्षण सौन्दर्य का अजायबघर परिलक्षित होता है, जहाँ अद्भुत और सर्वथा बेमेल चीजों को अजूबा संग्रह है। अत्यधिक तफसील में न जाकर संक्षेप में इस सौन्दर्य बोध की झलक दिखाना ही शोधार्थी के लिए अभिष्ट होगा।

सर्वप्रथम मानवी सौन्दर्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। नागार्जुन आम जनता और निम्न वर्गीय श्रमशील जनता का सौन्दर्य चित्रण अपनी कविताओं में करते हैं। जो जनता जीने के लिए संघर्षरत है उनका संघर्ष ही सौन्दर्ययुक्त है, यही काव्य-दृष्टि नागार्जुन की है। रिक्शेवाले के खुरदरे पैर नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना में अपनी छाप अंकित करते हैं–

"खूब गये
दूधिया निगाहों में
फटी बिंवाइयों वाले खुरदरे पैर
धँस गये
कुसुम-कोमल मन में
गुट्ठल घट्ठोंवाले कुलिश-कठोर पैर / .....
देर तक टकराये
उस दिन इन आँखें से वे पैर
भूल नहीं पाऊँगा फटी बिंवाइयाँ
खुब गई दूधिया निगाहों में
धँस गई कुसुम-कोमल मन में"[1]

दुअन्नी-इकन्नी के लिए परेशान मल्लाहों के छोकरे नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना के अंग हैं–

"फुर्ती से खोज रहे पैसे / मलाहों के नंग-धड़ंग छोकरे
दो-दो पैर / हाथ दो- दो / प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह
बहुधा-अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह / खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि।
या कि मलेंगे देह में साबुन की सुगंधित टिकिया
लगाएँगे सर में चमेली का तेल
या कि हम उम्र छोकरी को टिकली ला देंगे
पसंद करे शायद वह मगही पान का टकही बीड़ा
देखना ओ गंगा मइया। / निराश न करना इन नंग-धड़ंग चतुर्भुजों को!"[2]

नागार्जुन ने संघर्षरत निम्नवर्गीय जनता के जीवन के सुन्दर क्षणों के सैन्दर्य को काव्य में अभिव्यक्त किया है। यही उनकी कविता के सौन्दर्य को बढ़ाता है। वे उनके दुखों, उनकी समस्याओं को ही नहीं उकेरते,

---

1. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-23
2. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-21

उनके प्यार भरे क्षण, उनके मुस्कान को भी साहित्य में उसी तरह लाते हैं, यही है जीवन का सौन्दर्य, जिसका कवि गायक है। गरीब जनता का जीवन अपने इन्द्रधनुषी रंग में, अपूर्व सौन्दर्य के साथ उनकी कविताओं में मौजूद है। कुछ कविताओं में महिलाओं का सौन्दर्य बड़े आत्मीय और नाटकीय ढंग से उभरा है, उसमें 'तन गई रीढ़' (सतरंगे पंखोंवाली) और 'यह तुम थी' (सतरंगे पंखोंवाली) कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है।

"कर गई चाक / तिमिर का सीना / जोते की फाँक / यह तुम थी।"[1]

बच्चों के मासूम सौन्दर्य को नागार्जुन ने कई कविताओं का आधार बनाया है। गुलाबी चूड़ियाँ (प्यासी पथराई आँखें) और 'यह दंतुरित मुस्कान' (सतरंगे पंखोंवाली) इसके उदाहरण हैं। नागार्जुन रूप-सौन्दर्य के ही कवि नहीं भाव-सौन्दर्य के भी कवि हैं। यही इन कविताओं की खास विशेषता है। मानवी सौन्दर्य के अनेक रूप नागार्जुन की कविताओं में भरे पड़े हैं।

नागार्जुन मानवेतर जीवों के सौन्दर्य के बड़े अभिव्यक्तिकार हैं। उनकी दृष्टि में पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सबका सौन्दर्य अपने मूल रूप में मौजूद है जिसे उन्होंने कविता में उतारा है। मादा सूअर, नेवला, और तोता इसी तरह के जीव हैं। नेवला अपने पूरे सौन्दर्य के साथ नागार्जुन की कविता का सौन्दर्य बढ़ा रहा है, पूरी कविता इसका प्रमाण है। 'डियर तोताराम' कविता में कवि ने कितनी आत्मीयता से तोते का चित्रण किया है, देखिए–

"उल्टा लटककर / वो कुतर रहा है नाशपाती
दस का यह गुच्छा ही / इसे जाने क्यों भाया?
मियाँ मिट्ठू ! / (महोदय आत्माराम) / आप तो नाहक ही
हमारे पैरों की आहट से भड़क गए! / भला य' भी कोई बात हुई !
आइए, इत्मीनान से / इन टहनियों में उल्टा लटकिए !
मौसम की ताजगी का स्वाद लीजिए / लेकिन आप तो भई
'गृह-पालित' नहीं आजाद तोता थे ना ? / आइए, बेखटके आइए
उल्टा लटकिए / हमारा मनोरंजन कीजिए ! / प्लीज, डियर तोताराम!"[2]

प्रकृति सौन्दर्य का अक्षय कोष है। दुनिया का शायद ही कोई कवि होगा जो प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध नहीं होता हो फिर नागार्जुन तो प्रगतिशील जनकवि हैं। नागार्जुन का प्रकृति प्रेम अद्‌भुत है वे प्रकृति के भौतिक सौन्दर्य के कवि हैं। प्राकृतिक उपादानों को देखकर खिल उठना, उससे आत्मीय रिश्ता कायम कर लेना और उसके सौन्दर्य का जीवंत चित्रण करना नागार्जुन की खास विशेषता है। ग्राम प्रकृति अपने पूरे वैभव के साथ नागार्जुन की कविता में उपलब्ध है तथा पर्वतीय प्रकृति का सौष्ठव उनकी कविता के रग-रग में व्याप्त है पर्वतीय प्रदेश में बादल का सौन्दर्य इस कविता मे देखा जा सकता है–

"अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है। / छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को / मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है।"[3]

नागार्जुन ने प्रकृति पर कम से कम सौ कविताएँ लिखी हैं। प्रकृति के हर रूप पर नागार्जुन मुग्ध हैं, सबको यहाँ प्रकट करना संभव नहीं इसलिए सिर्फ एक उदाहरण से ही काम चलाया जा रहा है। 'फूले कदंब' कविता में कवि ने कदंब के खिलने का कितना सुन्दर वर्णन किया है देखिए–

"फूले कदंब / टहनी-टहनी में कन्दुक नहीं सम (झूले) झूले कदंब

---

1. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-20
2. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-21
3. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-67

फूले कदंब
सावन बीता
बादल का कोप नहीं रीता
जाने कब से वो बरस रहा
ललचाई आँखों से नाहक
जाने कब से तू तरस रहा
मन कहता है, छूले कदंब
फूले कदंब
झूले कदंब"[1]

सौन्दर्य है कवि की आत्मीयता में, प्रकृति के साथ कवि के रिश्ते में। मानव के साथ मिलकर प्रकृति जीवंत हो उठी है। प्राणवाण प्रकृति का सौन्दर्य अद्वितीय हो उठा है। नागार्जुन का प्रकृति से सीधा और यथार्थवादी सम्बन्ध है भावात्मक और रूपवादी नहीं , 'सुबह-सुबह' कविता में नागार्जुन लिखते हैं -

"सुबह - सुबह तलाब के दो फेरे लगाए
सुबह-सुबह
रात्रि शेष की भीगी दूबों पर " / .....
माघ की कड़ी सर्दी के मारे
सुबह-सुबह
अधसूखी पतइयों का कौड़ा तापा
आम के कच्चे पत्तों का
जलता, कड़ुवा कसैला सौरभ लिया
सुबह-सुबह
गँवई अलाव के निकट
घेरे में बैठने बतियाने का सुख लूटा
सुबह-सुबह"[2]

प्राकृतिक कविता में अपना अलग सौन्दर्य है। कवि ने सौन्दर्य के किसी न किसी पहलू को उसमें अभिव्यक्त किया है। अंत में नागार्जुन के समग्र सौन्दर्य बोध के एक सुन्दर उदाहरण को प्रस्तुत कर इस अध्याय का समापन करना चाहूँगा। कविता है—'बहुत दिनो के बाद', कवि ने अन्तिम तीन पंक्तियों में अपनी सौन्दर्य बोधी इन्द्रियों की तृप्ति की घोषणा की है—

"बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भू पर
बहुत दिनों के बाद ।"[3]

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-86*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-75*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-26*

तीसरा अध्याय

नागार्जुन के हिन्दी काव्य में अभिव्यक्त भारतीय समाज

(1) **नागार्जुन के हिन्दी काव्य में अभिव्यक्त व्यापक समाज**

(क) जमींदार वर्ग (ख) उच्च वर्ग (ग) नेता
(घ) व्यवसायी (ङ) भद्र वर्ग (च) अधिकारी वर्ग

(2) **नागार्जुन के हिन्दी काव्य में निम्न मध्यवर्ग एवं श्रमिक समाज**

निम्न मध्य वर्ग

(क) किसान (ख) शिक्षक (ग) किरानी (घ) सैनिक

श्रमिक समाज

(क) रिक्शावाला (ख) कुली-मजदूर (ग) बस चालक
(घ) उपेक्षित पहलवान (ङ) मछुआरे (च) मेहतर

(3) **नागार्जुन के हिन्दी काव्य में दलित, आदिवासी एवं स्त्री समाज**

(क) दलित समाज (ख) आदिवासी समाज (ग) स्त्री समाज

(4) **नागार्जुन के हिन्दी काव्य में अन्य उपेक्षित पात्र एवं मानवेतर जीव-जन्तु**

अन्य उपेक्षित पात्र

(क) नाकहीन मुखड़ा (ख) प्यासी पथराई आँखें
(ग) अकर्मण्य साधु (घ) लालू साहू
(ङ) पगलवा (च) भाउ समर्थ

मानवेतर जीव-जन्तु

(क) मछली (ख) मेढ़क (ग) हाथी
(घ) बाघ (ङ) नेवला (च) गाय
(छ) खच्चर (ज) मादा सूअर (झ) बंदर
(ञ) मुर्गी (ट) बगुला (ठ) तोता
(ड) खटमल (ढ) जुगनु (ण) मधुमक्खियाँ
(त) कांजीरंगा-बाढ़ (थ) मुर्गी-फार्म

नागार्जुन व्यापक भारतीय समाज के कवि हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ सामाजिक प्राणियों के दुख-दर्द को देखकर उत्पन्न हुई हैं। स्वंय कवि ने स्वीकार किया हैं - **"अस्सी प्रतिशत जनता हमारी इष्ट देवता है, जो जीवन के आस पास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हूँ। मैं समाज के घटना प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हूँ।"**[1] यही नागार्जुन के काव्य का सच है । वे आत्ममोह से ग्रस्त एकांगी कवि नहीं हैं, पूरे समाज के साथ उसका अविभाज्य अंग बनकर जीने वाले कवि हैं।

ज्ञान-पिपासा और घुमक्कड़ स्वभाव के कारण वे बार-बार परिवार और समाज से दूर रहे, संन्यास भी ग्रहण किया किन्तु संवेदनशील कवि और समाजिक मनुष्य होने के कारण पुनः घर लौट आए। यही उनकी मूल प्रवृत्ति थी जिसे उन्होंने समय पर पहचाना और अपनी शक्ति बनाई। 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता में उन्होंने अपने 'सामाजिक' होने का भाव बहुत ईमानदारी से स्वीकार किया है–

"घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल !
याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल !
कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिए न समाज ?
कौन है वह एक जिसको नहीं पड़ता दूसरों से काज ?
चाहिए किसको नहीं सहयोग ?
चाहिए किसको नहीं सहवास ?
कोन चाहेगा कि उसका शून्य में टकराये यह उच्छ्वास ? "[2]

समाज से यही जुड़ाव उन्हें सामाजिक कवि बनाता है, इसलिए उनका काव्य भारतीय समाज का दर्पण बन सका।

नागार्जुन का काव्य सम्पूर्ण भारतीय समाज का बहुरंगी अलबम है। इसमें मानव समाज के विविध वय, लिंग, वर्ग और श्रेणी के लोग तो उपस्थित हैं हीं मानवेतर समाज के जीव जन्तु एवं कीड़े-मकोड़े तक शामिल हैं। दुध मुँहे बच्चे से पके बूढ़े तक शोषक जमींदार से शोषित रिक्शेवाले तक, उपेक्षित भिखारी से प्रधानमंत्री तक, दमित दलित से पीड़ित स्त्रियों तक और जुगनुओं से हाथी तक नागार्जुन के काव्य में सहजता से देखे जा सकते हैं। कवि की दृष्टि समाज के हर छोटे-बड़े अमीर-गरीब शोषक शोषित, विशिष्ट-उपेक्षित प्राणी पर पड़ती है और वह उसे अपनी रचना का आधार बनाता है। लेकिन उनकी दृष्टि स्पष्ट है, उसमें 'चुनाव' का सही 'विवेक' और 'चित्रित' करने की सही 'समझदारी' मौजूद है। यह जानने में कोई उलझन नहीं होती कि कवि की सहानुभूति किसके साथ है?

नागार्जुन समाज के द्वन्द्व को उभारने वाले कवि हैं। उनकी पैनी दृष्टि सदैव समाज के विभिन्न वर्ग पर पड़ती है और वहीं से उनका रचनाकार सक्रिय हो उठता है। गरीबों की गरीबी और अमीरों की अमीरी जब कवि की नजर में आती है तब कवि रचनाकर्म की ओर प्रवृत्त हो उठता है। उसमें अमीरों के लिए घृणा और गरीबों के लिए सहानुभूति और करुणा होती है। वे उच्च वर्ग की जीवन-शैली से घृणा करते हैं क्योंकि उसमें निम्नवर्ग के शोषण की प्रक्रिया दिखाई देती है। कहीं वे कटु आलोचना करते हैं कही कठोर व्यंग्य। समाज के उच्चवर्ग को वे शोषक और अत्याचारी समझते हैं जिनमें जमींदार, पूँजीपति, भ्रष्ट अधिकारी, नेता, व्यापारी एवं अन्य शोषक शामिल हैं। नागार्जुन इन्हें पहचानने में चूकते नहीं, इसलिए सीधे-सीधे लिखते हैं–

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ .सं.-72*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-48*

" जमींदार हैं, साहुकार हैं, बनिया हैं, व्यापारी हैं,
अन्दर-अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी हैं ।
सब घुस आए, भरा पड़ा है, भारत माता का मंदिर,
एक बार जो फिसले अगुआ, फिसल रहे हैं फिर फिर फिर। "[1]

(क) जमींदार वर्ग

जमींदार और सामंत वर्ग गाँव के शोषक हैं। उनके खोखले जीवन का बड़ा व्यंग्यपूर्ण चित्रण कवि ने **'विजयी के वंशधर'** (युगधारा, पृ. सं.-57-61) कविता में किया है। दिखावा, पाखण्ड पूर्ण जीवन, झूठे अंहकार और खोखले जीवन का प्रदर्शन ही इन्हें पतन की ओर ले जा रहे हैं कवि ने पूरी कविता में बड़ी गहराई से इनका चित्र खींचा है–

"गुलाबी धोती / सीप की बटनों वाला रेशमी कुर्ता,
मलमल की दुपलिया, फूलदार टोपी, / बाटा के पम्पशू
* * * * * * * *
पान के रँगे हुए सभी के होंठ हैं / बाकी फतह के लिए गढ़ है न कोट है
मरे हुए रावण को फिर-फिर मारने / खस्ता सामन्ती शान बघारने
निकले हैं बाहर / विजेता राम के सैकड़ों वंशधर.....
देख रहे निर्निमेष भालू और बानर ?
* * * * * * * *
ढेलों की ढेर का रावण बनाते हैं । / लाठियों से पिट-पिट हो गया चूर-चूर
दशकंधर का नशा भाग गया चटपट दूर
* * * * * * * *
राक्षस राज रावण को मार दिया सींक से
हिमालय को मात किया सर्दी से, छींक से।"[2]

पूरी कविता झूठी जमींदारी शान का पर्दाफाश करती है। नकली रावण के पुतले को मारकर राम के वंशज अपने आपको वीरता का अवतार मान रहे हैं और विजया का त्योहार मना रहे हैं।

आजादी के बाद भी सामन्तों ने लोकतंत्र का स्वागत नहीं किया। आधुनिकता उन्हें जहर के समान लगती थी और पुराना राजतन्त्र स्वर्ग, वे इसी सपने में जीते रहे कि पुनः हमारा स्वर्णकाल लौट आएगा नागार्जुन ने किसी छोटे रियासत के राजा की इन्हीं प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया है। शिकार खेलना उनका शौक है इस नशे में वे नियम-कानून को भी ठेंगा दिखाने से बाज नहीं आते राजा की इसी प्रवृत्ति पर नागार्जुन ने व्यंग्य किया है–

"बीत गई सर्दी, बीत गया माघ / रानी के खसम ने मारा है बाघ ।
टके की मुस्कान करोड़ों का खर्चा
झूठी शान के लिए इतना तूफान, हाय रे शौक।"[3]

ये वही सामन्त हैं जो राजतंत्र के समर्थक और प्रजातन्त्र के दुश्मन थे नागार्जुन ने उनको सही पहचाना था और उनपर एक कविता में सही टिप्पणी की थी–

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पृ. सं.-47*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-57-61*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं. 60*

"सामन्तों ने कर दिया प्रजातंत्र को होम
लाश बेचने लग गये खादी पहने डोम"[1]

यही भू-स्वामी वर्ग अन्न दबाकर अनाज का दाम बढ़ा देते हैं और गरीबों को लूटते हैं। इन जमाखोरों को जनता की कोई चिन्ता नहीं है ये सिर्फ अपने घर को भरना जानते हैं, नागार्जुन ने एक कविता में इस बात का संकेत किया है -

"अन्न चाँप कर बैठ गये सारे भू-स्वामी
साँप-सेज पर बेसुध लेटा अन्तर्यामी
निठुर बनो, बिल पर बिल खोदो, अन्न निकालो
शस्य-शत्रु की बातों पर तुम कान न डालो"[2]

जमाना और मूल्य तेजी से बदल गए किन्तु राजाओं, सामन्तों की आँखें नहीं खुली, इन्हीं धृतराष्ट्रों के कारण यह देश इतने वर्षों गुलाम रहा और यही लोग स्वतंत्र भारत के विकास में बाधक साबित हो रहे हैं। इन्होंने कभी मेहनत नही की, जनता का साथ नहीं दिया और न **'स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व'** के नारे को अपनाया। भोग-विलास में डूबे रहे, जनता का शोषण किया और देश को गिरवी रखकर गुलामी का आनन्द उठाया, नागार्जुन ने इस जीवन शैली की कटु आलोचना तो की ही इन्हें जगाने का प्रयास भी किया इन्हें सही सलाह दिया कि ये सुधर जाएँ । **'ताशों में ही बचे रहेंगे अब तो राजा-रानी'** कविता में उन्होंने बखूबी इनके जीवन की समीक्षा की है और प्रश्न उठाया है -

"अभी करेगी इन 'प्रभुओं' की जाँच- / संघर्षों की निर्मम-निष्ठुर आँच।
लन्दन पेरिस-रोम-शिकागो भटकेगें ये कब तक?
चमगादड़ से इधर-उधर तरु शाखाओं से लटकेंगे ये कब तक?
खाक बन गये सूर्यवंश-चन्द्रवंश के ठूँठ।
तलवारें गल गयी आँच में, बिकी रत्नमय मूँठ।
उँह इनका तो सदियों पहले उतर गया था पानी।
ताशों मे ही बचे रहेंगे अब तो राजा-रानी"[3]

समाज का एक अंग निष्क्रिय हो जाए तो समाज का सर्वांगीण विकास क्योंकर होगा? नागार्जुन इस वर्ग को भी सुधारना चाहते हैं उन्हें इनकी भी गहरी चिन्ता है इसलिए तो कविता में इतनी जगह देते हैं।

(ख) उच्च वर्ग

जमींदारों के बाद नागार्जुन के शिकार उच्चवर्ग हैं। अमीर वर्ग की शाह खर्ची नागार्जुन को चुभती है खास कर जब उनको याद आता है कि भारत की 80 प्रतिशत जनता गरीब है वे इन्हीं की नजर से उनकी कठोर आलोचना करते हैं । शादी जैसे सामाजिक उत्सव में करोड़ों फूक देना, अपने वैभव का उन्मत प्रदर्शन करना अमीरों की आदत है, नागार्जुन ने उसी पर टिप्पणी की है -

"शादी क्या है, वैभव का है यह उन्मत प्रदर्शन
*** * * * * * ***
अंदर प्रीतिभोज के टेबुल, बाहर घिरीं कनातें

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-55*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-136*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-167-168*

धन-पिशाच मुस्काते हैं घुल के करते हैं बातें

*** * * * * * ***

चाट रहे हैं कुछ प्राणी बाहर जूठन के दोनें

चहक रहे हैं अंदर ये लक्ष्मी के पुत्र सलोनें"[1]

जिन अमीरों को धन का सदुपयोग करना चाहिए वे उसे पानी की तरह नाली में बहा रहे हैं, गरीब मुल्क के लिए यह नैतिक अपराध है, कवि उन्हें इसका बोध करा रहे हैं।

अमीर वर्ग नागार्जुन की हास्य प्रवृत्ति को जगाता है वे एक मोटी सेठानी को देखते हैं और उसपर हँसते हैं, खाए-पीए-अघाए लोगों पर वे हास्यमय व्यंग्य करते हैं। चुहल करने और मजा लेने की प्रवृति यहाँ देखने को मिलती है-जैसे कोई बच्चा सेठानी को चिढ़ा रहा हो–

"चुल्लू में लेकर झाँका तो बोला ढाकुरिया का पानी

देखो, बड़ी कार से उतरी, बैठ गई मोटी सेठानी

चलने दो दस-बीस कदम, बस थक जाएगी

जहाँ बेंच है मुश्किल से वापस आएगी

पूछो जाकर किस चक्की का रानी जी खाती हैं आटा

यह लो जमुहाई लेकर वह खींच गई कैसा सन्नाटा"[2]

धनी लोगों की भोगवादी जीवन प्रणाली नागार्जुन को बैचेन कर जाती है। अरब के तेल मालिकों की विलासी प्रवृत्ति नागार्जुन को इतनी खटकती है कि वे उत्तेजित हो उठते हैं, स्वयं उनका व्यग्र मन चंचल हो उठता है–

'आए दिन / कोटिपति, युवक या अधेड़ पूँजीपुत्र

छिप-छिप कर सेवन करता है / सिंगी और मांगुर मछलियाँ

तरूण बकरे की कलेजियाँ / आए दिन

यह सब देख-सुनकर / अत्यधिक पुलकित हो उठता है

यह बनमानुस / यह सत्तर साला उजबक

उमंग में भरकर सिर के बाल / नोचने लग जाता है यह व्यक्ति

अपने ही सिर के बाल / अकेले में बजाने लग जाता है सीटियाँ/आए दिन"[3]

धन पशुओं के जीवन शैली कितनी संक्रामक होती है यह इस कविता से पता चलता है। जब उनकी आलोचना करने वाला बौद्धिक कवि उत्तेजित, चंचल, बेचैन हो उठता है तो सामान्य मनुष्य क्यों न उनके जीवन शैली को अपनाने के लिए विवेकहीन हो जाएँ। यहाँ उनके जीवन की आलोचना अपनी अतृप्त कुंठा के माध्यम से की गई है इसमें नागार्जुन की ईमानदार अभिव्यक्ति तारीफ के काबिल है। इस तरह की एक और कविता है- 'मन करता है'.. एक तरफ धनपति लोग रेशम का कीमती वस्त्र पहनते हैं दूसरी तरफ निम्नवर्ग कपड़ों के बिना नग्न रहने पर मजबूर हैं। यह विषमता नागार्जुन को इतना आन्दोलित करती है कि वे अराजकता के स्तर पर पहुँचकर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं–

"मन करता है / नंगा होकर कुछ घंटो तक सागर -तट पर मैं खड़ा रहूँ

यों भी क्या कपड़ा मिलता है ? / धनपतियों की ऐसी लीला ।"[4]

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-34-35*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-49*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-114-115*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-31-32*

आभावों ने कवि को अराजक बना दिया हैं, वे विच्छिप्त से हो गए हैं और अमीरों तथा देवताओं को साहित्यिक ढंग से चुन-चुन कर गाली दे रहे हैं। पूरे हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग में निराला एवं धूमिल को छोड़कर इतनी क्षुब्ध कविताएँ और कम लोगों ने लिखी हैं। गरीबों से हमदर्दी जितनी गहरी होगी अमीरों के प्रति घृणा उतनी ही तीव्र होगी।

नागार्जुन की आँखों में वणिकों के प्रति अपार घृणा है तभी तो वणिकपुत्र के सागर तट पर हवाखाने और सिगरेट पीने पर उनकी टिप्पणी इतनी कड़वी है कि वे उसे 'गेहुँअन का पोआ' विशेषण से विभूषित करते हैं–

"इस पार कि उस पार / कार में बैठकर / निकला हवा खाने
गेहुँअन का पोआ / कगार पर पहुँच रहा है बचपन
टानना सीख लिया अभी से '555' "[1]

किशोर लड़के को कार में घूमते देखकर वे समझ जाते हैं कि यह किसी धनी व्यापारी का बेटा है और इतनी कम उम्र में ही मँहगे सिगरेट की कश ले रहा है। उन्हें यह उच्च वर्ग का वर्ग-चरित्र नजर आता है इसलिए तो उसे 'गेहुँअन' जैसे जहरीले और भयंकर साँप का बच्चा कहते हैं। हालांकि यह आलोचना बहुत जँचती नहीं हैं। धूम्रपान गाँव में भी कम नहीं है लेकिन उस किशोर की तफरीह कवि को चुभती है कवि के व्यंग्य में कहीं -न-कहीं पूरी युवा पीढ़ी के प्रति चिन्ता है जो धूम्रपान की ओर अग्रसर है।

इस गरीब देश में धनिक, उन्हें 'कोढ़ी-कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण' की तरह नजर आते हैं। उन्हें वे उपमा एवं बिम्बों द्वारा अपनी कविता में चित्रित करते हैं–

"बताऊँ? / कैसे लगते हैं–
दरिद्र देश के धनिक? / कोढ़ी-कुढब तन पर मणिमय आभूषण !! "[2]

अधिकांश धनी लोग इतनें व्यस्त होते हैं कि उनके पास 'भाव' और 'भावुकता' के लिए जगह नहीं होती इसलिए वे कविताओं की बात सोच नहीं पाते। 'सेंटिमेंट' शीर्षक से एक कविता नागार्जुन ने इन्हीं प्रवृत्ति पर लिखी है–

"सेंटिमेन्ट / एमोशन / मूड / भला य भी कोई बात हुई ?
जहाँ मरने की भी फुर्सत / नहीं होती है किसी के पास
वहाँ बैठकर कोई कविताएँ रचेगा ! / यह अनहोनी कैसे हो जाएगी ? "[3]

मुनाफाखोरों को चेतावानी देते हुए कवि ने एक कविता लिखी है **'प्रतिहिंसा का महारूद्र'**

"फिलहाल / तुम्हारा यह मारक खेल
अभी कुछ समय और चलेगा / लेकिन याद रखो–
हम तुम्हारी बिरादरी के / एक-एक सदस्य का वध करेंगे ।
तुम मुनाफा लोभी / तुम स्वार्थ के नारकीय कीड़े
इस जंगल का एक-एक विरवा / तुम्हारे समूचे वर्ग के लिए
प्रतिहिंसा का महारूद्र प्रमाणित होगा।"[4]

हमारे समाज के इन शोषकों को कवि सावधान करते हैं कि यदि तुम नहीं सुधरे तो जनता तुम्हारा नाश कर देगी । जब जनता जागरूक हो जाएगी तो क्रांति होगी जिसमें इस तरह के शोषक ही निशाने पर

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-46*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-55*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-114*
4. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, पृ. सं.-22*

होंगे। इसलिए समय है कि वे सुधर जाएँ फिर वह समय भी बीत जाएगा ।

नागार्जुन ने इस वर्ग का चरित्र खूब गहराई से परखा है और अपनी कविताओं में उसे चित्रित किया है। छः फैक्ट्री के मालिक 'पुष्पदत्तजी' कितने सूक्ष्म शोषक हैं यह भी उनकी नजरों से छुपा नहीं है कवि बड़े सुन्दर ढंग से उनका स्केच खींचा हैं। इन छुपे रूस्तमों ने देश की कितनी दुर्दशा की है कहा नहीं जा सकता, सत्ता और शासन का आनन्द ये ही उठा रहे है, कला और संस्कृति के नाम पर देश का दोहन करनेवाले ये जोंक ही इन सबके दुश्मन हैं–

"प्रजातंत्र / प्रगति / जनवाद / भारतीय संस्कृति / धर्मनिरपेक्षता
सबमें मिलते-घुलते हैं / सबका आनन्द लेते हैं
आपके लिए मजा ही मजा है सर्वत्र / पुष्पदत्त जी छः फैक्ट्ररियों के मालिक हैं
कला और साहित्य पर तो आपकी खास कृपा है
तीन बार 'इण्टर कान्टिनेन्टल टूर' किया / मास्को-प्राग-बर्लिन-बैंकाक-तोक्यो
कहाँ नहीं गए हैं पुष्पदत्त जी ! "[1]

(ग) नेतागण

वैभव प्रदर्शन में हमारे नेतागण भी पीछे नहीं हैं। भ्रष्टाचार के दलदल में आकंठ निमग्न ऐसे नेता अपने बेटे-बेटियों की शादी में जब पैसा पानी की तरह बहाते हैं तब इस देश का भविष्य निश्चय ही अनिश्चित नजर आता है। प्रश्न उठता है क्या यह ईमानदारी से कमाया गया पैसा है? यदि जन-प्रतिनिधियों का यही हाल रहा तो देश का पतन कहाँ जाकर रुकेगा? **'तीन सिरों वाला बेताल'** कविता में कवि ने लिखा है–

"यह शिक्षामंत्री की / दी हुई पार्टी है / उसकी लड़की की शादी थी कल
इस पार्टी में सब हैं -/ बारात वाले भी / कन्या पक्ष वाले भी
वर वधू की विदाई में / और दहेज में / और स्वागत सत्कार में
लगभग पाँच लाख रूपये खर्च आयेंगे, हाँ "[2]

भारत के शिक्षामंत्री का जब यह हाल है तब अन्य लोगों का खुदा ही हाफिज है। नागार्जुन उन्हें भी व्यंग्य द्वारा शिक्षा देने से नहीं चूकते।

(घ) व्यवसायी वर्ग

हर जगह कवि को पैसे वालों की कारिस्तानी दिख जाती है, रूस से जो शांति मैत्री दल आया है उसे वे संबोधित करके कहते हैं–

"यहाँ तुम्हें / ठौर-ठौर पर / सामन्तशाही के गढ़ दिखाई पड़ेंगे
हम उन्हें कितना भी छिपायें / कितना भी ओझल रखेंगे तुमसे
अपने आप देख ही लोगे तुम तो / मुसोलिनी, हिटलर, तोजो, फ्रांकों के बच्चे
हिन्दुस्तान में ठौर-ठौर पर मिलेंगे तुम्हें / अपनी द्रव्यराशि के जादू से
यहाँ के शोषक / घूम-घाम आतें हैं सारी दुनियाँ
समाजवादी देशों में भी / इनका अबाध स्वच्छन्द विहार होता है
इनकी नकली मुस्कानों से / धोखा मत खाना तुम ।"[3]

समाजवाद, साम्यवाद के दुश्मन पूँजीपति तिकड़म करके उन देशों की यात्रा कर आते हैं और कुछ

---

1. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या, पृ. सं.-27-28*
2. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या, पृ. सं.-63-64*
3. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-49*

सीख नहीं लेते यह भी एक विडम्बना ही है ।

व्यवसायी लोगों के पाखण्डी चरित्र को भी कवि बड़े व्यंग्यपूर्ण ढंग से चित्रित करते हैं। शाकाहारी व्यवसायी अपनी आमदनी के लिए मुर्गाफार्म खोलता है, दूसरों को हिंसा और मांसाहार की ओर प्रवृत्त करनेवाला व्यक्ति अपने अहिंसक और शाकाहारी बना रहता है, इस विडम्बना पर कवि व्यंग्य करता है, इसी दोहरे चरित्र को कवि ने इन पंक्तियों में दिखाया है -

"आपका मुर्गीखाना / इलाके भर में नाम करेगा / आपके लिए
आमदनी का अक्षय स्रोत / साबित होगा / अण्डों मुर्गियों के ग्राहक
अपने आप पहुँचते रहेगें / परिवार भले ही शाकाहारी हो
आमदनी लेकिन / नान भेजिटेरियन होगी /आप उधर प्रवचन देते घूमेंगे
मगर आपका मुर्गीखाना / अधिकाधिक लाभ पहुँचाएगा
व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप में / आप स्वयं और आपका परिवार
विशुद्ध सात्विक बना रहेगा ।"[1]

(ङ) भद्र वर्ग

कवि उन शहरी उच्च वर्ग पर भी व्यंग्य करता है जो गाँव की ओर झाँकना नहीं चाहते। गाँव भारत की जड़ हैं, चाहे जैसे भी हो गाँव, हमें उनसे रिस्ता बनाए रखनी चाहिए और उनके विकास की ओर ध्यान देना चाहिए, न कि उनसे दूर भागना चाहिए। शहरी अभिजात्य वर्ग के लिए ही नागार्जुन ने लिखा है

"हमने सुना है / तुमने अपनी फेमिली को / कभी गाँव-घर की ओर
झाँकने तक नहीं दिया है / यह कैसी शर्म की बात है !"[2]

क्या हम अपनी जड़ों से कट कर सही दिशा में विकास कर सकेंगे। इस तरह जहाँ कही भी नागार्जुन ने अमीर, उच्चवर्ग के शोषक, पाखण्डी चरित्र को देखा उसकी आलोचना की है और उन्हें सही दिशा दिखाने का प्रयास भी किया है ।

भद्र वर्ग पर भी कवि की पैनी निगाह है। जब वे देखते हैं कि यह वर्ग कुली-मजदूर से नफरत करता है तब कवि व्यंग्य में उनसे चुहल करता है–

"दूध सा धुला सादा लिबास है तुम्हारा / निकले हो शायद चौरंगी की हवा खाने
बैठना था पंखे के नीचे, अगले डब्बे में / ये तो बस इसी तरह
लगाएँगे ठहाके, सुरती फांकेगे / भरे मुँह बाते करेंगे अपने देस कोस की
सच-सच बतलाओ / अखरती तो नहीं इनकी सोहबत ?
जी तो नहीं कुढ़ता? / घिन तो नहीं आती है"[3]

जिनकी मेहनत का फल पूरा समाज खाता है उनसे घृणा करना शराफत नही, वे भी हमारे समाज के अभिन्न और आवश्यक अंग हैं, नागार्जुन उनके सामाजिक सम्मान के लिए चिंतित हैं। वे भद्र वर्ग को सही दृष्टि भी देना चाहते हैं।

अभिजात्य बौद्धिक वर्ग का बौद्धिक दिवालियापन भी कवि की तीखी नजरों से छुपा नहीं। डबल एम. ए. पास मिसेज गुप्ता का बौद्धिक पिछड़ापन उनके पूरे व्यवहार में नजर आता है। डिग्री प्राप्त कर लेने

---

1. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-21*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-47*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-29-30*

से न ज्ञान बढ़ता है और न सुरूचि का संस्कार होता है। विद्वानों की पुस्तकों को कमरे में सजा लेने भर से कोई विद्वान हो जाता तो क्या कहना था। सबकुछ के होने पर भी उस महिला में न गंभीरता है और न साहित्यिक विवेक, पूरी कविता इसी साहित्यिक दरिद्रता का अच्छा व्यंग्य चित्र है जिसमें अन्तिम पंक्तियाँ उसकी पराकाष्ठा को प्रदर्शित करती हैं–

"लीजिए, मैं उठ ही जाती हूँ / भेजती हूँ मुन्नी को
लिखवा लेगी चार छे लाईन / सीनियर कैम्ब्रिज का आखिरी साल है
कविता का बेहद शौक है ... / लिख दीजिएगा वही
पांखे खुजलाई कौए ने / रोता रहा चूल्हा, चक्की थी उदास
याद तो होगी न ?"[1]

कविता और कवि के इस अपमान पर कोई भी संवेदनशील व्यक्ति तिलमिला सकता है किन्तु उस भद्र महिला को कौन समझाए ? 'कवि' और 'कविता' की अपनी एक गरिमा होती है, अपना एक स्वभाव होता है उसे कहीं भी, कभी भी प्रदर्शन के लिए फूहड़ ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । हमारा आभिजात्य वर्ग कब इस बात को समझ पाएगा ?

सत्ता के लोभ और लाभ ने अधिकारी वर्ग को कितना डरपोक और रीढ़विहीन बना दिया है यह 'सदाशय बन्धु' कविता को पढ़कर जाना जा सकता है। जब कवि ने सत्ता के खिलाफ कविताएँ सुनानी शुरू कर दीं तब सभी अधिकारियों की हालत खराब हो गई । सच सुनने की भी ताकत उनमें नहीं है सच कहने की तो बात ही अलग है। सच से डरे हुए इन अधिकारियों से देश का उन्नति की क्या आशा रखी जाए। सत्ता और सुविधा ने इन्हें कितना कायर बना दिया है -

"शासन के खिलाफ / ऐसी उत्कट रचना सुनाकर / कर दिया मैंने पैदा
बहुतेरे 'भद्र' लोगों के सिर-दर्द"[2]

भद्रवर्ग को गाली देने से भी कवि नहीं चूकता। जब वे आदमी की कद्र नहीं करते और कुत्तों को गले लगाते हैं तब कवि इतना तीखा हो जाता है कि कह उठता है–

"कुत्ते ने भी कुत्ते पाले, देखो भाई। / पैदल चलने वालों की तो शामत आई ।
इन्हें सुलभ है फ्रिजवाली वो बरफ-मलाई ।
किश्तों में भूँका करते हैं, बस प्रभु के हैं उत्तरदाई ।"[3]

(च) अधिकारी वर्ग

शोषक वर्ग जनता से भयभीत रहते हैं क्योंकि उनके दिलों में खौफ छाया रहता है बेईमान, भ्रष्ट, एस. डी. ओ. की पत्नी सपने में भी डर जाती है -

"भुक्खड़ के हाथों में यह बन्दूक कहाँ से आई
एस.डी.ओ. की गुड़िया बीबी सपने में घिघियाई
बच्चे जागे, नौकर जागा, आया आई पास
साहेब थे बाहर, घर में बीमार पड़ी थी सास
नौकर ने समझाया-नाहक ही डर गयी, हुजूर !
वह अकाल वाला थाना पड़ता है काफी दूर !"[4]

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं. 51-53*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमनें, पृ. सं.-105*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-53*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-135*

जनता से यह डर भ्रष्टाचार की वजह से है, जो जनता का काम नहीं करेंगे, उनका शोषण करेंगे अन्दर से वही डरेंगे, यह सपना उनके शोषण की कथात्मक कहानी है।

2. नागार्जुन के हिन्दी काव्य में निम्न मध्यवर्ग एवं श्रमिक समाज

निम्न मध्यवर्ग

नागार्जुन निम्न मध्यवर्गीय समाज में पैदा हुए । इस वर्ग की मजबूरी से वे वाकिफ थे इसलिए बड़ी गहराई और सच्चाई से उसे चित्रित कर पाए। चाहे छोटा किसान हो, श्रमिक हो, प्राथमिक विद्यालय का शिक्षक हो, सैनिक हो, स्वतंत्रता सेनानी हो, कामकाजी स्त्री हो, दफ्तर का किरानी हो सब नागार्जुन की कविता के मुख्य आधार स्तम्भ हैं। इनकी समस्या, इनकी पीड़ा, इनका संघर्ष ही कवि की कविता का श्रृंगार है। इन्हीं को जगाने के लिए इनका पूरा काव्य संघर्ष है, उन्होंनें स्पष्टतः स्वीकारा है - **"हमारा मन करता है गाने का, लिखने का-इसलिए लिखते हैं। अच्छा लगता है। लोग जानें और समझें कि हमारा समाज और शासन कैसा है? जनता जागरूक हो, चेतना सम्पन्न हो । भूख और अभाव से त्रस्त सर्वहारा और किसान-मजदूर के लिए मन कसकता है। जनता की बेबसी और उसकी पीड़ा को एक आकार देते हैं। मन को तसल्ली होती है।"**[1]

(क) किसान

किसानों की जीवन-समस्या और उनके संकल्प को कवि ने 'पूरी आजादी का संकल्प आज दुहराते हैं' कविता में जिस शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया है वह प्रशंसनीय है—पूरी कविता उद्धृत करने योग्य है फिर भी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"बीज नहीं है, बैल नहीं है, वर्षा बिन अकुलाते हैं
नहर रेट बढ़ गया, खेत में पानी नहीं पटाते हैं
नहीं भूमि में कनमा भर भी दाना उपजा पाते हैं
पिछला कर्ज चुका न सके, साहू की झिड़की खाते हैं
उतना ही फँसते, अपने को जितना अधिक बचाते हैं
भूखे रहकर, आधा खाकर दिन पर दिन दुबरातें है ।
*** * * * * * * ***
फिर पूरी आजादी का संकल्प आज दुहराते हैं।"[2]

पूरी कविता में 21 पंक्तियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि यह भारतीय किसानों के जीवन का सच्चा चित्र है, बाद की 14 पंक्तियों में कवि ने आशावादी संकल्प जगा कर किसानों की समस्याओं के समाधान की ओर इशारा किया है। काश! ऐसा हो पाता, आज भी ऊपर की पंक्तियाँ सच हैं, बाद का संकल्प अधूरा ही रह गया है ।

गाँव के किसान और शहर के मजदूर ही हमारी अर्थव्यस्था के मूलाधार हैं इसलिए कवि इनकी चिन्ता अधिक करते हैं क्योंकि ये अगर समृद्ध हो गए या इनको यदि अधिकार मिल गया तभी हमारा देश तरक्की कर पाएगा - कवि का ऐसा ही विश्वास है। इसलिए बार-बार इनको अपनी कविताओं में याद करते हैं । अन्न-पचीसी जैसी महत्त्वपूर्ण कविता में वे श्रमिकों का आह्वान करते हुए कहते हैं -

"बैलों के साथी हलधर, तुम हँसिया वाले आओ ।
खान श्रमिक तुम भूत सरीखे काले-काले आओ ।

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-41*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-51*

आओ छटनी के शिकार ! तुम निपट निराले आओ !
आओ तुम बेकार पंगु तुम, बैठे ठाले आओ !"[1]

(ख) शिक्षक

बिहार के शिक्षकों की सबसे गंभीर समस्या है अनियमित वेतन मिलना । इस अनियमितता की वजह से प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की हालत पतली रहती है। उनका जीवन त्रासद आर्थिक यंत्रणा का शिकार हो जाता है और कई बार वे अकाल काल के गाल में चले जाते हैं। ऐसा सरकारी शोषणतंत्र पूरी दुनिया में शायद ही कहीं होगा, जहाँ समय पर वेतन नहीं मिलता और निम्न मध्यवर्गीय शिक्षक इंतजार करते-करते दम तोड़ देता है। 'प्रेत का बयान' और 'मास्टर' शीर्षक कविताओं के माध्यम से कवि ने न सिर्फ शिक्षकों के जीवन की मार्मिक गाथा को दिखाया है वरन बिहार प्रदेश के अन्य सरकारी विभाग के निम्न मध्यवर्गीय कर्मचारियों के जीवन को भी वाणी दी है ।'प्रेत का बयान' कविता में कवि ने लिखा है -

"महाराज ! सच-सच कहूँगा / झूठ नहीं बोलूँगा / अब हम गुलाम नहीं
नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के /...पेशा से प्राइमरी स्कूल का मास्टर था
तनखा थी तीस रुपैया, सो भी नहीं मिली / मुश्किल से काटे हैं
एक नही, दो नही, नौ-नौ महीने / घरनी थी, माँ थी, बच्चे थे चार
आ चुके हैं वे भी दयासागर, करुणा के अवतार! / आप ही की छाया में
*** * * * * * * * * * ***
यकीन नहीं करते आप क्यों मेरा / कीजिए, न कीजिए आप चाहे विश्वास
साक्षी है धरती, साक्षी है आकाश / और और और और और भले
नाना प्रकार की व्याधियाँ हो भारत में / किन्तु—/.....
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका / ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
*** * * * * * * * * * ***
जहाँ तक मेरा अपना संबंध है / सुनिये महाराज / तनिक भी पीर नहीं
दुख नहीं, दुविधा नहीं / सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सकी आँत जब पेचिश का हमला...."[2]

यह संवाद है शिक्षक का यमराज के साथ । वह जिस ढंग से सफाई देता है नरकेश्वर के सामने वह बड़ा दारुण और व्यंग्यपूर्ण है। क्या हमारा देश नरक से कम है और सरकार नरकेश्वर से कम ? जहाँ सरकारी शिक्षक भूख की चक्की में पिसकर अकाल मौत का शिकार होता है। किसी भी स्वंतत्र देश के लिए यह बड़े शर्म की बात है। जब जनता सुरक्षित और आर्थिक रूप से संतुष्ट नहीं होगी तब देश का विकास क्योंकर संभव होगा ?

'मास्टर' कविता में जिस सरकारी विद्यालय का चित्र प्रस्तुत किया गया है वह मौत का खण्डहर अधिक नजर आता है पाठशाला कम -

"घुन-खाए शहतीरों पर की, बाराखड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम के साँचे"[3]

---

1. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं. - 59*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-87-89*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-173*

ऐसे खण्डहर में सताए हुए शिक्षक के द्वारा सरकार जिन बच्चों को साक्षर कर रही है क्या वे अत्याधुनिक सुविधाओं से लैश निजी विद्यालय के बच्चों का मुकाबला कर सकेंगे। हम उन्हें साक्षर बना सकते हैं शिक्षित नहीं। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति किए बिना बच्चे का सर्वांगीण विकास संभव नहीं। 'दुखरन मास्टर' की भी वही मुख्य समस्या है, वेतन न मिलने की, कई बार शिक्षा मंत्री को याद दिलाया कोई प्रभाव नहीं पड़ा, इस कविता के अंत में कवि ने पत्र द्वारा उनका दुख-दर्द प्रस्तुत किया है–

"लिखा अन्त में ध्यान दीजिए, बहुत दिनों से मिला न वेतन
किस से कहूँ दिखायी पड़ते कहीं नहीं अब वे नेतागण
पिछली दफे किया था हमने पटने में जा-जा के अनसन
स्वयं अर्थमंत्री जी निकले, वह दे गये हमें आश्वासन
और क्या लिखूँ, इन देहाती स्कूलों पर भी दया कीजिए
दीन-हीन छात्रों गुरुओं की कुछ भी तो सुध आप लीजिए
हटे मिटे यह निपट जहालत, प्रभु ग्रामीणों पर पसीजिए
कई फंड है, उनमें से अब हमको वाजिब एड दीजिए"[1]

सरकार की लापरवाही ने पूरी व्यवस्था को अधमरा कर दिया उसमें निम्न मध्यवर्ग चारों तरफ से पिस रहा है, यह कविता 1950 के बाद की है लेकिन आज की तारीख में भी इसकी प्रासंगिकता अक्षुण्ण है क्योंकि कमोबेस बिहार में अभी भी सरकारी विभागों का यही हाल है ।

(ग) किरानी

निम्नमध्य वर्ग का मुख्य पात्र है–किरानी, सामान्य आमदनी में परिवार चलाना इसके सामर्थ्य के बाहर है। आर्थिक असमर्थता ने इसके जीवन का सारा रस सोख लिया है। काम का बोझ, परिवार का दबाव और महँगाई की मार में दबा दफ्तर का किरानी बिन मौत तिल-तिल कर मर रहा है। नागार्जुन लिखते हैं–

"दिन-दिन चढ़ती-बढ़ती महँगी सूपनखा बन सर पर मँडराती है।
सच समझे छोटे-बाबू पर तरस मुझे आती है/ बीबी-बच्चे इक दो नौकर....छोटा सा संसार
इसे चलाने को भी चाहिए नोटों का अम्बार
*** * * * * * * * * * ***
पर छोटे बाबू का होगा कैसे बेड़ा पार / इन बेचारों को मिलती है सधी-बँधी तनख्वाह
पा जाते हैं नाममात्र महँगाई का भत्ता भी / फिर भी क्या पूरा पड़ता है?
बुरा हाल है, / दुनियादारी का यह छकड़ा / खींच नहीं पाते हैं
बिना मौत के मरे बेचारे / नींद नहीं आती है, गिनते छत की कड़ियाँ
आसमान के तारे!/ कभी ना देखी जेल / इसीलिए क्या बेचारे की यह दुर्गत है?"[2]

नागार्जुन पूरी हमदर्दी के साथ इसे चित्रित करते हैं इस व्यवस्था में मेहनकश निम्नमध्य वर्ग का यही होना है।

'जया' शीर्षक कविता में कवि ने निम्नमध्य वर्ग की लाचारी का बड़ा भयानक चित्रण किया है। 'जया' नाम की छोटी सी बच्ची है-बहरी-गूँगी। देखने में सुंदर, भोली और चंचल किन्तु अधूरी। प्रकृति का यह कोप उसके लिए अभिशाप और उसके माता-पिता के लिए कितना तकलीफ देह है यह तो कवि ही समझ

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-175*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-96-97*

सकता है क्योंकि वह आर्थिक रूप से अक्षम है। इससे अधिक लाचार एक दम्पति नहीं हो सकता कि वह चाहते हुए अपनी बच्ची की सही परवरिश नहीं कर सकता क्योंकि वह निर्धन है और इलाज महँगे। निराला इन्हीं क्षणों में टूटते हैं, जया के माता-पिता भी यहीं बिखरते हैं, कवि हार्दिक और साहित्यिक संवेदना तो देता है किन्तु ठोस मदद कर पाना उसके लिए भी दुष्कर है क्योंकि वह स्वंय इसी वर्ग के अभिशाप का शिकार है। नागार्जुन ने लिखा है-

"वह बोल नहीं सकती / लेकिन उसकी भी अपनी भाषा है
काफी है सूझ समझ उसमें सुख है दुख है अभिलाषा है
माँ-बाप गरीब, न कर सकते कुछ प्रतिकार बहरेपन का
सोचा होगा पकड़ा देंगे कोई पथ जीवन यापन का / बन सकती है वह चित्रकार
ले सकती है वह नाच सीख / जिससे न किसी पर पड़े भार
जिससे न माँगनी पड़े भीख / लेकिन यह तो बस सपना है
चलता भी कुछ बस अपना है! / कैसा असह्य, कितना जर्जर
यह मध्यवर्ग का निचला स्तर ।
स्कूली जीवन के साधारण मास्टर का हो किसमें लेखा ।
मैंने झाँका तो यह देखा / बाहर सफेद, अंदर धुँधला
क्या कर सकता वह बाप भला / बहरी-गूँगी उस बच्ची की शिक्षा-दीक्षा का इन्तजाम।"[1]

(घ) सैनिक

इस निम्नमध्य वर्ग में देशभक्त सिपाही भी हैं जो सरहदों पर मुस्तैदी से देश की सुरक्षा कर रहे हैं। नागार्जुन के मन में इन वीरों के लिए गहरे सम्मान का भाव है इसलिए कई कविताओं में उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते । 'खड़े हैं दिन रात' (हज़ार हज़ार बाँहोंवाली -पृ. सं.-143) 'हिम-कुसुमों का चंचरीक' (प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-43) एवं 'वीर-बाँकुरे गढ़वाली...' (अपने खेत में, पृ. सं.-49) कविताओं में कवि ने इनकी देशभक्ति, कर्मठता और बलिदानी स्वाभाव का यशोगान किया है, एक उदाहरण ही काफी है–

"मातृभूमि का चप्पा-चप्पा / इनके शोणित से सिंचित / इनके दिल में पा न सकोगे
संशय या दुविधा किंचित / साक्षी है इतिहास / साक्षी धरती / साक्षी है आकाश
किसे नहीं प्यारे लगते हैं / वीर-बाँकुरे गढ़वाली / करते हैं दिन रात
मातृभूमि की रखवाली / वीर-बाँकुरे गढ़वाली...."[2]

कवि न सिर्फ इनकी प्रशंसा करते हैं वरन इनके जीवन के मार्मिक स्थानों को छूते भी हैं जिसमें छोटी बच्ची का स्नेह है, पत्नी के प्रेम की उष्मा है, गाँव घर की मोहक स्मृति का आकर्षण है–

"छोटी बच्ची की छवि आँखों में छाई है। / कल परसों ही तो घर से चिट्ठी आई है
घर खेत गाँव की रूह कौंधती है मन में / स्मृतियों का सौरभ ध्वनि भरता है निर्जन में
बन्दूक, तुम्हारी हल से आज सगाई है / छोटी बच्ची की छवि आँखों में छाई है।"[3]

इस भ्रष्ट व्यवस्था में स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक की पेंशन तक खाने वाले लोग मौजूद हैं। कवि ने उनकी पोल भी बड़े मार्मिक ढंग से खोली है, जहाँ आजादी के सिपाहियों का बुढ़ापा सुरक्षित नहीं वहाँ आजादी भी

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-108-109*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-49*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-43-44*

सुरक्षित नहीं, देशभक्तों का पेंशन खाने वाले इतने निर्मम, इतने निर्लज्ज, इतने गद्दार निकलेंगे कोई सोच भी नहीं सकता। 'वे खा गए' इसी तरह की कविता है जिसमें स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक की जली हुई हड्डियों से आवाज आती है–

"मैं स्वतंत्रता संग्राम का सैनिक था / हमारी पेंशन राशि वे खा गए.."[1]

श्रमिक समाज

नागार्जुन सबसे अधिक किसी से जुड़ते हैं तो वह है - निम्नवर्ग । जो दिन-रात मेहनत करके अपने एवं अपने परिवार के भरण-पोषण में लगा है किन्तु हर तरह से असमर्थ है। कवि की पूरी संवेदना, आत्मीयता उसी सर्वहारा वर्ग के लिए है। उन्होंने इसे स्वीकार भी किया है - **"सर्वहारा से हमारी सहानुभूति स्पष्ट है, हमारे लेखन का मन्तव्य स्पष्ट है तमगा बिल्ला वह सब हमें अभीष्ट नहीं ।"[2]**

(क) रिक्शावाला

रिक्शावाला इस वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है उसका जीवन हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद इतना अभावग्रस्त, इतना लाचार है कि कवि बेचैन हो उठता है 'खुरदरे पैर' में वे लिखते हैं–

"खूब गये / दूधिया निगाहों में / फटी बिवाइयों वाले खुरदरे पैर
*** * * * * * * * ***

देर तक टकराये / उस दिन इन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पाउँगा फटी बिंवाइयाँ / खुब गईं दूधिया निगाहों में
धँस गई कुसुम कोमल मन में "[3]

निराला की तरह नागार्जुन समाज में उपेक्षित, मेहनतकश निम्नवर्ग की ओर देखते हैं और तड़प उठते हैं, यही गहरी संवेदना उन्हें अन्य कवियों से अलग करती है। नागार्जुन ने एक साक्षात्कार में चिंता व्यक्त किया है **"जब मैं देखता हूँ कि रिक्शाचालक की बनियान फटी हुई है तो मुझे अजीब लगता है। सोचता हूँ कि चालीस वर्षों की आजादी से इन्हें क्या मिला ?"[4]** यह प्रश्न कितना वाजिब और महत्त्वपूर्ण है। यदि हम मेहनत करने वाले मजदरों को सुरक्षा और उचित मजदूरी नहीं दे सकते तो निश्चय ही हमारा समाज पिछड़ जाएगा। असमान वितरण और इस पूँजीवादी व्यवस्था ने हमारे समाज में वर्ग की खाई को कितना चौड़ा कर दिया है? फिर हम किस मुँह से अपने समाज को विकास की ओर अग्रसर मानते हैं, इसपर हमारी सरकार मौन है।

साम्प्रदायिकता हमारे रग-रग में बसी हुई है तभी तो आए दिन देश के किसी न किसी हिस्से में दंगे होते हैं। इन दंगो में सबसे अधिक किसी को हानि होती है तो वह है–निम्नवर्ग। प्रतिदिन की मजदूरी से जिसके घर में चूल्हा जलता है, जिसके पेट की आग बुझती है। मेरठ में दंगे हुए, साम्प्रदायिकता की भावना इतनी बढ़ी कि लोग सम्प्रदाय देखकर रिक्शे पर बैठने लगे, अब बेचारा कलीमुद्दीन रिक्शेवाला क्या करे! वह अपना धर्म बचाए या रोटी। अंत में उसने रुद्राक्ष की लम्बी माला गले में डाल ली और चन्दन का तिलक लगा लिया। कवि के चित्रण में कितनी गहरी पीड़ा छिपी है–

"गले से / रूद्राक्ष की लम्बी माला / लटक रही थी / जोगिया कलर वाले
कुर्ते पर...../ दाहिने कान से / लाल फूल अटका पड़ा था

---

1. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-9*
2. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-182*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-23*
4. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-243*

चमक रहा था भाल पर / चन्दन का पीला तिलक.....
* * * * * * * * * * *
कि इतने में/एक और युवक / इन कानों में / फुसफुसा के कह गया
खबरदार यह मुसलमान है.... / इसके रिक्शे पर / कभी ना बैठना आप ।
* * * * * * * * * * *
हमें हास्टल के गेट पर / पहुँचाकर / निहायत नरम आवाज में
वो कहने लगा / "बाबा जी हम अब चुटैया भी रखेंगे / आठ-दस रोज की
भुखमरी के बाद/हमारे अन्दर / य 'अक्किल फूटी है / बाबाजी / रुदराछ के मनके
अच्छी मजूरी दिला रहे हैं। बाबाजी अब हम / चुटला भी रखेगें माथे पे
अब हम चन्दन का टीका भी / रोज लगाते रहेंगे ...../ बाबाजी अब हम
अपना नाम भी तो / "परेम परकास" बतलाते हैं...../ यों तो वो / कल्लू था
कल्लू रिक्शावाला / यानी कलीमुद्दीन / मगर अब वो / 'परेम परकास'
कहलाना पसन्द करेगा...../ कलीमुद्दीन तो / भूख की भट्ठी में / खाक हो गया था"[1]

कविता में आगे कवि अपने हृदय की पूरी संवेदना उस पर उड़ेल देता है किन्तु अंत में एक बौखलाहट भी है। यह अपने अंदर के साम्प्रादियक मन के लिए है। कवि की यही ईमानदारी उनकी शक्ति है। अपने हृदय और दिमाग के दो विचारों को बखूबी प्रकट किया है। इस कविता के माध्यम से कवि कहना चाहते हैं कि साम्प्रदायिकता का जहर हमारे जेहन में कितनी दूर तक चला गया है कि हम सामाजिक समरसता में भी विष घोल रहे हैं। आज तक समाज में हमने यह नहीं देखा था कि शब्जी वाला हिन्दू है या मुस्लिम, यह दुकान किसकी है, यह रिक्शा किसका है किन्तु आज हम यह देख रहे हैं। जो मुसलमान इस समाज के अभिन्न अंग हैं और जिन्होंने कुछ नहीं किया उनका क्या दोष। समाज यदि इतनी छोटी-छोटी बातों पर बँट जाएगा तो कैसे हमारा जीवन चल पाएगा। स्वार्थ और राजनीति की भट्ठी सेंकने वाले नहीं जानते कि इससे अंततः एक गृह युद्ध शुरू होगा जिसका कही अंत नहीं और देश कई टुकड़ों में बँट जाएगा। नफरत के इन बीजों को आम आदमी को ही उखाड़ फेंकना होगा नहीं तो जो होगा उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। साम्प्रदायिकता का हल हत्या नहीं, द्वेष का हल दंगा नहीं, प्रेम और सद्भाव है जिसे सबको बचा कर रखना है। 1990 और 2002 के बाद देश की स्थिति को देखते हुए इस बात की जरूरत और बढ़ जाती है ।

कलकत्ते में हाथ रिक्शा खींचने वाले जो मजदूर हैं वे आज भी कितने लाचार और मजबूर हैं। जानवरों की तरह खुद श्रम करके ठेला खींचने वालों के लिए कवि का सीना फटा जा रहा है–

धिक् अकर्म का यह अतिक्रूर विकल्प
धिक् सुख-सुविधा का मौखिक संकल्प
श्रम ही श्री है प्रतिफल कितना अल्प
धिक् शासन, धिक थोथे घने प्रकल्प
धिक् अकर्म का यह अतिक्रूर विकल्प
धन्य-धन्य फुटपाथ बनी आधार
पड़ा हुआ है नर वाहन बीमार
रंगी थूक के छींटों से दीवार

---

1. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !, पृ. सं.-13-17*

चल नर पशु चल, नरपशुओं को खींच
बीच सड़क पर यो मत आँखें मींच
श्रम बूँदों से सींच, प्रगति को सींच
विधि-विधान है, वे महान तू नीच
चल नर पशु चल, नर पशुओं को खींच"[1]

फटे हुए पैरों को कवि ने होठों वाले चरण लिखा है, जिससे खून रिसता रहता है और सड़क उसे पीती रहती है। यह शोषण का खुला रूप है, संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है। अमीरों ने दुनिया को इतना कठोर और लाचार बना दिया है कि आदमी स्वेच्छा से गुलाम बनने को मजबूर है। एक आदमी रिक्शे पर बैठा है और दूसरा उसे जानवर की तरह खींच रहा है यह अमानवीय ही नहीं, क्रूरता है। यदि हमें एक स्वस्थ समाज बनाना है तो इस व्यवस्था को खत्म करना ही होगा वरना विकास का नारा सिर्फ नारा ही रह जाएगा। कोलकाता साम्यवादियों का गढ़ है वहीं इतनी क्रूर व्यवस्था कायम है यह भी एक विडम्बना ही है। रिक्शावालों के प्रति गहरी सहानुभूति देखकर ही डॉ. नामवर सिंह ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—"**मनुष्य के ये वे रूप (रिक्शावाला) हैं जो नागार्जुन न होते तो हिंदी कविता में शायद ही आ पाते।**"[2]

(ख) कुली मजदूर

कुली मजदूर कवि के इतने आत्मीय हैं कि वह इनके लिए भद्र वर्ग की भी भद्द उड़ाता है। 'घिन तो नहीं आती है' कविता में जिस सहानुभूति और आत्मीयता से कवि ने इन्हें चित्रित किया है वह देखा जा सकता है

"पूरी स्पीड में है ट्राम / खाती है दचके पे दचका / सटता है बदन से बदन
पसीने से लथपथ / छूती है निगाहों को / कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान
बेतरतीब मूछों की थिरकन / सच-सच बतलाओ / घिन तो नहीं आती है ?
जी तो नहीं कुढ़ता है ? / कुली-मजदूर हैं /बोझा ढोते हैं, खींचते हैं ठेला
धूल-धुंआ-भाफ से पड़ता है साबका / थके-माँदे जहाँ तहाँ हो जाते हैं ढेर
सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन / आकर ट्राम के अंदर पिछले डब्बे में
बैठ गये हैं इधर-उधर तुमसे सटकर / आपस की उनकी बतकही / सच-सच बतलाओ
नागवार तो नहीं लगती है? / जी तो नहीं कुढ़ता है? / घिन तो नहीं आती है ?"[3]

रीतिकालीन नायिका के सौन्दर्य-चित्रण और इन मजदरों के सौन्दर्य-चित्रण में कितना फर्क हैं यह स्पष्ट देखा जा सकता है। इसमें कवि की हार्दिक संवेदना और सौन्दर्य दृष्टि का बहुत बड़ा हाथ है। ऊपर से मैले, कुचैले दिखने वाले धूल-धुसरित मजदूर श्रम की गरिमा से अपने अनगढ़ सौन्दर्य में कितने मोहक लगते हैं लेकिन वह दृष्टि भी कवि नागार्जुन की दी हुई है। इन लोगों के प्रति अकृत्रिम प्रेम ही कवि की कविता की शक्ति है।

(ग) बस चालक

नागार्जुन न सिर्फ श्रमिक समाज के दुख-दर्द के साथी हैं बल्कि इनके हर्ष-विषाद, वात्सल्य-प्रेम, हँसी-मजाक सबको कविता में चित्रित करने वाले कवि भी हैं। 'गुलाबी चूड़ियाँ' उनकी एक मशहूर कविता है जिसमें एक बस ड्राइवर के प्रेम-पूर्ण हृदय का इतना सुन्दर चित्रण हुआ है जिसे आज तक साहित्य में स्थान नहीं मिला था। पूरी कविता उद्धृत करने योग्य है—

---

1. नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-44-45
2. नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-6
3. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-29

"प्राइवेट बस का ड्राइवर है तो क्या हुआ / सात साल की बच्ची का पिता तो है !
सामने गीयर से ऊपर / हुक से लटका रक्खी है / काँच की चार चूड़ियाँ गुलाबी
बस की रफ्तार के मुताबिक / हिलती रहती है-/ झुक कर मैंने पूछ लिया
खा गया मानो झटका / आहिस्ते से बोला : हाँ साब
लाख कहता हूँ, नहीं मानती है मुनिया / टाँगे हुए है कई दिनों से / अपनी अमानत
यहाँ अब्बा की नजरों के सामने / मैं भी सोचता हूँ / क्या बिगाड़ती हैं चूड़ियाँ
किस जुर्म पे हटा दूँ इनको यहाँ से ? / और ड्राइवर ने एक नजर मुझे देखा
और मैंने एक नजर उसे देखा / छलक रहा था दूधिया वात्सल्य बड़ी-बड़ी आँखो में
तरलता हावी थी सीधे-सादे प्रश्न पर"[1]

अछूती संवेदनाओं को पकड़ने में कवि का जवाब नहीं। बस ड्राइवर के कठोर चेहरे के पीछे जो वात्सल्य भरा दिल है वह भी अपनी बच्ची के स्नेह से धड़क रहा है, निम्नवर्ग में भी जो तरल मानवीय स्नेह है कवि ने उसका अच्छा चित्रण किया।

(घ) उपेक्षित पहलवान

हमारा समाज और हमारी सरकार बड़ी नाशुक्रगुजार है । जिन लोगों ने अपनी कला, मेहनत और हुनर से कभी देश का नाम ऊँचा किया था उसे भी सरकारी संरक्षण दे पाने में असमर्थ है। ऐसे लाचार सरकार और निष्क्रिय समाज का उत्थान कभी हो सकती है ? 'बुदुल' कविता में कवि ने एक पहलवान की पीड़ा को बखूबी वाणी दी है -

"ढाल से/उतराई के शुरू में ही / वो रोगी सा लेटा दिखेगा / मोटी दफ्ती में
टेढ़े मेढ़े आखर / पढ़ लो... / बुदुल पहलवान / उमिर पचासी साल
आप सबन का आसरा है/ जै गंगा मइया.../ जै युमना मइया... / आप के दादा ने
हमें देखा था / हम जवान थे / लाहौर तक / अपनी पहलवानी का जादू
दिखलाया दो बार / आप आगे बढ़ो / बस एक चवन्नी छोड़ जाओ
भगवान तुम्हारा भला करें / बुदुल का आशीवार्द लेते जाओ
और बुदुल को याद रखना ....."[2]

कभी अपनी कला का जौहर दिखानेवाले पहलवान को आज रास्ते का भिखारी होना पड़ रहा है, दोष किसका है, हमारी सरकार का या इस सामाजिक व्यवस्था का । आजादी के लगभग 57 वर्षों बाद भी हम ऐसी सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा अपने वृद्ध नागरिकों को नहीं दे पाए हैं यह बड़े शर्म की बात है। फिर सरकार के विकास के सारे दावे कितने खोखले लगते हैं। निराला के 'भिक्षुक' की तरह नागार्जुन की 'बुदुल..' कविता करुण चित्र का विरल उदाहरण है।

(ङ) मछुआरे

मेहनतकश मजदूरों में नागार्जुन मछुआरों की तरफ खूब आकृष्ट होते हैं, उनकी मस्ती, उनकी क्रीड़ा उन्हें बहुत भाती है। कई कविताओं में उन्होंने मछुआरों एवं उनके छोकरों का चित्रण किया है। एक कविता है 'चीखा आक्रोश अंध!' (प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-23) उसमें मछली पकड़ने की क्रिया को दिखाया गया है। एक अन्य कविता है- 'बार-बार हारा है', आत्मकथात्मक ढंग से कवि ने गोआ तट के मछुआरों पर पूरी संवेदनात्मक सहमति के साथ लिखा है–

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-25*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-27*

"गोआ तट का मैं मछुआरा / सागर, की उद्दाम तरंगें / मुझ से कानाफूसी करतीं
नारिकेल के कुंज वनों का / मैं भोलाभाला अधिवासी / केरल का वह कृषक पुत्र हूँ
'ओणम' अपना निजी पर्व है / नौका चालन का प्रतियोगी
मैं धरती का प्यारा शिशु हूँ / श्रम ही जिसकी अपनी पूँजी
छल से जिसकी सहज घृणा है / मैं तो वो कच्छी किसान हूँ
लवण उदधि का खारा पानी / मुझ से बार-बार हारा है ..."[1]

नागार्जुन निम्नवर्ग के उल्लास और जीवन संघर्ष के सौंदर्य को भी बखूबी चित्रित करते हैं। कम से कम दो कविताओं में उनकी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। 'देखना ओ गंगा मइया' (सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-21) एवं 'गीले पाँक की दुनिया गई है छोड़' (सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-52) कविताओं में मछुआरों के बच्चों को पूरे उत्साह से प्रस्तुत किया गया है जिसमें जीवन-संघर्ष की आग सुलग रही है। कवि इस संघर्ष में साथी है–

"चंद पैसे / दो-एक दुअन्नी इकन्नी / कानपुर-मुंबई की अपनी कमाई में से
डाल गये हैं श्रद्धालु गंगा मइया के नाम
* * * * * * * * * * *
नीचे प्रवहमान उथली छिछली धार में / फुर्ती से खोज रहे पैसे
मलाहों के नंग धड़ंग छोकरे
* * * * * * * * * * *
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि / बीड़ी पियेंगे...../ आम चूसेंगे....
या कि मलेंगे देह में साबुन की सुगंधित टिकिया
लगाएँगे सर में चमेली का तेल / या कि हम उम्र छोकरी को टिकली ला देंगे
पसंद करे शायद वह मगही पान का टकही बीड़ा / देखना ओ गंगा मइया
निराश न करना इन नंग-धड़ंग चतुर्भुजों को "[2]

कवि इन छोकरों की रूचि, आकांक्षा सबकुछ से परिचित है इसलिए इतनी गहराई से इनसे मज़ाक कर पाता है, इनके लिए दुआ करता है। बच्चों की संवेदना से एकाकार हो जाना ही कवि की सबसे बड़ी सफलता है, यही बड़े कवि की निशानी है।

विनाश में भी जो वर्ग अपना हौसला नहीं खोता, उजाड़ में भी जिसकी मुस्कान मौजूद रहती है वैसे ही मल्लाहों को कवि अपने काव्य में उकेरता है या नायक की तरह प्रस्तुत करता है। बाढ़ आकर सबकुछ को तबाह कर चुकी है फिर भी जीवन का उल्लास और संघर्ष की धार को भोथरी नहीं कर सकी -

"हटो गंगा / किन्तु गीले पाँक की दुनिया गई है छोड़ / और उस पर
मलाहों के छोकरों की क्रमांकित पद पंक्ति / खूब सुन्दर लग रही है...
मन यही करता कि मैं भी / उन्हीं में से एक होता / और- / नंगे पैर, नंगा सिर
समूचा बदन नंगा.../ विचरता पंकिल पुलिन पर / नहीं मछली ना सही
दस-पाँच या दो चार क्या कुछ घुँघचियाँ भी नहीं मिलतीं?"[3]

(च) मेहतर

कवि इनके जीवन के रग-रग में घुसा हुआ है, इनके संघर्ष का साथी है, इनकी विजय का प्रत्यक्षदर्शी और आनन्द का सहभागी। अपनी मांग मनवा लेने पर विजयी मेहतरों की बारात निकली है कवि ने उसे

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-12*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-21*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-53*

भी उचित स्थान दिया है। 'जय हो बंभोला' कविता में वे लिखते हैं–

"इनकिलाब जिन्दाबाद, / मेहतर यूनियन जिन्दाबाद
ध्यान लगा के सुना तो समझ में आई बात -
निकली थी यह विजयी मेहतरों की बारात / मस्त थे वे माँग मनवा लेने की खुशी में
चटपट कमरे से मैं भी निकला / किलबिल करते लाख चौरासी
जीवों के संभावित महामोक्ष की खुशी में / मेरे भी मुँह से निकल ही तो पड़ा
- जय हो बंभोला"[1]

संघर्षरत निम्नवर्गीय जनता का साथ कवि मन से देता है। अन्य तरह की दो कविताओं में निम्नवर्ग की खस्ता हालत की चर्चा है, जिनमें एक है 'कबंध' (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-115) दूसरी है–'आदम का तबेला' (प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-18)। 'आदम का तबेला' जैसा कि शीर्षक से ही ज्ञात है जानवरों की तरह रह रहे लोगों पर केन्द्रित है, 17 कोठरियों में 250 लोग जानवरों की तरह रह रहे हैं, कवि इस स्थिति से पीड़ित है। क्या हमने इसी तरह के भारत का सपना देखा था? पूरी कविता इस तरह है–

"चरते रहते हैं ढाई सौ प्राण / सत्रह कोठिरियों में ...../ हैजा भी नहीं होता
काली माई को दया भी नहीं आती है! / एक बम्बा है, तीन लैट्रिन
देखकर पानी का मोर्चा / पसीने को आती है शर्म
ऊपर देखते हैं खाली बाल्टियों के ढेर; / पितरों की प्यासी रूहें
अँगूठा चूसती है नवजात बच्ची / खिड़की से लटका दिया गया है लाल खिलौना"[2]

इसी तरह निम्नवर्ग अपनी 'पेट' की ही चिन्ता में मिटा जा रहा है । उनका उद्धार करने वाला इस युग में कोई नहीं–

"पेट ही पेट है / डोलता फिरता हूँ / माथे की टोह में-
जाने कब तक भटकना पड़ेगा ? / मैं तो कबंध हूँ ।
चलते-चलते काठ हो गये पैर / काँप-काँप उठते हैं मलिन लोमश हाथ
ठस पड़ गया है रूखी त्वचा का स्पर्श-बोध / मुझे नहीं मिलेगा
क्या कोई दशरथनन्दन ? / त्रेता क्या सचमुच गुजर गया ?
मैं क्या भटकता रहूँगा आकल्प / पेट ही पेट है / मैं तो कबंध हूँ।"[3]

ऐसी कविताएँ इसलिए कि हमारा समाज विषमता के नागपाश में बँधा हुआ है उसमें निम्नवर्ग ही चारों तरफ से पिस रहा है, वे उन्हीं को बचाना चाहते हैं, उन्हें इस शोषण से निकालना चाहते हैं, उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा भी है– **"मैं सक्रिय हूँ। अन्य लेखक भी सिर्फ हाथ सेंकने के लिए ही खड़े न हों, बल्कि इस विशाल देश के करोड़ो शोषित-पीड़ित इन्सानों की जिन्दगी को बेहतर बनाने और एक नये मानवीय, शोषणविहीन समाज की रचना में अपनी सक्रिय साझेदारी निभाएँ।"**[4]

3. नागार्जुन के हिन्दी काव्य में दलित, आदिवासी एवं स्त्री समाज

(क) दलित वर्ग

नागार्जुन की सम्पूर्ण संवेदना अति पिछड़े समाज के लिए है। इसमें आर्थिक रूप से गरीब लोग तो हैं ही लेकिन हमारा दलित समाज दोहरे शोषण की शिकार है। सामाजिक रूप से वह अभी भी भद्र वर्ग की घृणा का आलम्बन है और आर्थिक रूप से सरकारी उपेक्षा का शिकार भी। जमाना बदल रहा है, लोकतंत्र और आजादी ने उनमें भी नवजागरण का शंखनाद कर दिया है किन्तु अभी भी सामन्ती मानसिकता वाले

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पृ. सं.-65-66*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-18*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-115*
4. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-130*

लोग मौजूद हैं जो अत्याचार करने से बाज नहीं आते फलतः टकराव होता है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में उन्हें न्याय नहीं मिलता, मिलती है जेल की सलाखें । कवि इस दोहरे शोषित समाज का हितैषी है और पूरी संवदेना के साथ संघर्ष में उसका साथी। इसलिए स्पष्ट कहते हैं—**" मैं दीन-दुखियों की दरिद्रता और उनके होने वाले शोषण से भीतर ही भीतर सुलगता रहता हूँ। जैसा महसूस करता हूँ वैसी ही एक-एक पंक्ति रचता हूँ।"**[1]

'कब होगी इनकी दिवाली' शीर्षक कविता में उन्होंने प्रश्न उठाया है -

"उसका मुक्तिवर्ष कब होगा ?
कब होगी उसकी दीवाली ?
चमकेगी उसके ललाट पर
कब ताजे कुंकुम की लाली ?
अरे, अरे, छै वर्ष हो गये,
उसे मिलेगा कब छुटकारा ?
वे बन्दी हैं वो 'नक्सल' है
मन का तगड़ा, तन का हारा ।
*** * * * * * * * ***
पता चला वे सात जने थे, / जाने कब से यहाँ पड़े थे ।
सातों के सातों 'नक्सल' थे / अपने हक के लिए लड़े थे ।
सातों के सातों चमार थे / अति दरिद्र थे, भूमिहीन थे
करते थे मेहनत मजदूरी / मालिक लोगों के अधीन थे
भूमि-हरण बर्दाश्त कर गये / चुप्पी साधी मार-पीट पर
गुस्सा तक भड़का, बहुओं की / इज्ज़त जब लूटी घसीट कर
फिर तो वे सातों के सातों / बने भेड़िया, बाघ हो गये
पुरखे तक धरती पर उतरे / जनम-जनम के पाप, धो गये
धरती ने आधार दिया है / सूरज ने दी है गरमाई
इनकी गति से पवन त्रस्त है / फुर्ती से बिजली शरमाई
लील सकेगा इन्हें न कोई / इनको कौन पचा पाएगा ?
इनकी प्रतिध्वनियों से कारा- / की दीवारें हिल-हिल जाएँ
आओ इन बंदी वीरों के / स्लोगन वे हम भी दुहराएँ...
फौलादी संकल्पों वाले / इनका युग, समझो, आया ही"[2]

अपनी इज्जत पर डाका डालने वाले भेड़ियों की हत्या करना किसी भी दृष्टिकोण से अनुचित नहीं है खास कर तब जब कानून अंधा हो, दंड विधान लाचार हो और न्याय मिलने की काई संभवना न हो। काश! हमारी रक्षा करने वाला कानून, उस व्यवस्था को बनाए रखने वाले लोग दोषियों को उचित सजा दे पाते तो ये सातों कैदी जेल में न सड़ते। जब तक समाज में दरिंदों की सही सजा नहीं मिलेगी इस तरह की घटना की पुनरावृति होती रहेगी। कवि ने उनसे हमदर्दी जताई है क्योंकि सदियों के पीड़ित अब जाग उठे हैं । उन्होंने उनकी चेतना के नए तेवर को भी रेखांकित किया है कि अब वे सबकुछ चुपचाप नहीं सहेंगे

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-46*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-91-94*

अपने हक के लिए संघर्ष करेंगे और अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए प्राण देने, प्राण लेने से नहीं हिचकेंगे। आज समाज, राजनीति और साहित्य में जो दलित शक्ति उभर कर सामने आई है कवि ने 25 वर्ष पहले उसकी सूचना साहित्य में दी है।

अपनी संवेदना, संघर्ष शक्ति एवं आधुनिक चेतना के कारण 'हरिजन गाथा' इनकी महत्त्वपूर्ण कविता है। एक ब्राह्मण कवि का सीधे-सीधे दलितों का समर्थन करना, उनके संघर्ष का साथी होना आजादी के बाद के समय में भी विरल है। निराला के बाद नागार्जुन ने ही खुलकर ऐसा किया है। तेरह दलितों को बिहार में जिंदा जला दिया सवर्ण समाज के बर्बर दरिंदों ने। नागार्जुन इस घटना से आहत हैं। इस घटना ने उनको अंदर तक हिलाकर रख दिया था खासकर आने वाले दिनों में इससे होने वाले प्रतिहिंसा की बात सोचकर । उन्होंने लिखा है -

"ऐसा तो कभी नहीं हुआ था । / तेरह के तेरह अभागे-/ अकिंचन मनुपुत्र
जिन्दा झोंक दिये गये हो / प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन सम्पन्न ऊँची जातियों वाले / सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा ! "[1]

कवि नें आग लगाने की तैयारी, मनोवृति और उस पूरी प्रक्रिया का चित्र कल्पना की आँखों से खींचा है। इस कांड में स्वर्ण समाज की अमानवीय, बर्बरता और पुलिस-प्रशासन की भागीदारी को भी रेखांकित किया है। जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तो कोई क्या कर सकता है? लेकिन इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता है-संघर्ष करने की अदम्य जिजीविषा । एक नवजात हरिजन शिशु का जन्म लेना और उसके माध्यम से कवि ने प्रतिशोध की अग्नि जलाए रखने का प्रयत्न किया है, बचाए रखने का प्रयास किया है। जब उसे संत गरीब को दिखाया जाता है तब वे भविष्यवाणी कर उठते हैं -

"अरे भगाओ इस बालक को / होगा यह भारी उत्पाती / जुलुम मिटाएँगे धरती से
इसके साथी और संघाती / यह उन सबका लीडर होगा / नाम छपेगा अखबारों में"
बड़े -बड़े मिलने आएँगे / लद लद कर मोटर-कारो में / खान-खोदने वाले सौ-सौ
*** * * * * * * * * ***

मजदूरों के बीच पलेगा / युग की आँखों में फौलादी / साँचे-सा यह वहीं ढलेगा।
आज भगाओ, अभी भगाओ / तुम लोगों को मोह न घेरे / होशियार, इस शिशु के पीछे
लगा रहे है गीदड़ फेरे
*** * * * * * * * * ***

जनबल धनबल सभी जुटेगा / हथियारों की कमी न होगी / लेकिन अपने लेखे इसको
हर्ष न होगा, गमी न होगी / सब के दुख में दुखी रहेगा / सबके सुख में सुख मानेगा
समझ-बूझ कर ही समता का / असली मुद्दा पहचानेगा / अरे देखना इसके डर से
थर-थर काँपेगे हत्यारे / चोर उचक्के गुंडे-डाकू / सभी फिरेंगे मारे-मारे
*** * * * * * * * * ***

श्याम सलोना यह अछूत शिशु / हम सबका उद्धार करेगा
आज यही सम्पूर्ण क्रांति का / बेड़ा सचमुच पार करेगा
*** * * * * * * * * ***

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-119

दिल के कहा-अरे यह बच्चा / सचमुच अवतारी वराह है
इसकी भावी लीलाओं का / सारी धरती चारागाह है
*** * * * * * * * * ***
दिल ने कहा - अरे यह बालक / निम्न वर्ग का नायक होगा
नई ऋचाओं का निर्माता / नये वेद का गायक होगा"[1]

नये शिशु को नए युग के भावी नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि की भविष्यदर्शी आँखों का यह कमाल है। कवि इसे प्रतिरोध की चिंगारी के रूप में प्रस्तुत कर रहा है जिसे वह जिलाए रखना चाहता है इसलिए उसे दूसरी जगह जाकर पालने-पोसने की सलाह देता है। बच्चे के अवतारी रूप को दिखाने की प्रशंसा करते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है–**"नागार्जुन की कविता 'हरिजन गाथा' पर अभी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। यह भारतीय साहित्य की प्रथम रचना है, जिसमें एक सामान्य हरिजन बच्चे को अवतार का दर्जा दिया गया है।"[2]** लेकिन प्रतिरोध की नई संधर्ष चेतना को जिलाए रखने का संकल्प उनकी काव्य दृष्टि का प्रस्थान बिन्दु है। यह विलाप की कविता नही प्रतिरोध और संघर्ष की कविता है क्योंकि शोषण का दृश्य यहीं से बदलेगा, समाज की तस्वीर यहीं से बदलेगी। जब तक इस तरह के दुष्कांड का प्रतिकार नहीं होगा, दलित समाज मुकाबला नहीं करेगा तब तक इसे रोकना संभव न होगा। इस माध्यम से वे सवर्ण समाज को भी आगाह कर देना चाहते हैं कि अभी सुधर जाएँ नहीं तो आगे जो हिंसात्मक संघर्ष होगा उसमें सवर्ण समाज का खात्मा हो जाएगा। हाँलाकि उस नए शिशु की प्रशंसा उन्होंने ब्राह्मणवादी मुहावरे में ही की है किन्तु संघर्ष चेतना प्रशंसनीय है। शोषण और अत्याचार, अमानवीयता और हिंसा का विरोध कवि का प्रथम कर्त्तव्य है। इसी संवेदना के तहत कवि की यह कविता एक महत्त्वपूर्ण कविता है।

(ख) आदिवासी

अति पिछड़े समाज में आदिवासी समाज सबसे अधिक सरकारी उपेक्षा और सामाजिक विरक्ति का शिकार हुआ है। शहर से दूर जंगलों में बसने वाला हमारा आदिवासी समाज अब तक विकास के आलोक से अछूता है न वहाँ शिक्षा की रौशनी फैल सकी, न उन्हें मुख्य धारा से जोड़ा गया। फलतः वे सामान्य समाज से अलग-थलग जा पड़े। जंगल ही उनका घर है और वहीं से वे अपनी सभी अवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं लेकिन सरकार की नीतियों ने उन्हे पंगु बना दिया। वे जंगल काट नहीं सकते, जंगल में कृषि योग्य भूमि है नहीं। कुल मिलाकर वे चारों तरफ से लाचार हो गए। आजादी और लोकतंत्र का उनके लिए कोई मतलब नहीं क्योंकि नई-नई विकास की योजनाओं का बहुत कम फायदा उन लोगों तक पहुँचा है। हिन्दी समाज और साहित्य को देखकर तो लगता है कि आदिवासी समाज का दुख-दर्द उनके केन्द्र में कभी रहा ही नहीं, न ही वे इस समाज के अंग हैं कभी-कभी इक्का-दुक्का साहित्यकारों ने एक-दो तस्वीर इस समाज की प्रस्तुत कर दी वही बहुत समझा गया, साहित्यकारों की इस उदासीनता का एक मात्र कारण है उस समाज तक उनकी पहुँच का न होना । इधर स्वंय जब से आदिवासी समाज, विकास से जुड़ा है तब से उसके दुख-दर्द की भी अभिव्यक्ति शुरू हुई है। नागार्जुन जैसे यात्री की भी पहुँच इस समाज तक कम है। फिर भी उन्होनें भरसक उस समाज के दुख-दर्द को अपनी कविता में वाणी दी है। इस संदर्भ में वे एक महत्त्वपूर्ण बड़े कवि हैं

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-119-128
2. नामवर सिंह (सं.), आलोचना, जुलाई-सितम्बर-1987, वर्ष-36, अंक-82, पृ. सं.-69

सरकार न उनलोगों के लिए रोजी-रोटी का इन्तजाम करती है और न शिक्षा-स्वास्थ्य-मनोरंजन का, केवल लोक कलाकार के रूप में उपयोग करती है। कवि हृदय की पूरी संवेदना इनको देता है।

झारखण्ड कवि की पड़ाव-भूमि रही है। यहाँ के आदिवासियों से कवि का निकट का सम्बन्ध है। आदिवासी कर्मठ, श्रमशील और गठीले बदन के होते हैं। कवि ने उनका वही रूप प्रस्तुत किया है–

"गोल-मटोल चेहरा / बादामी आँखें / तन है साँवला-सलोना
*** * * * * * * * ***
इसके, हाँ इसी के / परस की प्रतीक्षा में
पड़ी है झारखण्डी अहल्या पाषाणी / सिकोड़ कर अन्तर का कोना-कोना !
साथिन है बाँसुरी / मीत है मादल / नदी बहिना, जननी जंगल,
रग-रग में प्रवाहित है खनिज-धातु / होठों से झरते हैं मोती
श्रम-जल से ढलता है सोना
*** * * * * * * * ***
अब के इस विष्णु को / लोक लक्ष्मी का दूल्हा है होना"[1]

नागार्जुन की सोच भावात्मक नहीं है, वे जीवन के यथार्थ के बिना रह ही नहीं सकते हैं तभी तो कहते हैं कि झारखण्ड की पथरीली जमीन इनके मेहनत का इंतजार कर रही है और ये ही 'विष्णु' हैं। सौन्दर्य के साथ श्रम का मेल कवि को आकृष्ट करता है। इसलिए वे झारखण्ड के नव निर्माण के लिए इनका आह्वान करते हैं।

गर्मी बीत रही है। वर्षा का आगमन हो रहा है, बादलों का उमड़ना और मौसम का नया अहसास आदिवासियों के जीवन को रससिक्त कर जाता है, कवि ने इस भाव को इस कविता में पकड़ा है–

"निकलेंगे झोपड़ों से छोकरे उलंग / रहेगा जामुन का सा देह का रंग
सिखायेंगे झरनों को बहने का ढंग / ढलेंगें छन्द मादल-बाँसुरी के संग
छोटी-छोटी नदियाँ तक गायेंगी अभंग / लो, यह उमड़-उमड़ आया...."[2]

आदिवासी समाज का गहरा रिश्ता प्रकृति से है। जल, जंगल और जमीन ही उनके जीवन का मुख्य स्रोत है। कवि ने 'वह फिर जी उठी' कविता में एक पहाड़ी नदी की कहानी कही है। साथ-साथ उन्होंने कहीं-कहीं जिन मानवों की कहानी का उल्लेख किया है वह आदिवासी समाज ही है जो नदी की लहरों में जीता है। नदी उनके जीवन का अहम हिस्सा है, कवि ने लिखा है–

"लगाते हैं छलाँग छोकरे / बहते पानी के अन्दर
डुबोकर पैर, बैठी रहती हैं / देर-देर तक छोकरियाँ तट की शिलाओं पर।
सुनती है कहानियाँ / अलापती है कड़ियाँ लोक गीत की
डरता नहीं है कोई इस नदी से / प्यार ही प्यार मिलता है इसको"[3]

इस तरह कवि प्रकृति और आदिवासियों के अटूट सम्बन्ध को रेखांकित करता है जो उनके सहज और स्वाभाविक जीवन का अभिन्न अंग है। लेकिन कवि सिर्फ जीवन का राग-रंग, नृत्य मस्ती का ही चितेरा नहीं

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-113-114*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-115*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-117*

है। वह दूसरे समाज को झकझोरता भी है इस समाज के निकट आने के लिए। अज्ञेय जी ने 'जय जानकी यात्रा' नाम की सांस्कृतिक यात्रा की थी। कवि ने उन पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि जरा इन लोगों के बीच भी आओ। अपने आदर्श 'राम' के अतिरिक्त इनके महानायक 'बिरसा भगवान' की ओर भी रुख करो। कवि इसमें एक बात और समझाना चाहते हैं कि अपना आदर्श पौराणिक पात्र या काल्पनिक पात्र के बदले स्वतंत्रता की लड़ाई लड़नेवाले इतिहास पुरूष को बनाओ महानायक को उपेक्षित करके कभी सही दिशा में हम नहीं जा सकते। हमें सही नेतृत्व की ओर जाना चाहिए। कविता इस तरह है–

"क्या उससे भी कभी मिलोगे / मुण्डा जनजाति के उस 'पुरुषोत्तम' से?
सौ-सौ किंवदिन्तयों का नायक था वो / गिरिजन उसे कहते हैं 'बिरसा भगवान'
वे अनन्तकाल तक / उसकी उर्जा से 'वर्चस' / हासिल करते रहेंगे
क्या उधर भी पद यात्रा करोगे / क्या कभी उनके मध्य भी विचरण करोगे?
गुह निषाद-शवर .. / तनी हुई प्रत्यंचा ही / उनका जनेऊ होती है
तीर ही उनके 'हवन-काष्ठ' होते हैं, / क्या आप, सदल बल, इसी भांति
उनके मध्य भी विचरण करोगे?"[1]

यहाँ कवि ने बिरसा भगवान और उन के समाज को जो सम्मान दिया है वह तारीफ के काबिल है और पथ-प्रदर्शन के लिए भी जरूरी है। कवि ने एक कविता में झारखण्ड आन्दोलन की आवाज बखूबी उठाई है जिसमें शोषण के प्रतिकार का स्वर मुखर है। जैसे कवि उनकी वाणी बन गया हो–

"हमारी लंगोटी / हमें वापस दे दो।
*** * * * * * * ***
हमारी धरती हमें वापस दे दो / हमें झंडेवाली आजादी नहीं चाहिए
वापस लेके रहेंगे / हम अपने जंगल / अपनी पहाड़ियाँ / अपनी लाल मिट्टी
खबरदार ! खबरदार ! / हम भूले नहीं हैं तीर-धनुष चलाना .....
हमें नहीं चाहिए तुम्हारा पटना / नहीं चाहिए तुम्हारी नई दिल्ली / हम नहीं साफ करेंगे
पागलखाने का पखाना / "सफैया मजदूर नहीं हैं हम"
हम तो राजा यहाँ के थे / आइन्दा भी हमी मालिक होंगे यहाँ के
समूचा झारखण्ड हमारा था - / हमारा होगा / हाँ-हाँ, हमारा होगा
हमारा तब तो खुदमुख्तार राज होगा / मगर अभी तो / हमारी लंगोटी वापस लाओ।
*** * * * * * * * ***
अपनी लंगोटी वापस लेनी है / अपना नमक-भात, अपना पानी
अपनी धरती, अपना जंगल / अपना आसमान
सभी कुछ वापस लेके रहेंगे / बस अभी तो हमारी लंगोटी दे दो।"[2]

बाहर के लोगों ने जिस तरह भोले-भाले झारखण्डी लोगों को लूटा वह एक अलग ही कहानी है लेकिन सरकार ने भी उनके जमीन पर अपना कब्जा जमाया और विस्थापित आदिवासियों को न सही मुआवजा मिला न नौकरी। फलस्वरूप उनके क्रोध का ज्वालामुखी फूटना था और इसका नतीजा हुआ झारखण्ड की माँग। यह कविता उन्हीं के समर्थन में कवि का संवेदनात्मक वोट है। कवि ने व्यापक समाज तक उनकी माँग को पहुँचाकर उनके अधिकार के लिए आधार भूमि बनाने का काम किया है।

---

1. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-55
2. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-17-18

कवि ने अपना कवि धर्म पूरा किया है।

कवि ने आदिवासियों के संघर्ष, ललकार, चुनौती को भी अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी है। 'दरख्तों की सघन बगीची में' कविता महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें सताए हुए आदिवासियों के जागरण की हुँकार है। अब वे लामबन्द होकर संघर्ष करने के लिए तैयार हैं—व्यवस्था और शोषक समाज से इस कविता में कवि ने लिखा है—

"तीसरा वक्ता एक अधेड़ आदिवासी था"
उसने उठकर आहिस्ते से कहा / हम नाहक किसी की जान नहीं लेंगे
मगर अब आगे चुप नहीं बैठेंगे -/ देखो न / कारखाना के नाम पर
पिछले दस-पन्द्रह साल के अन्दर / हमारे सारे जंगल हम से
छीन लिए हैं उन लोगों ने / सफेद पोश बाबू लोगों ने
कहीं का न रहने दिया हमें / आज हम पूरी तरह उनके गुलाम हैं"[1]

यह बोध आँखें खोलने वाला है और यही संघर्ष की प्रेरणा देता है -

"इतिहास वो होगा, जो हम रच रहे हैं
हमारी तोड़-फोड़, मार-काट
अपना जंगल- अपनी जमीन फिर से
हासिल करने के लिए हमारी यह जदोजिहाद
हमारा यह नया-नया नक्शा
नयी-नयी भूमिति, नया-नया भूगोल
हमारी अपनी नयी हदबंदिया .....
बाहर का कोई इधर बढ़ेगा
तो हम उसे जिन्दा वापस जाने देंगे क्या ?
जिन्दाबाद हमारे तीर कमान
जिन्दाबाद हम !
जिन्दाबाद हमारे जंगल
जिन्दाबाद हमारी नदियाँ"[2]

इस तरह हम देखते हैं कि कवि को आदिवासी समाज की पूरी चिन्ता है। वे उन्हें पूरा अधिकार देने के हिमायती हैं, उनके विकास की कामना करते हुए वे उनके सौन्दर्य, संघर्ष और श्रम के गायक हैं।

(ग) स्त्री समाज

स्त्री हमारे समाज का आधा और अहम हिस्सा है उनके सर्वांगीण विकास के बिना सारा विकास अधूरा है। लेकिन यही स्त्री समाज हर जगह चौतरफा शोषण की शिकार है जिसे देख कर कवि दुखी है। वे घर-बाहर, परिवार—समाज, पुरूषवादी व्यवस्था और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में हर स्थान पर दबाई-कुचली

---

1. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-41*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-40*

जीवन एवं कर्तव्य का पालन कर सके नैतिक दबाव या मानसिक दबाव में नहीं। तभी आत्मा और व्यक्तित्व का पुष्प खिलेगा और व्यक्ति का मन सुगंध से महक उठेगा।

दूसरी कविता 'चंदना' है महावीर के समय का कथानक उठाया है कवि ने इस कविता में। प्राचीन काल में हो रही स्त्री की दुर्दशा को दिखाया है लेकिन आज भी स्त्री उस दर्दशा से मुक्त नहीं हुई यही इसकी प्रासंगिकता है। सबसे पहला मुद्दा है युद्ध में स्त्री का सर्वनाश, युद्ध के संकटकाल में सैनिकों द्वारा स्त्री को अपने कब्जें में कर लेना, उसे बाजार में वस्तु की तरह बेच देना और पूँजीवादी व्यवस्था के सेठों द्वार उसे खरीद लेना। लेकिन सेठ अच्छे स्वभाव का है। वह कुमारी बसुमती (चन्दना) को अपने घर लाता है। यहाँ एक बात सामने आती है कि पुरूष तो पुरूष, स्त्री भी स्त्री के दुख-दर्द से निरपेक्ष है, सेठानी ईर्ष्या वश चन्दना को कालकोठरी में डाल देती है, कवि ने लिखा है–

"हाय! हाय ! / कहाँ की कलमुँही मेरे सिर चढ़ गई
अपनो को खा-पका / हमारी गृहस्थी पर / आ गई छुच्छी आग बरसाने
छीन लिया इसने सब / क्या मैं करूँगी अब / हाय ! हाय !
छाती पर लिटा कर पिलाया है दूध अरे / मैंने इस नागिन को अपने ही हाथों
मइया री मइया! / अच्छा..... / करती हूँ प्रतिकार / खतम कर दूँगी
पकड़ कर राँड़ को / रहेगा न बाँस और न बजेगी न बाँसुरी...."[1]

काश ! औरतें इतनी ईष्यालू नहीं होती, इतनी क्रूर नहीं होती तो शोषण आधा समाप्त हो चुका होता। चन्दना के प्रति सेठ की सहानुभूति ने उसे इस आश्रय में भी काल-कोठरी की सजा दिला दी। वह सेठानी के आदेश से प्रताड़ित होकर तलघर में डाल दी गई, सेठ भी कुछ न कर सका। इसका अंत अजीब है, जैन महामुनि की शरण में जाने का, इसके पहले कवि ने कौशाम्बी के भद्रजनों पर कड़ा व्यंग्य किया है–

"हाय ! हाय साधु जन / अन्न जल, साथ-साथ देखते हैं कुल भी
रखते हैं भेद-भाव / सवर्ण-असवर्ण में / नर और नारी में
प्रभु और दास में / धिक-धिक तथापि वे / शान्ति और समता के वाहन कहाते हैं।"[2]

जैनमुनि भिक्षा मांगने निकलते हैं और चन्दना उन्हें भिक्षा देती है, एक चमत्कार होता है वह मुक्त हो जाती है लेकिन अंततः वह उन्हीं की शरण में जाकर अपने आप को धन्य मानती है ।इस तरह हम देखते हैं कि राजमहल से काल कोठरी तक होती हुई वह बालिका जैन मठ में पहुँच जाती है। इसमें पूरी समाज व्यवस्था की वह कठपुतली बनी हुई है, उसका भाग्य जहाँ ले जाय। एक औरत की यही दुर्दशा होनी है इस व्यवस्था में, उसकी अपनी मर्ज़ी कहीं नहीं है। आज भी गरीब परिवार की लड़कियाँ क्रय-विक्रय की शिकार होती हैं और आए दिन अरब देशों में भेजी जाती हैं माँ-बाप ही उन्हें चाँदी के चन्द टुकड़ों के लिए बेच देते हैं। पूजींवादी व्यवस्था में औरत भोग की वस्तु है और उसका शोषण तब तक होता रहेगा जब तक वह पूरी तरह से सक्षम नहीं हो जाती है।

"युगधारा" संग्रह में ही गौतम ऋषि की एत्नी अहल्या पर एक कविता है 'पाषाणी'। इस कविता को इस युग में पुनः प्रस्तुत करने में कवि का क्या अर्थ है, मेरी समझ में अर्थ है : (1) पुरुषवादी शोषण को प्रकट करना (2) स्त्री की दुर्दशा का चित्रण करना। (3) राम की तरह स्त्री का आदर करते हुए उद्धार करना। गौतम ऋषि वाली कहानी से हमें कई बातें मालूम होती हैं–(1) औरत बाहर-भीतर दोनों जगह पुरूष के शोषण की शिकार होती है। बाहर के पुरूष (इन्द्र) की कामुकता का वह शिकार होती है और स्वंय अन्दर

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.23-24*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-27*

अपने पति गौतम ऋषि द्वारा वह शक एवं शोषण की शिकार होती है। हर तरह से उसी का दोष माना जाता है। विद्वान पति द्वारा न समझे जाने का दंश अलग है, वेश्या के इल्जाम लगाए जाने का दोष अलग है। आज भी हमारे समाज में औरत ही पुरूषवादी मनोवृत्ति के शोषणतंत्र में पिस रही है। अहिल्या की कथा अत्यंत मार्मिक है कवि ने उसी के मुख से कहानी कही है–

"धर कर पति का आकृति-रूप-स्वभाव / आदि आवे कोई पत्नी के पास
कहे / "प्रियतमे, खरतर स्मरशरविद्ध / जर्जर तन उदभ्रान्त चित्त है आज
नहीं समाहित हो पाता हूँ ओह । / स्मितमुखि, मेरा ताप करो कुछ शांत .....
और, वही फिर कुछ क्षण के उपरांत / आकर कहे कि "निर्लज्जे, धिक्कार !"
छोड़ मुझे रमती सुरपति के संग !! / धारण करके वह मेरा ही रूप
आता है नित कुलटे तेरे पास । / रखकर पति की छाती पर जो लात
लेती है पर संगति का आस्वाद / उससे तो वेश्या ही है उत्कृष्ट...."
कहो तात, फिर इसमें किसका दोष ? / सह न सकी मैं मुनि का यह आक्षेप,
लगा टूटने रह-रह कोंढ़- करेज / फिर भी किया नहीं मैंने प्रतिवाद
रोष गरल की भांति हो गया व्याप्त / पुरूषों पर थी मुझको घृणा अपार !"[1]

राम ने उसका उद्धार किया, उनके सामने वादा किया किन्तु क्या राम ने स्वयं सीता की अग्निपरीक्षा लेकर उसपर संदेह नहीं किया, आदर्श ओर मर्यादा की आड़ में गर्भवती सीता को घर से निकाल कर जंगल में नहीं छोड़ आए। जब हमारे आदर्श मर्यादा पुरूषोत्तम राम का यह हाल है तो आम जनता की क्या बात की जाए। नागार्जुन ने स्त्री शोषण के कई प्रसंग को अपनी कविता में स्थान दिया है। 'शूर्पनखा' 'अहल्या' 'रेणुका' और 'शकुन्तला' नामक उनकी अन्य चार कविताएँ हैं जिनमें स्त्री शोषण और पुरुष अत्याचार की अलग-अलग कहानी करुण एवं व्यंग्यपूर्ण ढंग से उठाई गई है। 'अहल्या' कविता में उन्होंने दोनों पुरुष को 'समान आकृति वाले' कहकर सम्बोधित किया है अर्थात दोनों 'अत्याचार करने में समान' थे। उनके बीच अहल्या पथरा गई। 'शूर्पनखा' के प्रति भी कवि की सहानुभूति है कि अपने भाई और वनवासियों के बीच वह शहीद हो गई। 'रेणुका' और 'शकुन्तला' की कहानी भी पुरुष शोषण का पर्दाफाश करती है। छोटी सी मानवीय कमजोरी के कारण रेणुका का गला काट लेना किसी भी नियम से न्याय की परिभाषा में नहीं आता है। कवि ने बड़े आलोचनात्मक ढंग से लिखा है–

"शक्की और सनकी पतिदेव...../ पितृ भक्त सहज क्रोधी पुत्रः.....
शहीद हुई रेणुका बेचारी / सच-सच बोल के ! ....."[2]

शास्त्रों, पुराणों के ज्ञाता ऋषि मुनियों के हृदय में स्त्री के लिए इतना सम्मान है तो अपढ़-गँवार ग्रामीणों से क्या उम्मीद की जा सकती है। राजा दुष्यंत आर्यावर्त के महान प्रतापी राजा थे किन्तु एक भोली-भाली सुन्दर कन्या को प्रेम के जाल में फँसा, उन्होंने भी उसे कितना तड़पाया। शकुन्तला के विश्वास का उन्होंने कैसा शोषण किया, कवि ने दुष्यंत को 'शोहदे' की उपाधि दी है–

"अंगूठी / सोने की अंगूठी / क्या हुआ लेकर सोने की अंगूठी–

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-39-40*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-63*

प्रीति का प्रतीक ! / मूर्ख थी शकुन्तला (महर्षि की पालतू लड़की)
शोहदे की अंगूठी पर किया था भरोसा ।"[1]

शकुन्तला के लिए कवि की संवेदना है किन्तु पूरी कविता नए अंदाज में दुष्यंत के शोषण पर एक कड़ी टिप्पणी है। कवि नारी के प्रेम, उसके विश्वास, उसकी उदारता, उसकी क्षमाशीलता के बदले पुरुष की क्रूरता को प्रदर्शित कर पुरुषों को सीख और औरतों को प्रतिकार करने की प्रेरणा देता है जिससे स्वस्थ समाज की पृष्ठभूमि तैयार हो।

स्त्री वर्ग के शोषण पर लिखी गई कविताओं में तालाब की मछलियाँ एक महत्त्वपूर्ण कविता है। नागार्जुन की कविताओं में ही नहीं आधुनिक हिन्दी कविता में भी यह एक महत्त्वपूर्ण कविता है। वड़े नाटकीय ढंग से कवि ने भुनी जाती हुई मछलियों के माध्यम से सदियों से सताई जाती हुई नारी जाति के शोषण का पर्दाफाश किया है। तीन-तीन शादी करने वाले बूढ़े पति पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता, कोई नैतिकता इस समाज को शर्मिन्दा नहीं करती कि बेटी से भी छोटी पत्नी के साथ बूढ़ा पति सुहागरात मनाता है, यह सब लड़की की मर्जी से नहीं गरीबी और मजबूरी के दबाव में होता है। कितना क्रूर है हमारा यह समाज और उसकी व्यवस्था जिसमें औरत की कोई इज्जत नहीं, कोई सुरक्षा नहीं। जिस समाज में औरत को जुए में हारा जाता हो, भरी सभा में नग्न किया जाता हो उस समाज के पतन को कब तक रोका जा सकता है। कवि ने बड़े तुलनात्मक ढंग से इस कविता में लिखा है–

"हम भी मछली, तुम भी मछली / दोनों ही उपभोग वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी, हम दोनों को /अनुपम बतलाते हैं
वनिताधर पल्लव में किंवा / जंबीरी रस सिक्त मत्स्यखंडों में
कहीं-नहीं अन्यत्र / इन्हीं में / मिलती आई है अमृत द्रव की अशेष परितृप्ति
उन लोगों को / इसलिए तो हम तुम दोनों / युग-युग से पाती आई हैं
विपुल प्रशंसा / रसिकों की गोष्ठी में बहुशः / इसीलिए तो
हमें इन्होंने कैद कर लिया तालाबों में / इसीलिए तो
तुम्हें इन्होंने कैद कर लिया / सात-सात डेवढ़ियोंवाली हवेलियों में
सुविधा और सामर्थ्य मुताबिक / अपनी-अपनी रुचि के ही अनुसार वे सभी
रसना-रति के लेलिहान उस अग्निकुंड में / भून-भूनकर हमें खा गए .....
*** * * * * * * * ***
किन्तु आज तो / कोशी की धारा ने आकर तोड़ दिया है। बाँध
आज आ गई, सखि हम बाहर / एक एक कर
*** * * * * * * * ***
आज या कि कल / तुम भी तो निकलोगी बाहर / हवेलियों से, डेवढ़ियों से
फिर जनपद के खंडनरक ये मिट जाएँगे। / शब्दकोष को छोड़ कहीं भी
नहीं 'असूर्यम्पश्या' का अस्तित्व रहेगा। / 'औरतदारी' रह न जाएगी
धन्य हमारा मरण आज सखि / धन्य हमारी हत्या / मिला मुक्ति का स्वाद"[2]

नागार्जुन ने कितनी गहराई से घरों में हो रहे शोषण को अभिव्यक्त किया है इस कविता के बारे में डॉ. मैनेजर पाण्डेय की टिप्पणी ठीक ही है "उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'तालाब की मछलियाँ।' यह कविता एक प्रकार से भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति का रूपक भी जिसके अनुसार सामन्ती

---

1. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-64
2. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-45-46

समाज के तालाब में स्त्रियाँ मछलियों की तरह हैं। इस कविता में नागार्जुन स्त्री की स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं। चाहे वह जिस प्रक्रिया से और जिस कीमत पर प्राप्त हो।"[1]

कई कविताओं में कवि ने सहज नारी सौन्दर्य का चित्रण किया है, उस सौन्दर्य बोध में नए बिम्बों की लड़ी लगी है, नए अनछुए अनुभवों की अभिव्यक्ति हुई है और उन्होंने यथार्थवादी ढंग से नारी सौन्दर्य को उकेरा है। कवि की विलक्षणता यही है कि वे असुन्दर घटना में भी सौन्दर्य देख लेते हैं। एक औरत गालियों की बौछार किए जा रही है। कवि उन गालियों को 'भौरे' की उपाधि देता है और होठों को कमल की पंखुडियों के रूपक के रूप में प्रस्तुत करता है–

"हिलते रहे होठ / देर तक हिलते ही रह गये
हिलती रही देर तक / अर्धस्फुट कमल की फीकी पंखड़ियाँ "[2]

यह नया सौन्दर्य बोध सिर्फ नागार्जुन में ही है। नागार्जुन सहज मानवीय सम्बन्धों के कवि हैं। उनकी कविताओं में गरिमापूर्ण आत्मीय प्रेम की उष्मा को महसूस किया जा सकता है, किसी का प्रेम भरा स्पर्श कवि को प्रेमाभिभूत कर जाता है–

"झुकी पीठ को मिला। / किसी हथेली का स्पर्श / तन गई रीढ़
*** * * * * * * ***
कौंधी कहीं चितवन / रंग गये कहीं किसी के होठ
निगाहों के जरिये जादू घुसा अंदर / तन गई रीढ़"[3]

इस वर्णन में न कहीं कल्पना है, न भावुकता, न कामुकता। बड़े यथार्थवादी ढंग से कवि ने तेल लगे हुए बालों से निकले सुगन्ध को "रग-रग में बिजली" दौड़ाने वाला कहा है। आधुनिक युग में इस तरह का वर्णन अनूठा है। 'यह तुम थीं' कविता तो और भी अनूठी है। जैसे फिल्म का शॉट हो। एक पल में सौन्दर्य की जो छाप हृदय पर अंकित हो जाती है। उसका बड़ा अच्छा प्रस्तुतिकरण किया है नागार्जुन ने–

"कर गई चाक / तिमिर का सीना / जोत की फाँक / यह तुम थीं"[4]

अंधेरे में तुम प्रकाश का एक टुकड़ा हो, कवि ने ऐसा कहकर औरत के नए सौन्दर्य को प्रस्तुत किया है। उनके अकुंठ सौंदर्य-बोध पर टिप्पणी करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है–**"प्रकृति की तरह ही नारी-सौंदर्य को भी नागार्जुन उसी खुली दृष्टि से देखते हैं और वैसे ही अकुंठ भाव से उसका वर्णन भी करते हैं।"[5]** 'क्या अजीब नेचर पाया है' कविता में कवि ने एक हँसनेवाली लड़की को चित्रित किया है। अपने अन्दर के दर्द को दिल में ही दफन करके सदा मुस्कराते रहने वाली लड़की की बहादुरी पर कवि ने लिखा है–

"कदम कदम पर मुसकाती है / बात-बात पर हँस देती है।
दिल का दर्द कभी नहीं जाहिर करती है / सच बतलाना कभी उसास नहीं भरती है?
मुझको तो लगता है, तूने बहुत-बहुत सा जहर पिया है।
धीरे-धीरे सारा ही विष पचा लिया है। / गालों पर पड़ गई प्यार की दो चपतें तो
लगा दिया छत-फाड़ ठहाका । / क्या अजीब नेचर पाया है।

---

1. *डॉ. जयनारायण (सं.), कल के लिए, नागार्जुन अंक-1, पृ. सं.-33-34*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोवाली, पृ. सं.-18*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-19*
4. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-20*
5. *नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-8*

कैसी अद्‌भुत है यह लड़की।"[1]

बहादुरी से जीवन की समस्याओं का सामना करने वाली लड़की पर कवि ने कविता लिखी है। प्रोत्साहित करने वाली प्रवृत्ति कवि में है।

नागार्जुन सच्चे गृहस्थ हैं। यायावर होने के बावजूद उनका मन अपनी पत्नी और परिवार की ओर लगा रहता है। 'सिन्दूर तिलकित भाल' में कवि ने सिन्दूर लगे हुए एक ग्रामीण स्त्री को जिस गहरे प्रेम से याद किया है वह सबके लिए सबक है। भारतीय नारी (हिन्दू नारी) के लिए 'सिन्दूर' महत्त्वपूर्ण चीज है। जो उसके सुहाग की निशानी है, लेकिन आधुनिक चेतना के प्रगतिशील कवि को भी जब पत्नी की याद आती है तब उसका 'सिन्दूर तिलकित भाल' याद आना, बड़ा रोमांचक लगता है। सांस्कृतिक संकेत हमारे जातीय जीवन के श्रृंगार होते हैं। हमारा मानसिक संस्कार कहीं न कहीं उससे जुड़ा होता है। कवि को अपनी पत्नी का वही रूप याद आना 'दुल्हन' बनी अपनी पत्नी की याद आने जैसा है जो इन्तजार में चौखट पर खड़ी है। कितना उल्लास है इस इन्तजार में, कितना दर्द है इस प्रवास में - कवि के मन में भी, उनकी पत्नी के मन में भी–

"घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल।
याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल!"[2]

यायावर कवि को कई जगह कई स्त्रियों से स्नहे मिला उनमें 'पुजारिन भाभी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नागार्जुन का भी स्नेह उनपर काफी है, लेकिन बड़े संकेत में उन्होंने इस प्रेम को अभिव्यक्त किया है। जब मौसम बदलता है आकाश में काले-काले बादल छा जाते हैं तब पुजारिन भाभी अपने इस रसिया देवर को छेड़ने से बाज नहीं आतीं–

"बिजनी की मूँठ से खुजाकर पीठ / पुजारिन भाभी बोली / आँधी आएगी
बादलों को कहाँ से कहाँ उड़ा ले जाएगी / तुम्हारे तो मजे ही मजे रहेंगे
धार के उस पार / झूसी की तरफ / रेती पर मारोगे टहलान
फड़कते रहेंगे होठ / चमकती रहेंगी आँखें
*** * * * * * * ***

तुम्हारे तो भई मजे ही मजे रहेंगे / ओ मेरे रसिया देवर !
और मुझे आ गई हँसी / कूक उठे मोर / और मेरा रोआँ-रोआँ हो उठा कंटकित
टर्राए मेढ़क / और मेरा दिल धड़कने लगा जोरों से
*** * * * * * * ***

झुक आए कजरारे मेघ / और अधिक / और अधिक / और अधिक"[3]

देवर भाभी के इस छेड़-छाड़ में मानवीय स्नेह की स्निग्धता और अपनेपन का मिठास है। लेकिन कवि ने औरतों में सिर्फ अच्छाई ही अच्छाई नहीं देखी, वे उनकी गलत प्रवृत्तियों की ओर भी दृष्टिपात करते हैं और उनपर व्यंग्य करते हैं, उनकी आलोचना करते हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियों से यह उम्मीद की जाती है कि वे आजादी और लोकतंत्र का मतलब समझती होंगी, चुनाव का महत्त्व जानती होंगी, लेकिन वही लड़कियाँ जब नख के गन्दा हो जाने की वजह से वोट नहीं डालती हैं तब कवि का व्यंग्य फूट पड़ता है, उनकी समझदारी की बात सोच कर। आभिजात्य वर्ग की पढ़ी लिखी लड़कियों का जो चित्रण कवि ने किया

---

1. नागार्जुन, सतरंगे पंखोवाली, पृ. सं.-27-28
2. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-48
3. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-39-40

है वह बड़ा रोचक और व्यंग्यपूर्ण है–

"सामने आकर / रुक गई चमचमाती कार / बाहर निकली वासकसज्जा युवतियाँ
चमक उठी गुलाबी धूप में तन की चंपई कांति
तिकोने नाखूनों वाली उँगलियाँ / सुर्ख नेलपालिश
*** * * * * * * ***

आ रहा था डालकर वोट एक अधेड़
उँगली की जड़ में चमक रहा था काला ताजा निशान
ठमक गए सहसा बेचारियों के पैर / हाय इतने सुंदर हाथ हो जाएँगे दागी।
भड़क उठा परिमार्जित रुचि-बोध / कि कौन लगवाए काला निशान
कौन ले बैलट पेपर, मतदान कौन करे !
क्षणभर ठिठक कर नई दिल्ली की तीनों परियाँ
मुड़ गईं सहसा वापस / स्टार्ट हुई कार, लोग लगे हँसने
बात थी जरा- सी बस काले निशान की / तीन वोट रह गए फैशन के नाम पर!"[1]

फैशनपरस्त लड़कियों के लिए चुनाव से अधिक महत्त्वपूर्ण उनके नख हैं। इससे अधिक दुर्भाग्य की क्या बात होगी, देशभक्त क्रांतिकारियों ने आजादी के लिए सर कटा दिया और एक ये लड़कियाँ है जो नख भी नहीं गंदा करना चाहती है। मैडम भीखा जी कामा, सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी और सुभद्रा कुमारी चौहान जैसी देशभक्त नारियों और इन नारियों में कितना फर्क है!

'प्लीज एक्सक्यूज मी .....' कविता में पढ़ी लिखी महिला के बचकाने साहित्य बोध पर कवि ने व्यंग्य किया है। कुछ महिलाओं में कवि और कविता के प्रति सम्मान का भाव नहीं होता, वे उन्हें मदारी समझती हैं कि कहीं भी वे उन्हें अपनी कला के प्रदर्शन के लिए मजबूर कर देंगी। कविता की बुनावट बड़ी महीन है लेकिन व्यंग्य की घार उतनी ही तेज है। 'अनुदान' कविता में भी एक चालाक स्त्री का व्यंग्य चित्र खींचा गया है जो चालाकी से अपने 'महिला मंगल समाज' के लिए चंदा जुटा लेती है–

"माननीय खाद्यमंत्री महोदय को / अकाल-ग्रस्त क्षेत्र के सेठों ने दी है थैली
एक लाख ग्यारह हजार एक सौ एक की .....
*** * * * * * * ***

तत्क्षण ही मंत्री ने / रकम यह 'महिला मंगल समाज' के हिसाब में जाएगी
श्रीमती मंजुमुखी देवी / एम. एल. ए. / ढलती जवानी, कनकयष्टि गात्र
म. मं. समाज की प्रमुख ट्रस्टी / करके शिष्ट संकोच का अभिनय
नचाती सी दाहिना पाणिपल्लव / उठा लिया चैक वह आपने
डाल लिया शांतिनिकेतनी पर्स में / हो-होकर गुरू गंभीर
उतरा रही है अब आंतरिक हर्ष में, "[2]

औरत की अपार अभिनय क्षमता का कवि कायल है लेकिन जब कोई और नकली अभिनय करे तब कवि तिलमिला उठता है। अभिनेत्री की चालाकी कवि पकड़ लेता है तभी तो व्यंग्य करते हुए कविता लिखता है 'शाबाश महान अभिनेत्री'। होली के समय जब अभिनेत्री के सैकड़ो प्रशंसक उससे मिलने, होली खेलने जाते हैं तो वह बड़ा अच्छा बहाना करती है कि वह असम के दुख से इतनी दुखी हैं कि होली में उनका

---

1. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-36-37*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-56*

साथ नहीं दे सकती । कवि इस झूठी संवेदना को पकड़ लेता है और व्यंग्य करता है -

"और उस रोज / आपका दुख का यह अभिनय
सचमुच अनोखा था / वैसा अपूर्व मंचन / शायद ही कभी किसी ने देखा हो
दुख की उस एक्टिंग के क्या कहने / शाबाश, महान अभिनेत्री"[1]

कवि कभी -कभी दो औरतों को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं उनमें शोषित के प्रति संवेदना होती है और शोषक के प्रति व्यंग्य। इंदिरा गाँधी के शासनकाल में एक आम औरत को बी. एस. एफ. के जवान की गोली लगती है उस पर कवि ने दोनों को कविता का विषय बनाया है, वे लिखते हैं–

"हाय राम, तुम तो गंगा नहाकर वापस लौट रही थीं।
कंधे पर गीली धोती थी, हाथ में गंगाजल वाला लोटा था,
*** * * * * * * ***
हाय राम, जाँघ में ही गोली लगनी थी तुम्हारे।
जिसके इशारे पर नाच रहे हैं हकूमत के चक्के / वो भी एक औरत है"[2]

ऐसे ही आम आदमी के पक्ष में कवि का पूरा कवि-कर्म है।

प्राकृतिक और आर्थिक रूप से लाचार 'जया' के प्रति भी कवि की सहानुभूति प्रत्यक्ष है। शारीरिक रूप से अक्षम जया बहरी भी है गूँगी भी है किन्तु बहुत प्यारी और चंचल है, कवि उसके लिए चिंतित है। उसके गरीब माता-पिता उसका सही इलाज नहीं करा सकते इस पर वे अफसोस जाहिर करते हैं। यह कविता करुणा का सुन्दर शब्द चित्र है–

"चार-साल की चपल-चतुर वह बहरी गूँगी
कितनी सुंदर, नयनाभिराम / उस लड़की का है जया नाम
*** * * * * * * ***
बन सकती है वह चित्रकार / ले सकती है वह नाच सीख
जिससे न किसी पर पड़े भार / जिससे न माँगनी पड़े भीख
लेकिन यह तो बस सपना है / चलता भी कुछ बस अपना है ! "[3]

कवि के हृदय में सबके लिए जगह है, भाग्य और भगवान (प्रकृति) के सताए हुए के लिए भी और मनुष्य के द्वारा सताए हुए के लिए भी ! कवि न सिर्फ विडम्बनाओं-विसंगतियों पर व्यंग्य करता है वरन् जब औरतें व्यंग्य करती हैं तो उसको भी चित्रित करता है। चुनाव में वोट पैसे से खरीदे जाते हैं। इस प्रवृत्ति पर एक ग्रामीण बुढ़िया के मासूम प्रश्न से जो व्यंग्य उत्पन्न हुआ है कवि ने उसको बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है–

"बाबू, क्या पाँच साल बाद / फिर वही खेल / खेलने आए हो आप लोग?
दिल्ली से आए हो? / चाँदी का गोल-गोल सिक्का / बिछाकार यह खेल खेलते हैं
इस बार भी क्या वही राजा बनेगा? / क्या वही दरबारी होंगे ।
सच-सच बतलाना
तुमको केत्ता रूपया मिला है ?

---

1. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !, पृ. सं.-18-19*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-9*
3. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-108-109*

कुछ हमको भी दिलवाना भइया। "[1]

अवध प्रान्त की एक अपढ़ ग्रामीण बुढ़िया हमारे लोक तंन्त्र के पैसेवाली चुनावी राजनीति को कितने सही ढंग से मूल्यांकित करती है। यह उसके मासूम प्रश्न और पैसे माँगने की अद्‌भुत कला से प्रकट होता है।

तानाशाह जिया उल हक पर कवि ने चिढ़ाते हुए व्यंग्य किया है वह बेनजीर के गर्भवती होने का फायदा उठाना चाहता था, इसलिए ऐसे समय में चुनाव रखा था जब वह गर्भभार से चुनाव में खुलकर हिस्सा न ले सके लेकिन प्रकृति को कुछ और मंजूर ही था–

"खुशी के मारे / नुसरत की अवाज / खूब साफ नहीं थी .....
आखिर आज वो नानी थी ...../ बेनजीर ने उस दिन अस्पताल में
बच्चा जना था- / सात पाउंड का है / माँ पर गया है ....."[2]

ऐसा लगता है यह बच्चा जिया के तानाशाही चेहरे पर एक तमाचा है लेकिन जिया खुद दुर्घटना का शिकार हो गया और खत्म हो गया। कविता में आगे वे संकेत देते हैं–

"जिया जिन्दा होता तो / जच्चे-बच्चे की खैर नहीं थी
तभी तो ...../ पाकिस्तान में जनरल इलेक्शन के लिए
जिया ने 16 नवम्बर 88 का वक्त / मुकर्रर किया था।"[3]

जिया ने जैसा किया वैसा पाया, प्रकृति को शायद कुछ और ही मंजूर था कवि ने इसी बात को जाहिर करने के लिए बच्चे के आने की खुशखबरी दी है।

स्त्री-वर्ग पर लिखी गई अन्य कविताएँ विभिन्न भाव बोधों पर केन्द्रित हैं। उनमें हल्की- फुल्की बात को कवि ने सरल-सीधे अंदाज में उठाया है। "मेत्तोक् मेत्तोक् मेत्तोक" कविता में एक मध्यवयसी महिला का जिक्र किया है कवि ने जो 'मेत्तोक्' का मतलब बताती है। फूल की तरह दिखने वाली, हँसने वाली युवती को कवि ने ठीक ही नाम दिया 'मेत्तोक्' । दिल्ली में एक नुक्कड़ पर कोई लड़की एक मोमबत्ती जला गई है कवि जिसका उल्लेख करते हैं–

"नियोन-लाइट के प्रकाश के अन्दर / छोटी सी यह मोमबत्ती
दे रही है अपना विनम्र योगदान / करीब के फ्लैटों में रहनेवाली
कोई संस्कारवती 'कान्वेंट गर्ल' / अपने सहज हुलास में
यहाँ जमा गयी है / मोम वाली लघु दीपिका
इस वक्त यहाँ कोई नहीं है / मैं देर तक इसे देखता रहूँगा / इस नुक्कड़ पर!"[4]

चौराहे पर प्रकाश करनेवाली लड़की की प्रशंसा कवि ने इसलिए की है कि वह चारों ओर प्रकाश फैलाने का कार्य करती है। कवि को उसका यह अंदाज पसंद आता है।

सुन्दरता की एक झलक पर ही कवि फिदा है 'ना सही' कविता में वे लिखते हैं–

"गोरी कलाइयों पर / हरी-हरी चूड़ियाँ ...../ पूरा मुखमण्डल
बैंगनी घूँघट की ओट में / और कुछ दिखाई ना भी पड़े / ना सही
अपना क्या जाता है / अपना क्या आता है ....."[5]

---

1. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-24-25*
2. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-95*
3. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-95*
4. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-25*
5. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-50*

'मेरी बहन हो न आप' कविता में कवि ने एक वृद्ध महिला का चित्रण किया है, कवि कहीं भी जाता है तो वहाँ आत्मीय रिस्ता बना लेता है और सबसे पहले बूढ़े-बुजुर्ग से मिलकर उस घर को अपना घर बनाता है। इसलिए नौटियाल के घर जाकर वो उसकी माँ को बहन बना लेता है और उसका स्वाभाविक चित्रण करता है -

"आप हम से दो वर्ष बड़ी हो / मेरी बहन हो न आप ?
ओह, ऐसी बात है तो / मुझे तो मिल गया आज ! "
*** * * * * * * ***
बहन बोली- / लड़का है हमारे गढ़वाल का / पहाड़ी मिट्टी का नया अंकुर है .....
भाई इसे आसीस दो..... / यह क्या बनेगा बतलाओ ... / फौजी न बने
ईमानवाला डॉक्टर बने भैया । / गरीबों का दुख-दर्द समझे ..... हाँ
मन से आप इसको आसीस दो .../ अभी तो खैर अँखुआ है भैया !"[1]

कवि की कविता में वृद्धा के प्रति आत्मीयता, स्नेह और सम्मान है। इसी तरह कवि ने एक जापानी प्रौढ़ा महिला का चित्रण किया है। इस कविता में उस विदेशी महिला से अपने आत्मीय सम्बन्ध का उन्होंने चटखारे लेकर वर्णन किया है, उसकी एकाएक उपस्थित होने की अदा, चटखारे लेकर भारतीय व्यंजन खाने का अंदाज, सबकुछ कवि ने इसमें दिखाया है। ग्रामीण, देशी -विदेशी महिलाओं से कवि का आत्मीय सम्बन्ध कितना आश्चर्य में डालने वाला लगता है और इसमें कृत्रिमता एकदम नहीं है, जीवन की गुदगुदी और चुहल है–

"उसी रोज दोपहर में / वो खा रही थी / खिचड़ी, आलू का भर्ता
पापड़ और दही .... / अचार भी था शायद / अचार उँगली से छू कर
उसनें जीभ से टेस्ट लिया / उई! ओऽऽऽ / क्या हुआ ! क्या हुआ
अन्दर से दो महिलाएँ / भागती आयीं / क्या हुआ ! क्या हुआ !
और फिर कभी दिखाई नहीं दीं ।"[2]

अन्य / उपेक्षित पात्र

(क) नाकहीन मुखड़ा

नागार्जुन की कविताओं में समाज के अन्य उपेक्षित पात्रों के लिए भी उचित सम्मान और स्थान है। विकृत, विकलांग और वीभत्स चेहरे वाले प्राणी भी कवि की संवेदना को छूते हैं तभी तो कवि ने नाक विहीन मुखड़े को कविता में चित्रित किया है–

"गठरी बना गई / माघ की ठिठुरन / अद्‌भुत यह सर्वांग-आसन
हिली-डुली / वो देखो हिली-डुली गठरी / दे गया दिखाई झबरा माथा
सुलग उठी माचिस की तीली / बीड़ी लगा धूँकने नाकहीन मुखड़ा
आँखों के नीचे / होठों के ऊपर / दो बड़े छेद थे / निकला उन छिद्रों से
धुआँ ढेर-ढेर सा / अँधेरे में डूब गई ठूँठ बाँह / सहलाते-सहलाते गर्दन
डूब गया सब कुछ अँधरे में...../ शायद दुबारा खिंच जाय कस
चमके शायद दुबारा बीड़ी का सिरा"[3]

इसी तरह एक बूढ़े का सजीव चित्रण किया है कवि ने क्योंकि उसके पूरे व्यक्तिव में आँखों की गजब चमक कवि को प्रभावित करती है–

---

1. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-52-55*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-56-58*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-24*

"थकी-पकी घनी भौंहें / नीली नसोंवाले ढलके पपोटे / सयत्न विस्फारित कोए
कोरों में जमा हुआ कीचड़ / कुछ नहीं होता / कुछ नहीं होता
होती बस आँखें / बेतरतीब बालों का जंगल/ झुरियों भरा कुंचित ललाट
मूँछों की ओट में खोए होठों का सीमांत / सीध में लंबी खिंची बड़ी नयनोंवाली नाक
अधिक से अधिक लटके हुए गाल / झाँकते हुए लंबे-लंबे कान
कुछ नहीं होता / कुछ नहीं होता / होती बस आँखें ही आँखें"[1]

कविता इतनी यर्थाथपरक और कसी हुई है कि एक पंक्ति भी हटाना मुश्किल है।

(ख) प्यासी पथराई आँखें

समाज के इन उपेक्षित चेहरों को भी कवि ने शामिल किया है क्योंकि इसके बिना हमारे समाज का चेहरा मुकम्मल नहीं होता। समाज के ये वो चेहरे हैं जिनपर शायद ही कोई विचार करता है। इस पूँजीवादी समाज में बेघर बार ऐसे बूढ़े किसी तरह अपने दिन पूरे कर रहे हैं- कितना असुरक्षित है हमारे समाज का यह वृद्ध, कितने असंवेदनशील हैं हम । कवि उन आँखों में क्या देखता है कि उसके हृदय पर उसकी तस्वीर खिंच जाती है, निराला की ओर भी उस पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी ने देखा था। कवि को वह प्रश्न भरी आँखों से देखता है और कवि उसपर कविता लिखने को विवश हो जाता है। इसी तरह देखने वाली दो आँखें और हैं जो प्यासी पथराई हुई हैं । ये आँखें लोगों की सहायता, संवेदना और आर्थिक सहयोग की प्यासी हैं, उन्हीं के इंतजार में पथराई हैं-

"प्यासी पथराई उदास आँखें.../ थकी, बेसहारा, निराश आँखें.....
कोई भी तो अपना रूख फेरे उसकी ओर
कोई भी तो उठाए अपनी पलकों का पर्दा / बीसियों आए बीसियों गुज़रे
कहाँ किसी ने देखा बेचारे की तरफ ! / छलक रहा है युगों का अभिशाप
बुझी-बुझी निगाहों में / घुटनों पे टिकी है ठोड़ी
इर्द-गिर्द बिखरें हैं आमों के लाल-पीले छिलके
गुठलियों पे जमी है नीली मक्खियों की जमात
जाने कब से झुका बैठा है अपंग बुड्ढा / सड़क की ढलान पे ,
भीड़-भाड़ से हटके / बुदुल पहलवान की चारपाई के सामने।"[2]

कवि ने इन उपेक्षित, अपमानित लोगों की आँखों को सही ढंग से पढ़ा है। काश! समाज और सरकार की दृष्टि भी इनकी ओर पड़ी होती, काश! ये कभी हमारी आँखें की तारे हुआ करते। कवि के लिए ये आँखें इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि पूरे संग्रह का नाम इन्होंने प्यासी पथराई आँखें रखा है।

(ग) अकर्मण्य साधु

लेकिन कवि समाज के अकर्मण्य साधु, भीख माँगनेवाले प्राणियों पर व्यंग्य करने से भी नहीं चूकते, इससे पता चलता है कि कवि की सहानुभूति लाचार और शारीरिक रूप से बेवश लोगों के प्रति है आलसी और पाखण्डी लोगों के लिए आलोचना और व्यंग्य ही है–

---

1. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-31*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-28*

"चौराहे के उस नुक्कड़ पर / काँटों का विस्तरा बिछाकर / सोया साधू दाढ़ीवाला
..... / काँटो पर नंगा सोया है / ठिठक गया मैं लगा देखने
उस औघड़ बाबा के करतब / नेत्र बंद थे बदन अडिग था
शर शय्या पर चित लेटा था / दर्शक पैसे फेंक रहे थे
सेठों की गलियों का नुक्कड़ / काँटों पर लेटा है फक्कड़
चमक रहे पैसे दो पैसे / और पाँच पैसे दस पैसे
जैसी श्रद्धा सिक्के वैसे / निकल रहे हैं जैसे-तैसे
काँटों पर सोया है कैसे / नागफनी पर गिरगिट जैसे
श्रद्धा का तिकड़म से नाता / जय हे भिक्षुक जय हे दाता
पियों संत हुगली का पानी / पैसा सच है दुनिया फानी"[1]

कवि ने ऐसे भिखारियों को 'गिरगिट' कहा है। ये लोगों को भावात्मक शोषण करते हैं—कवि ने भिक्षुक और दाता दोनों पर व्यंग्य किया है। ये समाज के आवारा और ढोंगी हैं जो शरीर से सकुशल होते हुए भी कोई काम नहीं करते, तरह-तरह का तमाशा दिखाकर लोगों से पैसे ऐंठते हैं। इनके लिए कवि के दिल में कोई जगह नहीं है।

(घ) लालू साहू

समाज के अन्य कई पात्रों पर भी नागार्जुन ने कविताएँ लिखी हैं। उनमें 'लालू साहू' कविता महत्त्वपूर्ण है। एक घटना को कवि ने कविता का आधार बनाया है—पत्नी की मृत्यु के बाद लालू साहू का उसकी चिता में कूद कर जान देने की। कवि पति-पत्नी के प्रेम और उनकी चाहत का हमदर्द है तभी तो कविता के माध्यम से भावात्मक साक्ष्य देते हैं—

"शोक विह्वल लालू साहू / अपनी पत्नी की चिता में / कूद गया
*** * * * * * * ***
लोगों ने खींच खाँचकर उसे बाहर निकाला
मगर लालू को बचाया न जा सका / थोड़ी देर बाद ही उसके प्राण पखेरू उड़ गए
पीछे / मृत लालू का शव भी उसकी पत्नी की चिता में ही / डाल दिया गया
*** * * * * * * ***
इस प्रकार एक पति उस रोज 'सती' हो गया
और अब दिवंगत पति (लालू साहू) के नाम / पुलिस वाले केस चलाएँगे
क्या इस हमदर्द कवि को तथाकथित अभियुक्त के पक्ष में
भावात्मक साक्ष्य देना होगा बाहर जाकर ?"[2]

कवि प्रेम में आत्महत्या करने वाले कानून तोड़ने वाले लालू साहू को मानवीय आधार पर समर्थन देते हैं।

(ङ) पगलवा

एक अन्य पात्र है 'हमारा पगलवा' । कवि ने एक स्त्री के सौजन्य से 'पगलवा' को कविता में साकार किया है। वह काठमांडू, दार्जिलिंग और गंगटोक जाता है और कभी गुदमा (तिब्बती कम्बल), कभी स्टूल तो कभी 'माउथ आर्गन' ले आता है जिसका उपयोग उसकी 'पगली मलका' करती है। उसी की जुबानी उसकी कहानी कवि ने लिखी है—

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-31-32*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-36-37*

"उस बार वो अकेला ही निकला था / मौसम था पूस माघ का
और हमारा पगलवा / दार्जिलिंग घूम आया था / पीछे किसी ने बतलाया
वो एक लामाइन के साथ / गंगटोक की सड़कों पर चहलकदमी कर रहा था
मैनें जिक्र किया तो मुस्करा उठा था / वो मुझसे तो क्या
किसी से भी झूठ नहीं बोलता ....."[1]

कवि की तटस्थता में भी आत्मीयता है, जो वर्णन शैली में झलक आती है ।

(च) भाउ समर्थ

एक अन्य पात्र है 'भाउ समर्थ', कवि ने बीमार 'भाउ समर्थ' का मानवीय संवेदना के साथ चित्रण किया है। अपनी जान-पहचान की परिधि में आने वाले हर प्राणी की चिन्ता कवि को होती है, यह चिन्ता इस कविता का आधार है–

"लगातार / सत्तर घंटे / भाउ की पलकें / खुली रहीं / मोना परेशान थी
बार - बार / डॉक्टर को बुलाकर लाई / पाँचवे दिन / डॉक्टर आया तो
भाउ को बेहद / प्रसन्न मुद्रा में पाया / मोना तू नाहक परेशान है
तेरे नानाजी को कुछ नहीं हुआ है । "[2]

मानवेतर जीव-जन्तु

यह संसार सिर्फ मानवों का नहीं है इसमें विभिन्न प्रकार के मानवेतर जीव-जन्तु भी रहते हैं। कम कवियों की दृष्टि इस ओर जाती है। इस मामले में नागार्जुन पूरे हिन्दी साहित्य में अकेले कवि हैं जिन्होंने कई जीव-जन्तुओं पर महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। ये बच्चों को बहलाने वाली कविताएँ नहीं हैं। बल्कि समाज की यथार्थ तस्वीर प्रस्तुत करने वाली कविताएँ हैं उपेक्षित जीव-जन्तुओं पर कवि की दृष्टि पड़ती है और वे उसे सहज अपनी संवेदना में बसा लेते हैं और कविता में चित्रित करते हैं। वर्जित और उपेक्षित प्रणियों के प्रति उनका यह आकर्षण और हार्दिक संवेदना प्रशंसनीय है। तीन चार कविताएँ तो ऐसी हैं जिनकी गणना कवि की प्रमुख कविताओं में भी होती है जिनमें 'नेवला', 'पैने दाँतों वाली' एवं 'डियर तोता राम' महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ कविताओं में अन्य जीव-जन्तुओं का सामान्य चित्रण है।

(क) मछली

एक कविता है 'छोटी मछली शहीद हो गई' । एक मछली गर्म दूध की बाल्टी में जा पड़ती है और मर जाती है- कवि ने उसके चित्रण के साथ पूरे परिवेश की संवेदना को कविता में उभारा है–

''अभी-अभी / छोटी मछली शहीद हो गई है
गर्म दूध की बाल्टी में छलाँग लगा के .....
अस्पताल के कर्मचारियों में / भारी पछतावा है / बेचारी की शहादत पे।
*** * * * * * * ***
हमने तो लेकिन बड़ी कोशिश की ..../ फौरन इसे ठंडे पानी में डाला
देर तक सहलाते रहे पीठ और गर्दन / पानी उतारते रहे
बेचारी के गले के अन्दर / मगर इसके तो कपार में लिखा था
*** * * * * * * ***

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-57*
2. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-72-73*

ऊँघती आवाज आई मोती सिंह की- / आग होती तो मकबुलवा
अभी इसी वक्त इसको भून के खा जाता''[1]

(ख) मेढ़क

छोटे-छोटे जीवों के प्रति कवि की करुणा अकृत्रिम है वे उनके दुख में स्वाभाविक रूप से दुखी हो जाते हैं, साँप के जबड़े में फँसे मेंढक का आर्तनाद कवि को अंदर तक हिला देता है—कुछ न कर पाने की लाचारी से कवि विवश है—

"अपना न हो तो / क्रंदन भी / कानों को
भा सकता है ..../ स्वजन परिजन / चहेते पशु-पक्षी / निकटवर्ती बगिया के
फूलों पर मंडराते / सु-परिचित भ्रमर / किसी का आर्तनाद / दुखा जाता है मेरा दिल ...
बरसाती मौसम के निशीथ में / सुने मैंने हाल ही / उस गरीब के चीत्कार
साँप के जबड़ों में फँसा था वो / कर रहा था / चीत्कार निरन्तर
मेढक बेचारा ...../ हमारी पड़ोस वाली / तलइया के किनारे ....
हाय राम, तुझे / काल कवलित होना था यहीं !"[2]

इस छोटी सी घटना से कवि के बड़े और उदार हृदय का अंदाज लगाया जा सकता है जिसमें हर तरह के जीव-जन्तु के लिए प्यार है।

(ग) हाथी

'हाथी' पर भी कवि ने एक कविता लिखी - 'चलते फिरते पहाड़'। पहले वे सामान्य ढंग से हाथी के रूप-गुण-शील का वर्णन करते हैं और उन्हें 'पहाड़' कह कर सम्बोधित करते हैं, केरल में 'गुरूवायूर' देवस्थान में एक हथिनी के मर जाने पर एक हाथी कई दिनों तक भूखा रहता है, उसके इस महाशोक पर कवि ने कविता लिखी है, कवि यहाँ यह दिखाना चाहते हैं कि हम लोगों में ही नहीं जीव-जन्तुओं में भी भाव होते हैं, शोक होता है -

"केरल के 'गुरूवायूर' देवस्थान के परिसर में / चालीस है तुम्हारी तादाद
सुना है, वहाँ तुम्हारे महानायक की / अर्धांगिनी का प्राणान्त हुआ
तब आपने कई दिनों तक / अन्न जल त्याग दिया था
तुम्हारा 'महाशोक' तब कैसे कम हुआ / बतलाओ भी तो जरा
ओ धीर प्रकृति के चलते-फिरते पहाड़ ? "[3]

(घ) बाघ

जंगली जानवरों के प्रति भी कवि का ममत्व जगजाहिर है। कवि जानवरों को भी आदमी की संवेदना और परिवार की भावना से देखते हैं तभी तो हिंसक जानवरों के प्रति भी उनके मन में करुणा का भाव छलकता है—

"बाघ उधर ही तो रहता है / बाबा, उसके दो बच्चे हैं
बाघिन सारा दिन पहरा देती है / बाघ या तो सोता है
या बच्चों से खेलता है ....."[4]

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-40*
2. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-22*
3. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-18-19*
4. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-16*

इस गहरी करुणा में भी हास्य का कोई मौका वे नहीं छोड़ते। जब छोटा बच्चा कवि से कहता है–

"पाँच-साला बेटू ने / हमें फिर से आगाह किया
अब रात को बाहर होकर बाथरूम न जाना ।"[1]

तो पाठक हँसने के लिए विवश हो जाता है।

उस जंगल में आग लग गई है, कहीं वो बाघ परिवार आग की चपेट में न आ-जाए कवि को इसकी चिन्ता सहज सताने लगती है, यही मानवीय संवेदना कविता की ताकत है–

"जंगलों में / लगी रही आग / लगातार तीन दिन, दो रात
निकटवर्ती गुफावाला / बाघ का खानदान / विस्थापित हो गया है
उस झरने के निकट / उसकी गुफा भी / दावानल की चपेट में / आ गई थी...
वो अब किधर / भटक रहा होगा ? / रात को निकलता होगा / पूर्ववत्.....
बाघिन बेचारी / अपने दोनों बच्चों पर / रात-दिन पहरा देती होगी
मध्य रात्रि में / आस-पास की झाड़ियों के / चक्कर लगा आती होगी
जरूर ही जल्द वापस होती होगी / वात्सल्य क्या
उस गरीब का / स्थायी भाव न होगा / बाघ लेकिन / सारा का सारा दिन
वापस न आता होगा / हाँ शिकार / पर जाने पर फौरन लौटता होगा बाघ !"[2]

जीव-जन्तुओं के प्रति यही दया, यह ममता, यही व्यापक चिन्ता कवि को बड़ा कवि बनाती है। यह कल्पना में लिखी गई कविता है लेकिन बाघ के प्रेम और बाघिन के ममत्व के कारण बड़ी मर्मस्पर्शी बन पड़ी है।

(ङ) नेवला

'नेवला' उनकी एक महत्त्वपूर्ण कविता है, अपनी सशक्त वर्णन क्षमता के कारण। अभिधा में कवि का कौशल देखना हो तो इस कविता को पढ़ना चाहिए। 'नेवला' जेल जीवन की ऊब को मिटाने वाला ऐसा मनोरंजक जीव साबित होता है जिसका सबको इंतजार है उसकी एक-एक प्रवृत्ति को कवि ने इतने लगाव से प्रस्तुत किया है कि पढ़कर सुखद आश्चर्य होता है–

"एक बार मोतिया ने / मेरी नाक की नोक में / गड़ा दिए थे अपने दाँत-
नहीं वो गुस्से में नहीं था / वह लाड़ लड़ाने के मूड में था
लेकिन मैं तो उस दुपहरी में / लेटा था झपकियाँ ले रहा था
मैं कतई नहीं था खिलवाड़ के मूड में / सो, शैतान ने
अपने पैने दाँत गड़ा दिए थे / इस बूढ़े बन्दर की नाक की नाक पर ।"[3]

नागार्जुन के लिए इस संसार में अजनबी कुछ नहीं, वे सबको अपना समझते हैं यही अपनापन उनकी कविता की शक्ति है। इन तुच्छ जीवों से वे इस तरह बात करते हैं जैसे कोई अपने बच्चे से बात करता हो, यही कविता का मानवीय पक्ष है। यही एक साधारण वर्णन असाधारण कविता बन जाती है–

"तू रह-रहकर कहाँ गुम हो जाता है ?
हफ्ता- हफ्ता, दस-दस रोज गायब रहता है!

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-16*
2. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-17-18*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-46*

देख जमूरे तेरी आवारगी बेहद खलती है हमें
अब तुझ पर पिटाई पड़ने ही वाली है मोतिया
हाँ, बतलाए दे रहा हूँ। / अब कोई तुझे माँफ नहीं करेगा -
...../ बोल बे, कहाँ रहा इतने दिन ?
च्चुः च्चुः च्चुः च्चुः ! आः आः आः आः
मोतिया ओः ओः ओः / मोतिया ! मोतिया!!"[1]

किसी माँ के ममत्व से कम नहीं है कवि का संवेदनात्मक लगाव। जेल के एकान्त सेल में जहाँ अपना कोई नहीं वहाँ यह नेवला ही सारी संवेदनाओं का आलम्बन है। वे उसे गोद में लेते हैं और खीर खाने का बड़ा आकर्षक चित्र खींचते हैं–

"मोतिया भली भांति ट्रेंड है
गर्मा-गर्म खीर को वो अपनी चंगुल से / नीचे सिमेंट वाली फर्श पर बिखेर चुका है।
चप-चप-चप-चप....शप-शप-शप-शप / चाट रहा है खीर मोतिया जल्दी-जल्दी में
जाने कैसी हड़बड़ी में है वो / जाने कितना भूखा है वो
चंगुल से बिखेर-बिखेर कर फर्श पर खीर / शपाशप-चपाचप चाट रहा है।"[2]

नेवला के एक-एक क्रिया-कलाप को कवि ने जिस आत्मीय ढंग से चित्रित किया है वह सूरदास के बाल-लीला की तरह बड़ा रोचक है। कृष्ण की चंचलता पर रीझ कर कवि ने बाल-लीला का सूक्ष्म चित्रण किया है नागार्जुन का यह चित्रण उससे कम बेजोड़ नहीं हैं। पूरी हिन्दी कविता में शायद ही किसी ने 'नेवला' को अपनी कविता का नायक बनाया होगा और इतनी आत्मीयता से चित्रित किया होगा, यह प्रतिभा अकेले नागार्जुन में ही है। नेवला के साथ जो मनोरंजक खेल सबलोग खेलते हैं वह मानवीय संवेदना के अंदर ही आता है, अंतिम दृश्य है नेवला को मछली खिलाने का लेकिन उसकी कलात्मक अदाओं को मनोरंजक रूप देकर, जैसे बच्चों को ललचाकर हम उनके क्रोध और प्रेम के कई रूपों का मजा लेते हैं वैसे। सुतरी में मछली को बाँध कर, एक निश्चित उँचाई पर उसको रखा गया है गोश्त के प्रति नेवला की ललक, उसकी उछल कूद, उसे पाने की जी तोड़ कोशिश बड़ा मनोहारी दृश्य उपस्थित करती है–

"मजबूत सुतरी के छोर से बँधा है / फर्श से ढाई-तीन फुट ऊपर लटकाए
मोतिया बार-बार छलाँग लगा रहा है / लपक रहा है बार-बार गोश्त के टुकड़े की ओर
पूरी ताकत लगाकर उछल रहा है / गुस्से में चीख रहा है ...किर्र ...किर्र .....किर्र !
उबाल खाकर कुलाँचें भर रहा है बार-बार / बीच-बीच में जरा सी देर के लिए
बस लम्हें भर के लिए / पल-भर के लिए यानी दस-पाँच सेकेंड के लिए
मोतिया दम मार लेता है / फिर पूरी ताकत लगाकर
लपकता है गोश्त के टुकड़े की ओर / मगर वो कामयाब कहाँ हुआ ?
* * * * * * * *
लीजिए, आखिर उसने लपक ही लिया
पकड़ इतनी पक्की है कि वो खुद ही टँग गया है
बड़ी मजबूती से लटका है मोतिया अधर में
गोश्त के टुकड़े में गड़े हैं उसके दाँत / वो हवा में झूल रहा है
* * * * * * * *

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-47*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमनें, पृ. सं.-48*

आखिर परेशान वो गरीब / फर्श पर दम लेने की खातिर लेट गया
उछल-कूद के, अपने पैंतरे सहेज कर
....हमने मान लिया मोतिया थककर लस्त-पस्त हो चुका है .....
अखलाक, इस पर रहम करो / अब बेचारे को ज्यादा न सताओ
गोश्त का टुकड़ा इसके हवाले कर दो / नहीं, नहीं अब यह खेल खत्म हुआ...
फिर यक-ब-यक जमूरे ने उँची छलाँग लगा दी
'हाई जम्प' के अपने पिछले रिकार्ड तोड़ गया
मय सुतरी के, गोश्त का वो टुकड़ा उसने झटक लिया था
हमारे लाडले अखलाक बाबू सौ फीसदी धोखा खा गए थे
उस रोज़ उनका पालतू 'सुपुत्र' उनसे 20 निकला आखिर ।"[1]

कवि की यह सशक्त कमेन्ट्री (आँखों देखा हाल) ही कविता का प्राण तत्त्व है। उसी में पाठकों को बाँधे रखने की शक्ति हैं, रोमांचित करने की ताकत है। इस कला की तारीफ करते हुए डॉ0 नामवर सिंह ने लिखा है—**"ऊपर से दिखने पर जो अत्यंत सपाट वर्णन है वह भी अपने समूचे असर में इतना कवित्वपूर्ण होता है कि काव्यत्व की किसी एक जगह पर उँगली रखना कठिन है। उदाहरण के लिए एक कविता है 'नेवला'। ...अब कोई पूछ सकता है कि इसमें कविता कहाँ है। नेवला अंततः नेवला ही रहता, कोई प्रतीक नहीं बनता, फिर भी जेल की ऊब और अमानवीय वातावरण में उस छोटे से प्राणी का क्रीड़ा-कलाप कुछ ऐसा मानवीय प्रभाव पैदा करता है कि उसे कविता के अलावा और कोई नाम देना असंभव है।"[2]**

(च) गाय

"जेल के एकाकी जीवन में एक गाय भी इनकी संवेदना को छू जाती है वह प्रतिदिन दर्शन दे देती थी, उसका आना, इधर-उधर टहलना कवि को अच्छा लगता था। कड़े पहरे और बंदी जीवन में उनकी स्वच्छंदता उन्हें भाती है -

"अभी-अभी ठीक उसी रोज, ठीक नौ बजे / मधुमती आ धमकी हमारे वार्ड में
गेट तो बस जरा-सा खुला था / इन दिनों कड़ा पहरा है न?
मगर मधुमती पर कहीं कोई पाबन्दी थोड़े है !
मै इधर दूर, रूम से बाहर खड़ा था / मधुमती को किचन की ओर लपकती देखकर
अच्छा लगा था, बड़ा ही अच्छा लगा था / वह सीधे किचन के दरवाजे तक गई
लेकिन उल्टे पाँव वापस लौट पड़ी"[3]

(छ) खच्चर

मानव के विकास में जीव-जन्तुओं का बड़ा योगदान है। मनुष्यों ने हर तरह के जानवरों को अपने विकास के लिए इस्तेमाल किया है। उँची चढ़ाई वाले इलाके में सामान ले जाने के लिए खच्चरों का इस्तेमाल किया जाता है, उनपर कवि ने एक कविता लिखी है 'सुन रहा हूँ ' कवि ने उनका इस तरह से चित्रण किया है कि लगता है कि वे उन खच्चरों का धन्यवाद ज्ञापन कर रहे हैं—

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-53-54*
2. *नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-5*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, नागार्जुन, पृ.सं.-66*

"पहाड़ी ग्रामांचलों तक / ट्रक तो जाते नहीं हैं!
कौन उन तक माल पहुँचाए / तेल, चीनी, नमक, आटा-
...दवा-दारू या कि चावल दाल / ईंधन, लोह-लक्कड़
साहबों की कुर्सियों तक / खच्चरों की पीठ पर ही लदी होती !
..खच्चरों की पीठ पर ही लदा रहता / पहुँचता है दूर-दूर ...."[1]

(ज) मादा सूअर

मादा सूअर पर लिखी गई उनकी कविता 'पैने दाँतोंवाली' एक महत्त्वपूर्ण कविता है। एक घृणित जीव को कवि ने इतनी सहानुभूति से चित्रित किया है कि वह काव्य की नायिका बन गई है। जैसे कोई 'नायिका' बड़े आराम से पूरे व्यक्तित्व के साथ यहाँ विराज रही हो–

"धूप में पसरकर लेटी है / मोटी-तगड़ी, अधेड़, मादा सूअर.....
जमना किनारे / मखमली दूबों पर / पूस की गुनगुनी धूप में
पसरकर लेटी है / यह भी तो मादरे हिन्द की बेटी है
भरे पूरे बारह थनों वाली "[2]

इस तरह की कविताएँ लिखकर कवि ने हमारी संवेदना कर विस्तार किया है। हमारी चेतना में जो घृणा और जुगुप्सा जगाने वाले जीव-जन्तु थे उन्हें अपनी व्यापक संवेदना में शामिल कर पूरे सम्मान के साथ चित्रित करके कवि ने हमारी सुरूचि की परिधि को बढ़ाया है, हमारी चेतना का परिष्कार किया है। इस प्रसंग में डॉ. नामवर सिंह ने नागार्जुन की प्रशंसा करते हुए लिखा है–"**जो वस्तु औरों की संवेदना को अछूती छोड़ जाती है वही नागार्जुन के कवित्व की रचना-भूमि है। इस दृष्टि से काव्यात्मक साहस में नागार्जुन अप्रतिम हैं। उन्हीं की बीहड़ प्रतिभा एक मादा सूअर पर 'पैने दाँतों वाली', कविता रच सकती थी।**"[3] इन निरीह जन्तुओं के प्रति कवि की ममता ने इन्हें इस जगत में नया रूप दिया है जिसमें इनके लिए आदर है। 'मादा सूअर' को कवि जब 'मादरे हिंद की बेटी' कहते हैं तो कवि की पूरी चिंतन पद्धति सामने आती है। इस चित्र में 'मातृत्व के गौरव' से लदी ऐसी मादा सूअर को चित्रित किया गया है जो 'पैने दाँतों' के बावजूद 'बारह थनों' से अपने छौनों को प्यार का प्रतिदान दे रही है।

मादा सूअर पर एक और कविता है 'मेरे बच्चे' शीर्षक से। कविता में कवि अधिक दिखाई पड़ रहा है लेकिन जो बातें कवि कह रहा है वे सच्ची हैं। सूअर का मांस भक्षण पहाड़ी प्रदेश में खूब होता है, एक तरफ बराह भगवान की पूजा और दूसरी तरफ उनका भक्षण, कवि ने इसी हिन्दू मानसिकता की विडम्बना पर प्रकाश डाला है। दूसरी तरफ मुस्लिम समाज उन्हें नापाक कहता हैं और डोम जैसी जातियों के लिए वे आर्थिक सम्पति हैं इन सबका चित्रण कर कवि एक मादा सूअर के दुख-दर्द को उकेरते हैं, मादा सूअर की तरफदारी में प्रसंग मार्मिक बन पड़ा है–

"मेरे दिल के टुकड़े / उन्हीं दिनों क्यों
एक-एक करके गायब कर दिए जाते हैं
* * * * * * *

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-14-15*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-130*
3. *नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-5-6*

मैं कुछ तो नहीं जानती / हाँ, ठण्ड से बेहद घबराती हूँ मैं
तब मेरे बच्चे मेरे पास नहीं होते ! / हाँ, होते हैं लेकिन
लाल सुर्ख गालों वाले भले मानुषों के तन-मन का
जिन्दा हिस्सा बन चुके होते हैं / श्री नगर से वापस जा चुके हैं ।"[1]

(झ) बन्दर

आगरा के मेडिकल कॉलेज में बन्दरों की भीड़ जमा हो जाती है और वहाँ उनका इतना आंतक है कि मंगलवार को काम काज ठप्प रहता है कवि ने इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए लिखा है–

" महीने के पहले हफ्ते वाले दो-तीन दिनों में
या प्रथम सप्ताह के पहले मंगलवार को
लगता है समूचे उत्तर प्रदेश का / मर्कट मण्डल लड्डू भोज के लिए
आ जुटता है यहाँ..... / उस रोज कोई भी
मेडिकल कॉलेज के अंदर वाले परिसर में / दिखाई नहीं पड़ेगा
चार गेट कीपर हैं / वे भी गेट के बाहर ही
दम साधे बैठे रहते हैं स्टूलों पर / अंदर कपि समाज का
चलता रहता है प्रीतिभोज / कालेज का सभी काम-काज / बन्द रहता है उस दिन"[2]

उत्तर प्रदेश में कई जगह बन्दरों के आंतक से लोग आंतकित रहते हैं, कवि ने इन्हीं स्थितियों पर व्यंग्य किया है। यहाँ बन्दर ही हावी है।

(ञ) मुर्गा

जीवन के छोटे-छोटे प्रसंग, अनुभूतियाँ कवि की काव्य संवेदना का हिस्सा बनते हैं। जीवन की हर अनुभूति कविता का आधार हो सकती है बशर्ते कवि में सही काव्य दृष्टि हो और उसे प्रस्तुत करने की कला हो। जेल जीवन में जीवन इतना एकाकी हो जाता है कि हर जीव-जन्तु की आहट का महत्त्व होता है। रात्रि के चौथे पहर में मुर्गे की बाँग कवि को जगा देता है, वही जेल का अलार्म है, कवि ने मुर्गे की जिन्दगी में झाँकते हुए लिखा है–

"वही ठीक 5 बजे बन्द कर दिया गया था / खैर, सात बजे तक तो सो ही गया होगा
तो क्या वो सात-साढ़े सात घंटा सोया ही रहा ?
नहीं, कुछ वक्त उसने चोंच भी सहलाई होगी / प्रणयिनी की गर्दन को खुजलाया हो शायद
दड़बे के अन्दर भला उन्हें स्वच्छन्द क्रीड़ा के अवसर तो / क्या मिले होंगे!
*** * * * * * * * * * ***
तो अलार्म की घड़ी ठहरा न यह! / यह मुर्गे नहीं, अलार्म घड़ी है जेल की..वाकई! वाकई..."[3]

मुर्गे के अन्तरंग जीवन को कवि ने किस दुलार से छेड़ा है कि उसने कुछ समय अपने प्रेमिका की चोंच सहलाई होगी, उसकी गर्दन को खुजलाया होगा, जीव-जन्तुओं के प्रति यही प्रेमभरी, ममत्वभरी दृष्टि ने उन्हें एक संवेदनशील कवि बनाया। यही उनके बड़प्पन का राज है। इन तुच्छ जीवों के प्रति ऐसी दृष्टि सिर्फ नागार्जुन के पास है।

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-23-24*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-14-15*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-65*

(ट) बगुला

बरसात का मौसम शुरू होने वाला है, आकाश में बगुलों की पंक्तियाँ उड़ी जा रही हैं कवि ने प्रकृति, कविता, कवि और अपनी संवेदना को मिलाकर एक सुन्दर कविता लिखी है 'वलाका' में वे लिखते हैं–

"पावस की आगमन सूचना / देने आयी प्रकृति सुन्दरी
फहरा-फहरा कर धवल पताका / उड़ी जा रही नील गगन में
पवन पंख पर विमल वलाका!"[1]

बगुले के ध्यान मग्न होने की प्रवृत्ति पर कवि ने व्यंग्य भी किया है लेकिन इस व्यंग्य में चुहल है, मौन योगियों की शिकारी प्रवृति पर चुटकी लेने का भाव है–

"ध्यानमग्न / वक-शिरोमणि / पतली टाँगों के सहारे
जमें है झील के किनारें / जाने कौन हैं 'इष्टदेव' आपके !
*** * * * * * * ***
मनाता हूँ मन ही मन / सुलभ हो आपको अपना शिकार
तभी तो जायेगा / आपका माध्यन्दिन आहार
अभी तो महोदय, आप / डटे रहो इसी प्रकार
झील के किनारे / अपने 'इष्ट' के ध्यान में !
अनोखा है / आपका ध्यान योग ! / महोदय, महामहिम !!"[2]

एक तरफ कवि का वात्सल्य भाव की टपक रहा है दूसरी तरफ उनका व्यंग्य मानवीय प्रवृति की ओर है।

बगुलों पर एक और कविता नागार्जुन ने लिखा है 'नीले आसमान में' कवि को समूह में बगुलों का उड़ना बड़ा सुन्दर लगता है इसलिए वे लिखते हैं–

"नीले आसमान में / उड़े जा रहे हैं / सफेद-सफेद बगुले
कितनी दूर मंजिल है? / क्या आगे भी तलैया है कोई ?
वहाँ भी छोटी-छोटी मछलियाँ / इनका शिकार बनने को तैयार है?
बच्चे ही नहीं सयाने भी / नीले, भूरे या काले पतंगे उड़ाकर
इन श्वेत विहंगों का / पीछा कर रहे हैं / नीले आसमान में ।"[3]

(ठ) तोता

तोता पर लिखी उनकी एक महत्त्वपूर्ण कविता है–'डियर तोताराम'। कवि ने जैसे चुहल भाव से वह कविता लिखी है वह अपने आप में मनोरंजक और बेजोड़ है। कितने तरह के भाव हैं कवि ने उनको अपनी कविताओं में पकड़ा है। इसमें हल्के चुहल का भाव है, मजा लेने की प्रवृत्ति है और है छेड़ने की अनुपम कला। कवि का तोते से जो आत्मीय एकालाप है वह पठनीय है–

"उल्टा लटककर / वो कुतर रहा है नाशपाती / दस का यह गुच्छा ही
इसे जाने क्यों भाया ? / लीजिए, हमारी आहट पाकर / वो उड़ गया ...
पहाड़ी तोता ..../ जरूर ही / वो बार-बार / नाशपाती का जायका लेने आएगा
...../ जहरीखाल में नाशपाती का / क्या एक यही पेड़ हैं?

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-99*
2. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-19*
3. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-36*

मियाँ मिट्ठू / (महोदय आत्माराम) / आप तो नाहक ही
हमारे पैरों की आहट से भड़क गए ! / भला, य' भी कोई बात हुई
आइए, इत्मीनान से / इन टहनियेां में उल्टा लटकिए !
मौसम की ताजगी का स्वाद लीजिए! / लेकिन आप तो भई,
'गृह पालित' नहीं, आजाद तोता थे ना ? / आइए, बेखटके आइए !
उल्टा लटकिए / हमारा मनोरंजन कीजिए ! / प्लीज, डियर तोताराम!"[1]

(ड) खटमल

जेल में खटमल और मच्छरों ने नागार्जुन की नाक में दम कर दिया । कवि ने तंग आकर 'खटमल' पर एक कविता लिख दी, इसके पहले रीतिकाल में अली मुहिब खाँ (प्रीतम) नामक कवि ने हास्य रस की एक पुस्तक 'खटमल बाईसी' लिखी थी । जिसकी प्रशंसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल में दिल खोल कर की है। इस छोटे से जीव से आदमी त्रस्त हो जाता है कवि नागार्जुन ने लिखा है–

"अभी-अभी मारा, फिर कैसे / निकला यह पाताल से
तरुण गुरिल्ला मात खा गए / शिशु खटमल की चाल से
रात्रि जागरण, दिन की निद्रा / चिपके मेरे भाल से
यम की नानी डरती होंगी / खटमल के कंकाल से ।"[2]

(ढ) जुगनु

इस तरह 'जुगनु' जैसे लघु कीट के उत्सव का कवि ने बड़ा रंगीन चित्रण प्रस्तुत किया है–

"गीली भादों / रैन अमावस ....
कैसे ये नीलम उजास के / अच्छत छींट रहे जंगल में / कितना अद्भुत योगदान है
इनका भी वर्षा मंगल में / लगता है ये ही जीतेंगे / शक्ति प्रदर्शन के दंगल में
लाख-लाख हैं, सौ हजार हैं / कौन गिनेगा, बेशुमार है
मिल जुलकर दिप-दिप करते हैं / कौन कहेगा, जल मरते हैं....
जान भर रहे है जंगल में"[3]

भादो की गीली रात में जुगनुओं का जगमगाना इतना सुन्दर लगता है कि कवि प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। जैसे ये वर्षा-ऋतु के गीले मौसम का आनन्द उठा रहे हों।

(ण) मधुमक्खियाँ

मधमक्खियों पर एक सुन्दर कविता लिखी है कवि ने । उसमें उन्होंने उन्हें न छेड़ने की सही सलाह दी है। हम अपनी क्रूरता और चंचलता में उनके छत्तों को हानि पहुँचाते हैं, उनके साथ कवि की सहानुभूति है–

"नादान होंगे वे / अभी न बात करो
मारते हैं शहद के छत्तों पे कंकड़ / छेड़ते है मधुमक्खियों को नाहक
उनकी न बात करो, नादान होंगे वे / कच्ची होगी उम्र, कच्चे तजरबे
डाँट देना उन्हें, छेड़खानी करें अगर वे / तुम तो सयाने हो न ?

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-20-21*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमनें, पृ. सं.-59*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-156*

धीरज से काम लो / छेड़ो मत इनको / करने दो जमा शहद
भरने दो मधुकोष / रचने दो रसःचक्र / छेड़ो मत इनको ।"[1]

(त) कांजीरंगा बाढ़

कांजीरंगा अभयारण्य दस दिन बाढ़ में डूबा रहा, जीव-जन्तुओं की अकाल मौत कवि को विचलित कर देती है, कवि ने इसका तो उल्लेख किया ही है, हवाई सर्वेक्षण तक न करनेवाली नेत्री पर भी व्यंग्य किया है । वे लिखते हैं –

"कांजीरंगा का अभयारण्य / बाढ़ में डूबा रहा दस रोज
गैंडे और हाथी घुट-घुट कर मर गए / क्या तुमने उनकी सड़ी लाशें देखी ?
इन मूक जन्तुओं की निषप्राण काया / असम के तुम्हारे हवाई सर्वेक्षण की
परिधि में न आती थी, न आई । / अच्छा तो है तुम्हें नींद न आए
अच्छा तो है तुम चौंक-चौंक पड़ों / तुम्हारी इस नट-लीला के प्रति
मेरा कवि जरा भी हमदर्द नहीं ....."[2]

असम तक जाकर घूम आने वाले नेता की दृष्टि परिधि में यह बाढ़ नहीं आई कवि को इसका मलाल है, ऐसे असंवेदनशील नेता के प्रति कवि दुखी है।

(थ) मुर्गी-फार्म

'नान भेजिटेरियन आमदनी' कविता मे कवि ने मुर्गीफार्म का चित्र खींचा है, चूजों के बढ़ने की प्रक्रिया पर कवि ने अच्छा लिखा है–

"महोदय / आपके शिशु / अब सयाने हो रहे हैं / आगे चलकर
ये अग्रणी बनेंगे / इनमें से दस-बारह / शिशु तो अभी से
'कुड़क-कुड़क' बोलने लगे हैं / रात्रि शेष में उनकी आवाजें
हमारे कानों में / गुदगदी भरने लगती है "[3]

आगे इस कविता में शाकाहारी आदमी की 'माँसाहारी आमदनी' पर व्यंग्य है किन्तु मुर्गे-मुर्गियों के प्रति कवि की संवेदना मनोरंजक है। कवि ने उनके बढ़ने और विकास का बड़ा उत्साहवर्धक और आकर्षक चित्र खींचा है–

"आगे अचिर भविष्य में / अच्छी खासी मुर्गियों के रूप में
इनका विकास सुनिश्चित है / दो-तीन तो स्याह और सुर्ख मुर्ग होंगे / इनकी कलगी
बेहद आकर्षक होंगी / प्रजनन की अपूर्व क्षमताओं से लैस / इनके बीसियों चूजे
हर तीसरे चौथे महीने / अनगिनत अण्डे देंगे / जिनको से-सेकर मुर्गियाँ बड़े करेगी
फिर सौ-सौ चूजे / फिर मुर्गीयाँ-मुर्गे../ सैकड़ो-हजारों...."[4]

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-118-119*
2. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपनें, पृ. सं.-26*
3. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-21*
4. *नागार्जुन, अपनी खेत में, पृ. सं.-21*

चौथा अध्याय

नागार्जुन की हिन्दी कविता में प्रतिरोधात्मक स्वर-संदर्भः राजनीति एवं सत्तातंत्र

(1) स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिः आदर्श और मूल्यों का विघटन

(2) भारतीय शासनतंत्र : भ्रष्टतंत्र की दास्तान

(क) नेतागण

(ख) प्रशासक

(ग) पुलिस

(3) आंदोलन एवं क्रांतिः आस्था से अनास्था तक

(4) कविता के बाड़े में भारतीय नेताः एक व्यंग्य अलबम

(क) जवाहरलाल नेहरू (ख) इंदिरा गाँधी (ग) मुरार जी देसाई

(घ) विनोवा भावे (ङ) जय प्रकाश नारायण (च) राजीव गाँधी

(छ) लालबहादुर शास्त्री (ज) लालू यादव (झ) चौधरी चरण सिंह

(ञ) संजय गाँधी (ट) गुलजारी लाल नंदा (ठ) कामराज

(ड) वी. पी. मंडल (ढ) श्री कृष्ण सिंह एवं अनुग्रह नारायण

(ण) दरोगा प्रसाद राय (त) सुखराम (थ) मायावती

(द) बाल ठाकरे (ध) फूलन देवी

नागार्जुन की हिन्दी कविता में प्रतिरोधात्मक स्वर: संदर्भ राजनीति एवं सत्तातंत्र

राजनीति का प्रभाव कमोबेश मनुष्य के जीवन पर प्रारम्भ से ही रहा है लेकिन आधुनिक युग तो राजनीति प्रेरित ही है। राजनीति का सीधा सम्बन्ध जनता और प्रजातंत्र से है। वहीं से जीवन के मुख्य प्रश्नों की शुरूआत होती है। नागार्जुन सम्पूर्ण जीवन के कवि हैं इसलिए उन्हें राजनीति से परहेज नहीं है।

नागार्जुन की कविताओं का एक बड़ा भाग राजनीतिक कविताओं का है जिसके आधार पर उनको राजनीतिक कवि कहा जाता है, यह अंशतः सत्य है पूर्णतः नहीं। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में उनके जितना राजनीतिक कविता लिखनेवाला दूसरा कवि नहीं।

नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ अपने समय में देश के दस्तावेज हैं। ये जनता की आकांक्षा के साथ-साथ उनका आक्रोश भी हैं। 1940 ई. के बाद के भारतीय राजनीति की प्रमुख घटनाओं को इसके माध्यम से देखा-समझा जा सकता है इसलिए **डॉ. मैनेजर पाण्डेय** का यह कहना सही है कि **"एक तरह से नागार्जुन की कविता के आधार पर 1940 के बाद के भारतीय समाज की राजनीतिक चेतना का इतिहास लिखा जा सकता है।"**[1]

ये कविताएँ जनता के प्रतिरोधात्मक स्वर की अभिव्यक्ति हैं। सत्तातंत्र में बैठे राजनेता के कारनामें की व्यंग्यपूर्ण आलोचना (जनता की भावनाएँ) हैं जो कवि की कलम से निकल रही हैं।

इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है जनता में इसकी स्वीकृति। यह आलोचनात्मक कविता आदमी विशेष की नहीं है-प्रवृत्ति विशेष की है और जब तक राजनीति इन प्रवृत्तियों से ग्रस्त रहेगी तब तक इनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी। इन्हें तत्कालीन कहकर उड़ाया या हल्का नहीं बनाया जा सकता। हालाँकि यह काम खतरनाक है, डॉ. केदारनाथ सिंह ने इस प्रसंग में टिप्पणी की है—**"एक तथ्य, जिसकी ओर सहसा ध्यान नहीं जाता, यह है कि तात्कालिक विषय पर कविता लिखना एक खतरनाक काम है। यह खतरा केवल सामाजिक या राजनीतिक स्तर पर ही नहीं होता, बल्कि स्वयं कविता के स्तर पर भी होता है। यह खतरा वहाँ हमेशा मौजूद रहता है कि कविता कविता रह ही न जाये। पर नागार्जुन एक रचनाकार की पूरी जिम्मेवारी के साथ इस खतरे का सामना करते हैं और इस दृष्टि से देखें तो उनमें खतरनाक ढंग से कवि होने का अद्‌भुत साहस है।"**[2] राजनीतिक भ्रष्टाचार के खिलाफ नागार्जुन की कविता दीर्घजीवी होंगी यह समय सिद्‌ध करेगा। जो भी इन कविताओं को पढ़ेगा अपने युग के भ्रष्टाचार के खिलाफ भी इसे पाएगा और हथियार बनाएगा। उनकी एक कविता है—'शासन की बंदूक।' तानाशाही दमन के खिलाफ लिखी गई यह कविता प्रजातंत्र की जीत का ऐलान है। विश्व में जहाँ कहीं भी तानाशाही दमन होगा यह कविता पढ़ी जाएगी और प्रजातंत्र की शक्ति का सबूत देगी। इसे घर और राष्ट्र की सीमा में कैद करके नहीं रखा जा सकता है। यह समय और समाज का अतिक्रमण करके मानवता की रक्षा करने के लिए सदा-सर्वदा तैयार रहेगी। वास्तव में नाम तो बहाना है कविता लिखने का, मूल चीज है—प्रवृत्ति, कवि जिसपर व्यंग्य करता है, चाहे जवाहरलाल का नाम हो या इंदिरा गाँधी का। कवि का मकसद है उनकी गलत नीतियों, प्रवृत्तियों पर प्रहार करना। इसके स्थान पर कोई अन्य राजनेता होगा उसपर भी ये कविताएँ उतनी ही सटीक बैठेंगी। ये कविताएँ अपनी तेज, ओज और ऊर्जा के कारण लोकप्रिय एवं दीर्घजीवी होंगी। जैसे तुलसी और सूर की काव्य-पंक्तियाँ भाषा का मुहावरा बन गई हैं और जीवन के प्रसंगों में काम आती हैं वैसे ही राजनीतिक प्रसंगो में इनकी कई पंक्तियाँ स्मरण की जाएँगी। 'मंत्र' कविता की एक पंक्ति है—

---

1. डॉ जयनारायण, कल के लिए, नागार्जुन, अंक-1, पृ. सं.-12

2. केदारनाथ सिंह, मेरे समय के शब्द, पृ. सं.-57

'ओ गद्दी पर आजन्म वज्रासन' एवं 'ओं हमेशा हमेशा हमेशा करेगा राज मेरा पोता'

क्या 30 वर्षों बाद भी यह पंक्ति प्रासंगिक नहीं है। जब तक गद्दी है और मनुष्य के मन में लालच है तब तक यह पंक्ति प्रासंगिक है। इसलिए तत्कालीन कहकर इन कविताओं को कमजोर समझना और खारिज करना बुद्धिमानी नहीं, ये हमारी कविता की धरोहर हैं।

खड़ी बोली हिन्दी में राजनीतिक कविता करके नागार्जुन ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की। यह जोखिम भरा काम था, नार्गाजुन ने यह जोखिम उठाया। राजनीति को ठीक किए बिना जीवन की तमाम विसंगतियों को दूर नहीं किया जा सकता ऐसा सोच कर ही उन्होंने इस क्षेत्र में कलम चलाया, उनके इस महत्त्व को कभी नहीं भूलना चाहिए । वे जिस अधिकार से भारतीय प्रधानमंत्री पर व्यंग्य करते हैं वह प्रजातंत्र पर आस्था के कारण ही है। उच्च ओहदों पर कार्यरत राजनेताओं का मजाक जिस अंदाज में वे उड़ाते हैं वह बड़ा खतरनाक हो सकता है किन्तु उन्हें जणतंत्र, जनता और अपने आप पर भरोसा है। वे हिन्दी में के उन विरले साहित्यकारों में से हैं जो सबकुछ को दाँव पर लगाकर साहित्य सृजन करते हैं। कुछ पाने का लोभ और खोने का डर जिन्हें नहीं होता, जो सुविधा त्याग देते हैं वे दुविधा की भाषा नहीं बोलते। नार्गाजुन उसी परम्परा के पहरेदार हैं यही कारण है कि वे बेखौफ किसी पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार करते हैं और शासनतंत्र को सचेत करते हैं।

नार्गाजुन में शहरी चालाकी नहीं है, वे ग्रामीणों की तरह सोचते हैं और भदेस भाषा में व्यंग्य करते हैं। यहाँ तक कि वे गाली-गलौज तक उतर आते हैं। एक कवि के रूप में उनके इस रूप की आलोचना होनी चाहिए लेकिन ग्रामीण जनों के आक्रोश की भाषा का जहाँ तक सवाल है वहाँ यथार्थ और प्रामाणिकता के प्रस्तुतिकरण में वे खरे उतरते हैं। वे जैसा सोचते हैं वैसा ही लिखते हैं उसमें जरा सा भी बनावटीपन नहीं है। व्यंग्य की भाषा में जो एक तीखापन होता है वह वहाँ मौजूद है। वे कबीर की परम्परा के कवि हैं। कबीर ने धार्मिक ठेकेदारों पर व्यंग्य किया उन्होंने राजनीतिक नेताओं पर जिनकी नाराजगी उन्हें कहीं भी पहुँचा सकती थी।

1. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति : आदर्श और मूल्यों का विघटन

मानव सभ्यता मूलतः अच्छाई-बुराई के संघर्ष का इतिहास रहा है। दोनों तरह की प्रवृत्तियाँ समाज में रही हैं और उनमें संघर्ष अनिवार्यतः रहा है। मानव सदैव अच्छे मूल्यों के लिए प्रयास रत रहा है, वही हमारा लक्ष्य है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के चंगुल में हमारा देश लगभग 200 वर्षों तक गुलाम रहा। कई नेताओं के त्याग एवं बलिदान तथा गाँधीजी के कुशल नेतृत्व के कारण हम आजाद हुए। गाँधीजी ने राजनीति के क्षेत्र में सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह का सफल प्रयोग किया और पूरे विश्व को नया प्रकाश दिया। उन्होंने राजनीति में नैतिकता और आत्मशुद्धि का पाठ पढ़ाया। असहयोग आन्दोलन के द्वारा सशस्त्र साम्राज्यवादी ब्रिटिश ताकत को झुकने पर मजबूर कर दिया। लेकिन दुख इस बात का है कि गाँधीजी के सात्विक मूल्य जितनी तेजी से संक्रमित हुए थे उतनी ही तेजी से लोगों ने उसे भुला दिया। अभी आजादी मिले 6 माह भी नहीं बीते थे कि अहिंसा के पुजारी की हत्या हिंसा के ठेकेदारों ने कर दी। यह गाँधीजी की ही हत्या नहीं थी उनकी नीतियों की भी हत्या थी, उनके मूल्यों पर भी प्रहार था।

जिस समाज को गाँधीजी ने सहिष्णुता और उदारता का पाठ पढ़ाया, उसी में दंगों की आग भड़क उठी और मानवता जल कर राख हो गई। भारत-पाक का विभाजन हो गया। गाँधीजी के असली समर्थकों की हार हो

गई और हिंसक, पाखण्डी राजनेताओं की बन आई। आजादी तो मिल गई लेकिन मानवीय मूल्यों का जितना विनाश उन दिनों हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ था। समाज का पतन हो गया और खून से लथपथ भारतमाता भारतीय राजनीति के रंगमंच पर धूल धुसरित हो गई। यदि भारतीय राजनेता ईमानदार, कर्मठ और देशभक्त होते तो निश्चय ही आज हम किसी विकसित देश से कम नहीं होते, लेकिन ऐसा हुआ नहीं ।

जिनके हाथों में सत्ता थी उनकी गलत नीतियों ने हमें न घर का रखा न घाट का। जितनी तेजी से राजनेताओं का पतन प्रारम्भ हुआ वह बड़ा दुखदायी प्रसंग है। जब तक सत्ता हाथ नहीं आई थी वे देशभक्त, त्यागी और विरक्त थे लेकिन सत्ता हाथ में आते ही वे स्वार्थी, अनैतिक और भ्रष्ट हो गए। कुछ नेताओं को छोड़कर पूरी राजनीति एवं सतातंत्र भ्रष्टाचार के दलदल में फँस गई और आजादी के 50 वर्ष बाद भी पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर और शक्तिशाली राष्ट्र नहीं बन पाया। यही दर्द नार्गाजुन की राजनीतिक कविता के मूल में है। उन्होंने इस सत्ता हस्तांतरण को 'आजादी' नहीं माना है। जब तक भारत के निम्न वर्ग को जीवन की आधारभूत सुविधा नहीं मिल जाती तब तक कवि को यह आजादी झूठी लगेगी और वे इसके लिए संघर्षरत रहेंगे, इस आजादी पर व्यंग्य करते हुए कवि ने लिखा है–

" कागज की आजादी मिलती ले लो दो दो आने में ,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तैलंगाने में । "[1]

आजादी का मतलब सम्पूर्ण विकास है, नागार्जुन इसी आजादी के लिए संघर्ष कर रहे हैं, शुरू की कई कविताएँ इसी विषय पर हैं, जैसे एक कविता है,–'पूरी आजादी का संकल्प आज दुहराते हैं' (हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, नागार्जुन, पृ. सं.-51)। इसके शीर्षक से ही पता चल जाता है कि वे क्या चाहते हैं।

आजादी के बाद की सबसे बड़ी घटना थी गाँधीजी की हत्या। अपनी महानता, त्याग और जनसेवा के कारण गाँधीजी नागार्जुन के प्रशंसा के पात्र हैं, उनकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने एक कविता लिखी–'बापू महान' (नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-39)। उन्हीं की हत्या से क्षुब्ध होकर उन्होंने 4 कविताएँ लिखीं, जिस कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा था । उनमें से दो 'युगधारा' में संकलित हैं–'तर्पण' और 'शपथ', नागार्जुन का दर्द, क्षोभ, दुख पूरे भारतीय समाज का दुख था । जिसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"जिस बर्बर ने / कल किया तुम्हारा खून पिता / वह नहीं मराठा हिन्दू है
वह नहीं मूर्ख या पागल है / वह ——— / वह मानवता का महाशत्रु
वह हिरणकशिपु / वह अहिरावण / वह दशकन्धर
वह सहसबाहु वह मनुष्यत्व के पूर्णचन्द्र का सर्वग्रासी महाराहु "[2]

लेकिन इन दरिंदों से संघर्ष करने का संकल्प भी वे दुहराते हैं–

"हे वृद्ध पितामह / तिल-जल-से / तर्पण करके / हम तुम्हें नहीं ठग सकते हैं
यह अपने को ठगना होगा / शैतान आयेगा रह-रह हमको भरमाने
अब खाल ओढ़ कर तेरी सत्य अहिंसा का / एकता और मानवता के
इन महाशत्रुओं की न दाल गलने देंगे / हम नहीं एक चलने देंगे
यह शक्ति और समता की तेरी दीपशिखा / बुझने न पायेगी छन भर भी
परिणत होगी आलोक स्तम्भ में कल-परसों / मैदानों के काँटे चुन-चुन
पथ के रोड़ों को हटा-हटा / तेरे उन अगणित स्वप्नों को

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-50*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-44*

हम रूप और आकृति देंगें हम कोटि-कोटि / तेरी औरस संतान, पिता !"[1]

बापू पर कवि की आस्था अटूट है। उनकी हत्या पूरे भारतीय मानस को झकझोर देती है कवि ने उसे अपने आँसुओं में डुबो कर अभिव्यक्त किया है-

"इसे न कोई कविता समझे / यह तो पितृ-वियोग-व्यथा है ,
श्राद्ध समय में बहे न आँसू / यह तो बड़ी विचित्र प्रथा है ,
पर न आज रोके रुक पातीं / आँखें मेरी भर-भर आतीं
रोता हूँ लिखता जाता हूँ / कवि को बेकाबू पाता हूँ ।"[2]

नागार्जुन जी ने जो शपथ गाँधीजी की हत्या के समय ली थी वह जीवन भर निभाई, उन्होंने लिखा था-

"हाँ बापू निष्ठा पूर्वक मैं शपथ आज लेता हूँ -
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे -
हिन्दू-मुसलिम-सिक्ख फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी / सम्प्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक खंडहर न बनेंगे / तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा
लौह लेखनी कभी विराम न लेगी"[3]

कवि ने आजीवन इस शपथ को निभाया किन्तु भारतीय राजनीति का नैतिक पतन जारी रहा और गाँधीवादी मूल्यों का मजाक उन्हीं के चेलों द्वारा उड़ाया जाने लगा और जब अच्छे मूल्यों की कद्र नहीं होती तो बुराई हावी होती जाती है। भारत की बागडोर जिन नेताओं के हाथ में थी उनका ईमानदारी छोड़ देना देश के विकास में बाधक सिद्ध हुआ। गाँधी जी की हत्या पर एक अन्य कविता है—'वाह, गोडसे!' (नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ.सं.-99) गोडसे जैसे हत्यारे को जिस सुविधा के साथ सरकार रख रही थी कवि ने बड़े आक्रोशपूर्ण भाषा में व्यंग्य करते हुए इसका उल्लेख किया है।

गाँधी जी और विनोबा भावे की साफ-सुथरी राजनीति सफल नहीं हुई। गाँधी जी की हत्या कर दी गई और विनोबा जी का भूदान आन्दोलन मजाक बन कर रह गया। वे जमींदारों के दिलों को नहीं बदल सके। कई जगहों पर उन्होंने जो जमीन दान में दिया वह बाद में छीन लिया गया। कुछ लोगों ने ऐसी जमीन दान में दी जो बंजर थी । इस तरह हृदय परिवर्तन वाला उनका नुस्खा भी बेकार हो गया। भारत में इतनी असमानता थी कि जो थोड़ा सा परिवर्तन हुआ भी वह बहुत कारगर सिद्ध नहीं हुआ, विनोबा जी को सावधान करते हुए कवि ने 'संत विनोबा' कविता लिखी, इसमें व्यंग्य भी है, दुख भी है और जमींदारों की चालाकी से उन्हें आगाह करने का जज़्बा भी—

"सर्वोदय के संत ,तुम्हारे मीठे-मीठे बोल
सत्य-अहिंसा जमींदार के दिल में देंगे घोल ?
लो, वे कोसी का कछार करते हैं तुमको दान !
यहीं रहो तुम, मिल-जुल हम उपजावें खेढ़ी धान!"[4]

पूरी कविता गाँव वालों की भूमि समस्या, उनकी बदतर स्थिति और जमींदारों के शोषण की दर्द भरी दास्तान है । कवि से उनकी हालत देखी नहीं जाती इसलिए एक-एक पंक्ति में दर्द और व्यंग्य उभरा है—

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-45
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-46-47
3. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-49-50
4. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-51

"कहाँ गया वह जिमदारी-उन्मूलन का फर्मान? / छिने जा रहे गाछी-गोचर-पोखर औ शमशान !
गाँव-गाँव में लूट मची है, भैरो बने लठैत / सर्वोदय का धुआँ उड़ा कर चानी काठैं दैत
भूमिहरण करती बिहार में रावण की औलाद / भूमिदान लेने आये हो बात रहे यह याद
कैसा तप, साधना कैसी, कैसा वह भूदान / जिस पर खद्दरधारी जालिम विखरावैं, मुसकान"[1]

यह भारत की असली तस्वीर थी जहाँ जमींदार कांग्रेसी नेता बन गए थे और खुद जमींदारी उन्मूलन का मखौल उड़ा रहे थे, गरीब भूमिहीन मजदूरों को जमीन से बेदखल कर उनका शोषण कर रहे थे। ऊपर से वे भूमिदान का दिखावा कर रहे थे और भीतर जमीन हड़प रहे थे। ऐसे ही शोषक राजनेताओं से संत विनोबा को कवि सावधान कर रहे हैं। ये नेता सभी दलों में थे और इनकी कथनी-करनी में फर्क था इन्होंने शासन और सत्ता में रहते हुए सरकारी फर्मान को मजाक बना दिया। आजादी के बाद जो सबसे बड़ा परिवर्तन हो सकता था 'भूमि सुधार' का, वह कई जगहों पर नहीं हो सका, इन्हीं शोषक राजनेताओं के कारण। या तो वे राजनीति में सक्रिय थे या इन्हें राजनीतिक संरक्षण प्राप्त था। निम्न-वर्गीय जनता का कोई सुनने वाला नहीं था क्योंकि उसके पास कुछ नहीं था। संविधान लागू हो गया लेकिन उन्हें अधिकार नहीं मिला। इस स्वतंत्रता को अपनी दहलीज में ही शोषक वर्ग ने कैद कर दिया था। नागार्जुन ने साफ-साफ कहा है–

"कांग्रेसी जब नहीं बुनेंगे बेदखली की जाल
सबका उदय तभी होगा, तब सब होंगे खुशहाल
आठों पहर यहाँ बेदखली, कुर्की साँझ परात।
हम क्या जानै संत, तुम्हारे भूमिदान की बात?"[2]

नागार्जुन देख रहे थे कि किस तरह अंग्रजों के पिट्ठू ये जमींदार रातों रात चन्दा देकर कांग्रेसी हो गए और आजादी के बाद सत्ता तंत्र को कब्जे में कर लिया। त्याग और बलिदान करने वाले सच्चे नेता या तो किनारे कर दिए गए या उसी में शामिल हो गए। स्थानीय और प्रान्तीय स्तर के अधिकांश नेता लूट-खसोट में शामिल हो गए। बात-बात में गाँधीजी की दुहाई देने वाले ये नेता सत्य, अहिंसा के दलाल बन गए। 'स्वदेशी शासक' कविता में कवि ने ऐसे ही नेताओं की पोल खोली है। इनको पहचानने में नागार्जुन से कहीं चूक नहीं हुई। इन्होंने साफ-साफ लिखा–

"बात बनाओ / करो बहाने , / गप्पें मारो / लो जँभाइयाँ,
ताजा-ताजा माल उड़ाओ / चाँदी का मुँह, कंचन की है जीभ तुम्हारी
चरण तुम्हारे गगन बिहारी
*** * * * * * ***
हमें सीख दो शान्ति और संयत जीवन की / अपने खातिर करो जुगाड़ अपरिमित धन की
बेच-बेच कर गाँधी जी का नाम / बटोरो बोट / हिलाओ शीश
निपोड़ो खीस / बैंक बैलेन्स बढ़ाओ / राजघाट पर बापू की बेदी के आगे अश्रु बहाओ
तैरो घी के चहबच्चों में, अमरित की हौदी में बाबू खूब नहाओ
हमें छोड़ दो राम-भरोसे / जियें तो भले, मरें तो भले ,
*** * * * * * ***

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-51-52
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-51

घर बाहर भर गया तुम्हारा / रत्ती भर भी हुआ नहीं उपकार हमारा
व्यर्थ हुई साधना त्याग कुछ काम न आया / कुछ ही लोगों ने स्वतंत्रता का फल पाया
* * * * * * *

इसीलिए क्या लाठी गोली के प्रहार हमने थे झेले ?
इसीलिए क्या डंडा बेड़ी डलवाई हाथों-पैरों में ? / इसीलिए क्या जेलों में जिन्दगी बिताई ?
* * * * * * *

इसीलिए क्या परम पवित्र तिरंगा झंडा तुमको हमने दिया थामनें
इसीलिए क्या तुमको हमने अपने आगे खड़ा किया था ?"[1]

एक-एक पंक्ति में सच्चाई का दर्द और जनता का दुख मौजूद है। यह कविता 1951 ई. में छपी थी लेकिन तब से लेकर आज तक नेताओं के मूल चरित्र में कोई बदलाव नहीं आया, यदि आया है तो यह कि पहले ये कम लूटते थे अब उसकी मात्रा बढ़ गई। भारतीय राजनीति एक ऐसे शोषक रंगमंच की तरह हो गई है जहाँ पाखण्ड पूर्ण अभिनय द्वारा नेता जनता का मन जीतता है और वर्षों तक सत्ता का सुख लूटता है। जनता भोली है, अज्ञानी है, असावधान है वह उसका लाभ उठाता है और देश और जनता का अहित करता जाता है।

गाँधीजी रामराज्य का सपना देखा करते थे । वे समाज का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। समाज के सबसे पिछड़े व्यक्ति को जब तक आधार भूत सुविधाएँ (रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य) न हो जाए तब तक आजादी अधूरी है। आजादी के बाद रामराज्य का सपना बहुत जल्दी टूट गया, स्वशासन इतना ढीला-ढ़ाला, अत्याचारी होगा यह किसी ने नहीं सोचा था। नागार्जुन ने 'रामराज्य' कविता 1949 ई. में लिखी लेकिन उनका व्यंग्य उस समय भी उतना ही सटीक था जितना आज प्रासंगिक है। व्यवस्था की पोल खोलते हुए वे लिखते हैं–

"लाज शरम रह गयी न बाकी गाँधी जी के चेलों में
फूल नहीं, लाठियाँ बरसतीं रामराज के जेलों में
* * * * * * * * *

अन्दर-अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं
जमींदार हैं साहुकार हैं बनिया हैं व्योपारी हैं
गाँव-गाँव की, शहर-शहर की, जिले-जिले की सूबों की
काँग्रेस के अन्दर घुस आए जितने भी अत्याचारी हैं
* * * * * * * * *

लंदन वाशिंगटन जा रहे उड़-उड़कर अब नेतागन
दुनिया भर के बटमारों से करवाने को गठबंधन
* * * * * * * * *

खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है
बिड़ला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दीवाली है
जोर-जुलुम की आँधी चलती बोल नहीं कुछ सकते हो
समझ न पाता हूँ कि हकूमत गोरी है या काली है
* * * * * * * * *

वतन बेचकर पंडित नेहरू फूले नहीं समाते हैं

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-92

बेशर्मी की हद है, फिर भी बातें बड़ी बनाते हैं
अंग्रेजी अमरीकी जोकों की जमात में हैं शामिल
फिर भी बापू की समाधि पर झुक-झुक फूल चढ़ाते हैं
* * * * * * * * *

हिन्द आजकल अमरीका से बंदूकें मँगवाता है
टुरूमैन ही मानों इस धरती का भाग्य विधाता है
रामराज में अबकी रावन नंगा होकर नाचा है
सूरत शकल वही है भैया बदला केवल ढ़ाँचा है
नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपने ही हाथों
भारत माता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है
* * * * * * * * *

सच कहने वालों को भैया , पुलिस पकड़ ले जाती है
चापलूस ही करते हैं, इन मिनिस्टरों का अभिनन्दन
वतन नहीं है खतरे में, खतरे में हैं ये नेतागन "[1]

गाँधी जी के रामराज्य पर यह रावणराज कितना भयंकर है इसे पढ़कर ही देखा जा सकता है। नागार्जुन ने नेताओं, जमींदारों, साहूकारों, व्यापारियों के शोषण की पोल साफ-साफ भाषा में खोल दी है। देशी-विदेशी शोषक मिलकर किस तरह देश का, जनता का शोषण कर रहे हैं यह साफ जाहिर है। दुख की बात है आजादी के बाद भी हमारा शोषण नहीं रुका, पहले विदेशी लूटते थे अब देशी नेता लूटने लगे। यहाँ तक की जवाहर लाल जी की विदेश नीति भी इस देश के लिए घातक साबित हुई। हर बात में विदेश का सहारा लेना, हर चीज के लिए उन पर निर्भर रहना कहीं से बुद्धिमानी नहीं थी। कर्ज लेकर तो और भी बुरा किया उन्होंने। यह कर्ज नहीं आर्थिक गुलामी का पट्टा था जिसे हम अपनी मर्जी से अपने गले में डाल रहे थे। आज भारत के ऊपर इतना कर्ज है कि यहाँ का बच्चा-बच्चा कर्ज में डूबा हुआ है, और कर्जदार आदमी का सर हमेशा उस देश के सामने झुका रहता है जिससे उसने कर्जा लिया है, हमारा वही हाल है। अमेरीका जैसे समृद्ध देश के आगे हम इसलिए लाचार हो जाते हैं। गाँधी जी ने स्वदेशी और स्वावलंबन का पाठ पढ़ाया था। अपनी जरूरतों को सीमित करो और स्वयं अपनी जरूरतों को पूरा करो, उसी का नतीजा था 'करघा' लेकिन नेहरू जी के विकास का (मॉडल) प्रारूप इस विशाल आबादी वाले अशिक्षित देश के लिए सही साबित नहीं हुआ, यह हम 50 वर्षों के अनुभव से कह सकते हैं। उनके विकास के प्रयास पर प्रश्न-चिह्न उठाना उचित नहीं लेकिन इस देश के विकास का उनका तरीका त्रुटिपूर्ण अवश्य था जिसका खामियाजा पूरा देश भुगत रहा है। अन्य आजाद देशों के विकास को देखकर कम से कम यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है। रूस और चीन का उदाहरण हमारे सामने है उन लोगों ने आज जो भी तरक्की की है वह अपनी विकास नीतियों और कठोर शासन के कारण। यदि इरादे मजबूत हों और प्रयास ईमानदार हों तो कोई कारण नहीं कि देश का विकास तेजी से न हो। लेकिन विकास कैसे होगा जब–

"एक ही उल्लू काफी है बर्बाद गुलिस्तां करने को
हर शाख पे उल्लू बैठा है, अंजामें गुलिस्तां क्या होगा।"[2]

हमारा देश कहने को तो समाजवादी था किन्तु इसका अधिकांश लाभ पूँजीवादी उठा ले गए। आबादी

---

1. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-62-63
2. स्रोत-कैलाश चन्द्र अग्रवाल (संकलनकर्ता एवं संपादक), गृहस्थ-गीता, पृ. सं.-404

बढ़ती गई, जनता की गलतियों और नेताओं की लूटनीति के कारण देश पीछे की ओर खिसकता गया। जो विकास हुआ उसकी गति बहुत धीमी थी फलतः विश्व के सामने हम एक पिछड़े राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान बना सके जबकि न यहाँ जन की कमी है न धन की, न दिमाग की, न मेहनत की, न हौसले की लेकिन अव्यवस्था ने हमें कहीं का नहीं रखा और इसके जिम्मेदार यहाँ के नेता हैं जिनके हाथ में देश की बागडोर थी।

आजादी के पहले राजनीति में प्रवेश करना अपने देश को आजाद कराने के लिए था, अंग्रेजों को हटाने और स्वशासन के लक्ष्य के लिए देशभक्तों ने अपनी जान कुर्बान कर दी लेकिन बाद में यह धंधा बन गया। अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए पूँजीपति, जमींदार और उच्च वर्ग बहुत तेजी से इसमें शामिल हो गए और इसे धंधा बना दिया, इससे कई गड़बड़ी हुई–

1. देश और जन हित की भावना गौण होते-होते समाप्त हो गई।
2. अपना स्वार्थ सर्वोपरि हो गया और परिवारवाद को बढ़ावा मिला।
3. सत्ता पाने के लिए वैध-अवैध, नैतिक-अनैतिक रास्ता अपनाने के लिए लोग तैयार हो गए।
4. चुनाव जीतना ही नेताओं का लक्ष्य हो गया।
5. चुनाव में पैसा महत्त्वपूर्ण हो गया, अशिक्षित जनता को थोड़ा सा लोभ देकर वे वोट खरीदने लगे और सत्तातंत्र पर कब्जा जमाने लगे।
6. सत्तातंत्र को हथियाने के चक्कर में वे अपराध का भी सहारा लेने लगे , जिससे राजनीति में अपराधीकरण को बढ़ावा मिला।

गाँधीवादी युग में राजनीति का आदर्श था-त्याग, नैतिकता, देशसेवा। अब हो गया स्वार्थ, सत्ता और पैसा। धीरे-धीरे स्वार्थी नेताओं की संख्या बढ़ती गई ईमानदार और सच्चे नेता बूढ़े होते गए, मरते गए राजनीति के क्षेत्र से हटते गए और नए नेताओं का पदार्पण होता गया। नागार्जुन ने इन्हीं बिन्दुओं को अपनी कई कविताओं में व्यंग्यपूर्ण ढ़ंग से उठाया है, 'पुलिस आगे बढ़ी' कविता में वे लिखते हैं–

"धंधा पालिटिक्स का सबसे चोखा है / बाकी तो ठगैती है, बाकी तो धोखा है
कन्धों पर जो चढ़ा ,वो ही अनोखा है / हमने कबीर का पद ही तो घोखा है"[1]

दूसरी जगह उन्होंने नेताओं की इस प्रवृत्ति पर दूसरे शब्दों में चोट की है–

"जिन वीरों ने कसमें खायीं राजघाट पर, / वे सारे बेहोश पड़े हैं खाट-खाट पर
*** * * * * * * * ***

पुतले हैं वे स्वार्थ-सूत्र में टंगे हुए हैं / छैल-छबीले जादूगर हैं, रंगे हुए हैं
*** * * * * * * * ***

कुर्सी-कुर्सी गद्दी-गद्दी खेल रहें हैं / घटक तंत्र का भ्रूणपात ही झेल रहे हैं
जोड़-तोड़ के सौ-सौ पापड़ बेल रहे हैं / भारत-माता को खाड़ी में ठेल रहे हैं"[2]

इन नेताओं ने राजनीति और सत्ता को खेल बना दिया है, इनके लिए यह चारागाह है जहाँ ये जनता के भविष्य को चर रहे हैं। एक अन्य कविता में कवि ने लिखा है–

"अच्छा हुआ, खूब हुआ ! / हम गए जीत जी / तुम गए हार जी
तुम गए जीत जी / हम गए हार जी / गद्दी के खेल में
कुर्सी के खेल में / अपने ही दाँव से / अपने ही पेंच से / हम भी गिर पड़े

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-118

2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-82

तुम भी गिर पड़े / तुम गए हार जी / हम गए जीत जी . . . . .''[1]

इस हल्की-फुल्की कविता में नेताओं की शिकारी मनोवृति पर कितना गम्भीर व्यंग्य है यह पढ़कर ही समझा जा सकता है। 'दलबदलू बुजुर्ग' कविता में कवि ने नेताओं के स्वार्थी चरित्र को दर्शाया है। ये नेता किसी दल, किसी विचार धारा, किसी मूल्य से जुड़े नहीं होते । पैसा और हर तरह का लोभ-लाभ इनका ईमान है, जिधर फायदा होगा ये उधर ही चले जाएँगे कवि ने साफ-साफ शब्दों में लिखा है–

"दरअसल अपनी तो नीयत वही है / लाभ-लोभ, भीतरघात, आदत रही है
अपनी तो नीयत वही / आदत वही है . . .''[2]

स्वार्थ के अंधे ये नेता न दल का मान रखते हैं न अपने दल के अन्य नेताओं का । अन्दरुनी उठा-पटक, खींच-तान इनका स्वभाव है-

" एक-दूसरे को धकिया कर कैसे भला अकड़ता है
चपतें लग रहा है, कैसे, कैसे कान पकड़ता है
निजी स्वार्थ के आगे कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है
कांग्रेसी ही कांग्रेसी से देखो कैसे लड़ता है ।''[3]

अन्दरुनी महाभारत के इस कुरूक्षेत्र में आखिर भारतमाता और यहाँ की जनता को हारना ही था । जिस प्रजातंत्र की स्थापना में कितने शहीदों की जान गई, कितने वीरों नें वर्षो तक जेल की यातना सही उसी की कीमत स्वार्थी नेताओं के लिए कुछ नहीं रहा । लोभ, लालच की ऐसी अग्नि प्रज्वलित हुई जिसमें प्रजातंत्र का होम हो गया, इसमें जमींदार, सामंत और नेतागण की बराबर हिस्सेदारी रही–

"सामन्तों ने कर दिया प्रजातंत्र का होम / लाश बेचने लग खादी पहने डोम
खादी पहने डोम लग गए लाश बेचने / माइक गरजे, लगे जादुई ताश बेचने
इन्द्रजाल की छतरी ओढ़े श्रीमन्तों ने / प्रजातंत्र का होम कर दिया सामन्तों ने"[4]

प्रजातंत्र शोषणमुक्त, समतायुक्त व्यवस्था है जो आधुनिक युग में विकास का मार्ग प्रशस्त करता है किन्तु हमारे देश में प्रजातंत्र की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले बहुत कम लोग हैं । उनके अंदर प्रारम्भ से ही स्वार्थ इतना प्रबल रहा है कि वे समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व के सिद्धान्त को मानने से इन्कार करते रहे। वर्षो से विभक्त इस देश के लोग एक दूसरे को अपने से नीच मानते रहे और उच्च वर्ण-निम्न वर्ण पर शासन करना अपना अधिकार समझता रहा यही कारण है कि जातिवाद की जड़ यहाँ काफी गहरी है और तमाम प्रयासों के बावजूद इसका उन्मूलन नहीं हो सका । जहाँ का शिक्षित और चेतना सम्पन्न वर्ग ही जातिवाद का संरक्षक हो वहाँ बदलाव की प्रक्रिया बहुत धीमी होगी यही कारण है कि आजादी मिल गई, हम प्रजातांत्रिक देश में रहने भी लगे लेकिन लोगों ने सच्चा प्रजातंत्र लागू नहीं होने दिया । व्यवहार में हम अर्धविकसित, अर्धसामन्ती समाज में जीते रहे । यह 'जातिवाद' समाज से राजनीति में भी आया और इससे अधिकांश लोगों का अहित हुआ, यह सर्वांगीण विकास में बाधक बना। नागार्जुन ने कहीं-कहीं इस प्रवृत्ति का उल्लेख किया है–

---

1. नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-30
2. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-143
3. नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-127
4. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-55

"आरक्षण का संरक्षण क्या / नौकरशाही का भक्षण क्या
भ्रष्टतंत्र का है लक्षण क्या जातिवाद की मूल-भटक है / घटकवाद की उठा पटक है "[1]

आज हमारा समाज पतन के जिस गर्त तक पहुँच चुका है वहाँ तक लाने में भारतीय राजनीति का भी हाथ है। भारतीय राजनीति में 'परिवार वाद' का प्रवेश इसका पहला कारण है। जवाहरलाल नेहरू ने जिस परिवार वाद का पालन-पोषण राजनीति के आँगन में किया आज उसका विकृत और वीभत्स रूप हम हर जगह देख रहे हैं। मेरे बाद मेरा ही बेटा राजगद्दी पाए, मंत्री बने, यही अधिकांश राजनेताओं की इच्छा रही। योग्यता-अयोग्यता की बात गौण हो गई। रुचि-अरुचि, इच्छा-अनिच्छा का कोई ध्यान नहीं रखा गया। जवाहरलाल के बाद इंदिरा गाँधी, इंदिरा गाँधी के बाद संजय गाँधी, संजय गाँधी के बाद राजीव गाँधी और उनके परिवार वाले प्रारम्भ से ही भारतीय राजनीति के शीर्ष पर रहे। यह पारिवारिक भ्रष्टाचार सर्वत्र फलता फूलता गया और क्या पक्ष-क्या विपक्ष सबने इस गंगा में गोते लगाए। यह देखा नहीं गया कि उसने देश की जनता की कितनी सेवा की है, कितने आन्दोलनों का संचालन किया है, बस किसी प्रतिष्ठित राजनेता का पुत्र या पारिवारिक सदस्य है तो फिर वह सांसद और मंत्री बनने के काबिल है। इससे कर्मठ और संघर्षशील नेताओं को काफी झटका लगा । जीवन भर दल, देश और जनता का काम करने वाले इन नेताओं के मन में यह कुंठा पनपी कि वे कांग्रेस में रहकर कभी सत्ता के केन्द्र में नहीं पहुँच सकते। कांग्रेस के पतन का पहला कारण यह था। दूसरा इससे चापलूसी की शुरूआत हुई। इंदिरा गाँधी के पीछे सच्चे, कर्मठ, ईमानदार नेताओं की भीड़ नहीं जमा हुई बल्कि उनकी हाँ में हाँ मिलाने वाले, गलत सलाह देने वाले चापलूस नेताओं की भीड़ इक्ट्ठी हो गई जिससे देश का बड़ा अहित हुआ। धीरे-धीरे सच्चे नेताओं का भारतीय राजनीति से पलायन होने लगा या वे उपेक्षित होकर हटा दिए गए। एक बार पतन की शुरूआत हुई तो उसकी मात्रा बढ़ती गई। धीरे-धीरे सारे पुराने नेता कांग्रेस को छोड़ते गए। इससे कांग्रेस तो कमजोर हुई ही, स्वार्थ ने इन नेताओं को भी एक मंच पर रहने नहीं दिया। ये भी अपनी डफली अपना राग बजाते रहे और अलग-अलग मंच पर चढ़कर अपनी नेतागिरी शुरू की किन्तु अंततः वे कोई बड़ा परिवर्तित नहीं कर पाए। 1967 में पहली बार कांग्रेस को झटका लगा और कई राज्यों में संविद सरकार बनी, जो अधिक दिन नहीं चल सकी। 1977 में पुनः गैर कांग्रेसी सरकार केन्द्र में बनी किन्तु वह भी अल्पजीवी साबित हुई। फिर 1989 में व्यापक परिवर्तन हुआ जिसमें कई राज्यों में विपक्षी दलों की सरकार बनी और पहली बार कई राज्यों में गैर कांग्रेसी शासन ने अपना कार्यकाल पूरा किया। इसके पहले केरल, तामिलनाडु और प. बंगाल में ऐसा हुआ था।

'मंत्र' कविता में नागार्जुन ने इस स्वार्थी परिवारवाद का उल्लेख बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से किया है–

"ओं दलों में दल अपना दल, ओं
*** * * * * * ***
ओं गद्दी पर आजन्म वज्रासन / ओं ट्रिब्युनल ओं आश्वासन
ओं गुट निरपेक्ष सत्तासापेक्ष जोड़तोड़
*** * * * * * ***

---

1. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-70-71

ओं अपोजिशन के मुंड बनें तेरे गले का हार
* * * * * * *
ओं हमेशा हमेशा करेगा राज मेरा पोता
* * * * * * *
ओं दुर्गा दुर्गा दुर्गा तारा तारा तारा / ओं इसी पेट के अन्दर समा जाए सर्वहारा"[1]

क्या भारतीय राजनीति का यही सच नहीं है। जवाहरलाल, चरण सिंह, विजया राजे सिंधिया, जगजीवन राम, गोविन्द वल्लभ पंत या लालू यादव एंव अन्य कई नेताओं ने इस परिवादवाद के द्वारा सत्तातंत्र पर कब्जा बनाए रखा है। इस कविता पर टिप्पणी करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है—**"नागार्जुन की इसी साहसिक प्रतिभा की अमर सृष्टि है 'मंत्र कविता', जो कलात्मक प्रयोग में भी अप्रतिम है। यदि निराला की 'कुकुरमुत्ता' सन् 40 की मनःस्थिति की ऐतिहासिक दस्तावेज है तो सन् '69, की मनःस्थिति को सशक्त, वाणी नागार्जुन की 'मंत्र कविता' में ही मिली। विडंबना यह है कि 'ओं हमेशा, हमेशा करेगा राज मेरा पोता'—यह उक्ति जैसे भविष्यवाणी की तरह सच होने को आ गई।"**[2]

अपरिपक्व और अशिक्षित प्रजातंत्र में तो यह होना ही था। जब हम जनता के प्रति लापरवाह रहेंगे और स्वार्थ हमारा धर्म होगा तब देश और जनता की बात करना बेमानी है। इन नेताओं ने देश का कितना और अपना कितना भला किया है यह जगजाहिर है। इसमें से कुछ ने देश के लिए त्याग भी किया है आन्दोलनों में मार भी खाई है लेकिन उसका प्रतिदान इन्होंने जो इस देश से वसूला है वह कई गुना अधिक है। उन्होंने अपनी सेवाओं को बड़े भाव में भुनाया है, सत्ता मिलते ही ये देशभक्त नेता इतने स्वार्थी हो जाएँगे यह किसे पता था?

भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार का घुन बहुत जल्दी लग गया। सत्ता के शीर्ष पर बैठे नेतागण जहाँ थे वहीं देश को लूटने, ठगने का प्रयास करने लगे। बहुत तेजी से भ्रष्टाचार का रोग सब ओर फैलने लगा और आम जनता भी इसकी शिकार हो गई। अगुआ के फिसलने का असर पूरे समाज पर पड़ा। नागार्जुन की कविताएँ इसकी साक्षी हैं। इस भ्रष्टाचार को नागार्जुन ने आजादी के बाद ही पहचान कर व्यक्त किया था, 'स्वदेशी शासक' कविता 1951 ई. की ही है लेकिन उसमें स्पष्ट ढंग से उन्होंने लिखा है।

यह भारतीय नेतागण के भ्रष्ट होने की कहानी है जिसमें जनता और देश की चिंता से रहित सिर्फ नेता का स्वार्थ महत्त्वपूर्ण हो गया। वे अपना घर भरने लगे। ईमानदारी, देशभक्ति, देश की सेवा जैसी भावना से वे बहुत ऊपर उठ गए।

देश और जनता की हालत दिन व दिन बिगड़ती चली गई और नेता भ्रष्टाचार के विमान पर सवार समृदधि के शिखर की शैर करने लगे। कवि ने इस विसंगति का बड़ा व्यंजक चित्र खींचा है—

---

1. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-153
2. नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-6-7

" मँडराती है यम की नानी खेतों में, खलिहानों में
भूख अकाल, महामारी की फसल उगी मैदानों में
लूट पाट की होड़ मच गई, नरभक्षी हैवानों में
लटक रहा है ताला गल्ले की सरकारी दूकानों में
बिजली की नीली लाइट में सजा चोर बाजार
गाँधी टोपी की किश्ती में कलियुग हुआ सवार
पीच रोड पर मचल रही है तीस हजारी कार
*** * * * * * * ***
मिनिस्टरों के गालों पर देखो तो फिर भी लाली है
बात-बात पर बड़ी बात, पग-पग पर खामख्याली है"[1]

जनता भूखों मर रही है और नेताओं के गाल चिकने हो रहे हैं, जनता को खाना नहीं मिल रहा है और नेतागण कार में धूम रहे हैं यह भ्रष्टाचार का ही नमूना है, सत्ता तंत्र के दुरूपयोग की ही दास्तान है। कवि सीधे-सीधे न लिखकर जिस विसंगत स्थिति को हमारे सामने रखते हैं उससे चीज स्पष्ट हो जाती है।

यह भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक फैलता जा रहा था, आम आदमी भी जीवन की सामान्य सुविधाओं के लिए भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाने लगा यह बहुत खतरनाक बात थी लेकिन जब अगुआ ही भ्रष्ट हों तो अनुयायियों को कौन रोक सकता था। भारत में इतने निम्नस्तर पर भ्रष्टाचारी शुरू हो गई कि देखकर अफसोस होता है। 'नया तरीका' कविता में उन्होंने 'राधे' के माध्यम से आम लोगों की परेशानी और उसके भ्रष्ट होने की कहानी लिखी है–

"दो हजार मन गेहूँ आया दस गाँवों के नाम / राधे चक्कर लगा काटने, सुबह हो गई शाम
सौदा पटा बड़ी मुश्किल से, पिघले नेताराम / पूजा पाकर साध गये चुप्पी हाकिम-हुक्काम
भारत-सेवक जी को था अपनी सेवा से काम / खुलाचोर बाजार, बढ़ा चोकर चूनी का दाम
भीतर झुरा गयी ठठरी, बाहर झुलसी चाम / भूखी जनता की खातिर आजादी हुई हराम
नया तरीका अपनाया है राधे ने इस साल / बैलों वाले पोस्टर साटे, चमक उठी दीवाल
नीचे से लेकर ऊपर तक समझ गया सब हाल / सरकारी गल्ला चुपके से भेज रहा नेपाल"[2]

इस छोटी कविता के रग-रग से भारत में फैले भ्रष्टाचार की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। भारत के सेवकों को अब अपनी सेवा से फुर्सत नहीं ।चोर बाजार बढ़ता चला जा रहा है, कोई देखने वाला नहीं या तो वे कानून को भी साथ मिला लेते हैं या उनकी आँखों में धूल झोकते हैं। इधर राधे सरकारी गल्ले की तस्करी कर रहा है नेताओं, अफसरों की मदद से। हमने आजादी तो हासिल कर ली लेकिन देशभक्ति का जज़्बा हमारे अंदर नहीं पनपा। हमने अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं के लिए आसान तरीका अपनाया, हमने भ्रष्टाचारी को गले लगाया और सारी नैतिकता को ताख पर रख दिया। कोई भी देश वहाँ की जनता की ईमानदारी पर टिका होता है जब आम जनता भ्रष्ट हो जाती है तो व्यवस्था टूट जाती है और पतन प्रारम्भ हो जाता है। भारत के पतन की दास्तान वहीं से शुरू हुई जिसे कम लोगों ने बचाने का प्रयास किया। अधिकांश लोगों के भ्रष्टाचार ने देश को इतना पिछड़ा, इतना गरीब बना दिया। सर्वसाधनों से सम्पन्न होते हुए भी यह देश दुनिया के सामने भिखमंगा बन गया और इसकी जिम्मेदारी यहाँ के नेताओं की है, प्रशासन की है।

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-127
2. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-128

इस तरह कवि ने कई कविताओं में पूरे तंत्र के भ्रष्ट होने की कहानी लिखी है। अधिक विस्तार में जाना चीजों को दुहराना ही है इसलिए इसे यहीं विराम देना अच्छा है। 'देवी! तुम तो कालेधन की बैशाखी पर टिकी हुई हो' (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-125) एवं 'गुपचुप हजम करोगे' (इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-20) जैसी कविताओं में कवि ने इस भ्रष्टाचार का पर्दाफाश बखूबी किया है।

'प्रजातंत्र' स्वतंत्र भारत की महान उपलब्धि है। हमारे संविधान ने शासन के जनतांत्रिक ढाँचे को स्वीकार कर सबके विकास का मार्ग खोल दिया लेकिन कुछ नेता इसका सहारा लेकर मनमानी करने लगे। उन्होंने दल को अपनी बपौती समझ लिया और देश को अपनी सम्पत्ति, नतीजा हुआ स्वयं अपने सहयोगियों का विरोध। फिर शुरू हुआ विरोध को दबाने का दमनकारी चक्र। हमारे देश के लिए यह अच्छा साबित नहीं हुआ। 5 वर्षों तक हमारा देश राजनीतिक संकट से गुजरता रहा और विकास कार्य अवरुद्ध रहा। 1972 ई. से 1977 ई. तक का समय भारतीय राजनीति का 'काला अध्याय' कहा जा सकता है जब विपक्ष और विरोध से बौखलाकर इंदिरा गाँधी ने देश में तानाशाही रवैया अपनाया और आपातकाल लागू कर दिया। इस क्रम में उन्होंने अपने विरोधियों को कानून की मदद से जेल में भिजवाया, पिटवाया और अत्याचार की सीमा लाँध गईं। जनता की स्वतंत्रता छिन गई, प्रेस पर अंकुश लगाया गया और सत्ता के विरोधियों को क्रूरता से कुचला गया। सत्य और अहिंसा का पाठ पूरे विश्व को पढ़ाने वाले इस देश में ही सत्य की अवहेलना की गई और अहिंसा की हत्या कर दी गई जिससे जनता पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। नागार्जुन ने इस स्थिति पर खुल कर लिखा, सक्रिय एवं सशरीर विरोध किया, जेल गए और शासन का सामना किया।

नागार्जुन ने कुछ कविताओं में उस समय के डर को कविताओं में कैद किया है। 'सूरज सहम कर उगेगा' कविता में उन्होंने लिखा–

"लगता है / हिन्द के आसमान में / अब सूरज सहम कर उगेगा
अपनी किरणें बिखेरेगा डरता-डरता काँपता-काँपता
*** * * * * * * ***
लगता है / हिन्द के आसमान में / सूरज पर भी लागू होंगे
आपातकालीन स्थिति वाले आर्डिनेन्स"[1]

'सूरज' के माध्यम से कवि ने आम जनता के डरे, सहमे होने को बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसी तरह 'सत्य' कविता में उन्होंने 'युग-सत्य' का यथार्थ चित्रण बिम्ब के माध्यम से किया है–

"सत्य को लकवा मार गया है / वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन, सारी रात / वह फटी-फटी आँखों से
टुकुर-टुकुर ताकता रहता है सारा दिन, सारी रात
कोई भी सामने से आए-जाए / सत्य की सूनी निगाहों में जरा भी फर्क नहीं पड़ता
पथराई नजरों से वह यों ही देखता रहेगा / सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात
*** * * * * * * ***
सत्य को लकवा मार गया है / गले से ऊपर वाली मशीनरी पूरी तरह बेकार हो गई है

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-27

सोचना बंद / समझना बंद / याद करना बंद / याद रखना बंद"

*** * * * * * * ***

जी हाँ, सत्य को लकवा मार गया है

उसे इमर्जेन्सी का शॉक लगा है / लगता है, अब वह किसी काम का न रहा"[1]

निश्चय ही किसी देश के लिए यह स्थिति खतरनाक है, यत्रंणादायक है। 'सत्य' यहाँ पर 'पूरा देश' है, उसकी स्थिति सचमुच में लकवा मारने जैसी हो गई थी। जब पूरा देश तानाशाह के चंगुल में फँसा हुआ हो तो राष्ट्र कैसे जिंदा रह सकता है। सत्य का बीमार होना पूरी व्यवस्था के बीमार होने जैसा है। इन कविताओं में कवि के विरोध करने का साहस देखते बनता है । और यह सब अनुशासन बनाए रखने के नाम पर हो रहा था। इसका विरोध जोर पकड़ता गया और एक बड़े आन्दोलन के रूप में देश के सामने आया। छात्रों ने इसे और अधिक उग्र बना दिया । इंदिरा गाँधी का दमन चक्र तेज हो गया और बहुत से नेता इसकी चपेट में आ गए। 'जय प्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की' कविता में उन्होंने जयप्रकाश नारायण पर हुए पुलिस अत्याचार पर लिखा है–

"देवी प्रतिमा चण्ड-मुण्ड को लिये साथ में / हुई अवतरित, बन्दूकें हैं दसों हाथ में

*** * * * * * * * * * * ***

एक और गाँधी की हत्या होगी अब क्या ? / बर्बरता के भोग चढ़ेगा योगी अब क्या?

पोल खुल गयी शासक दल के महामन्त्र की / जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की।"[2]

आपातकाल की स्थिति पर कवि ने इतनी कविताएँ लिखी हैं कि पूरा एक काव्य संग्रह तैयार हो गया-'खिचड़ी विप्लव देखा हमने'। इस संग्रह की कविताएँ आपातकाल का काला चिट्ठा खोलती हैं। उस समय इंदिरा जी के रौद्र रूप को देखकर उन्होंने मूल्यों के विघटन की कहानी लिखी है जिन्हें इन बिन्दुओं में रखा जा सकता है–

(I) उनके लिए संसदीय प्रणाली का कोई मूल्य नहीं।

(II) सत्ता के मद में इन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा कि वे अच्छा कर रही हैं या बुरा।

(III) अपने विरोधियों की क्रूर ढंग से सजा दिलवा रही हैं, उन्हें जेलों में ठूँसा जा रहा है, उनपर अत्याचार किया जा रहा है।

(IV) उनकी जिद्द और तानाशाही की सजा पूरे देश को भुगतनी पड़ी।

इस तरह उस युग ने एक दम्भी शासक के दम्भ का स्वाद चखा, कितनों की जानें गईं, कितने लोग जेल की हवा खा आए, खुद कवि को 13 महीने जेल में रहना पड़ा, ऐसे-ऐसे कितने लोग उसके गुस्से के शिकार हुए। कविता में तो ये घटनाएँ समग्र प्रभाव ग्रहण कर आती हैं उस समय की पत्रकारिता से यदि आँकड़े इकट्ठे किए जाएँ तो स्थिति पूरी तरह स्पष्ट होगी। लेकिन जो भयावह और अंधकार का दृश्य कवि ने आँखों के आगे खींचा है वह अनुमान लगाने के लिए कम नहीं । एक कविता से उदाहरण देकर इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ कविता है 'नये सिरे से'–

"नये सिरे से / घिरे-घिरे से / हमने झेले / तानाशाही के वे हमले

आगे भी झेलें हम शायद / तानाशाही के वे हमले...नये सिरे से घिरे-घिरे से

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-30-31

2. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-15

"बदल-बदल कर चखा करे तू दुख-दर्दों का स्वाद"
"शुद्ध-स्वदेशी तानाशाही आए तुझको याद"
"फिर-फिर तुझको हुलसित रक्खे अपना ही उन्माद"
"तुझे गर्व है, बना रहे तू अपना ही अपवाद"[1]

इस तरह हम देखते हैं कि राजनीति में परिवारवाद, भ्रष्टाचार, तानाशाही प्रवृत्तियों के आ जाने से राजनीति का पतन शुरू हुआ जिससे पूरा देश पतन के गर्त की ओर तेजी से लुढ़कता चला गया। इनके साथ-साथ नेताओं का नैतिक पतन होने से राजनीति में मूल्यों का ह्रास प्रारम्भ हुआ।

कुछ बिन्दु ऐसे हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता

(I) नेताओं का बेईमान हो जाना।
(II) नेताओं का अपराधियों से गठजोड़ हो जाना।
(III) उनका देश, जनता, दल और अच्छे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध न रह जाना।
(IV) चुनावी राजनीति को ही सबकुछ मान लेना।
(V) तिकड़म और जोड़-तोड़ की 'राजनीति' में शामिल हो जाना।
(VI) झूठे वादे करना, जनता को झाँसे में रखने की प्रवृत्ति विकसित होना।
(VII) कथनी-करनी में अंतर आना।
(VIII) नेताओं में नैतिक मूल्यों का ह्रास होना। सच्चाई, ईमानदारी कर्तव्यनिष्ठा, देश भक्ति जैसे गुणों का त्याग कर देना।
(IX) ऐन-केन प्रकारेण सत्ता प्राप्त करना, सत्ता से चिपके रहने के लिए कोई भी रास्ता अपनाने के लिए तैयार रहना।

इन सब बातों का राजनीति में प्रवेश हमारे देश के लिए अच्छा नहीं हुआ। जिस देश को आजादी के बाद कर्मठ और ईमानदार नेताओं की जरूरत थी उनका भ्रष्ट हो जाना इस देश के लिए बहुत भारी पड़ा। उसका परिणाम आज हमारे सामने है, हमारा देश सब कुछ के होते हुए अर्धविकसित, बेरोजगार, गरीब राष्ट्र के रूप में दुनिया के सामने खड़ा है, जो राष्ट्र दुनिया के सामने मजबूत और आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में खड़ा हो सकता था वह आज दर-दर की ठोकर खाने के लिए मजबूर है और यह सब इन्हीं भ्रष्ट नेताओं के कारण है।

2. भारतीय शासन तंत्र : भ्रष्ट तंत्र की दास्तान

क) नेतागण

नेताओं के विसंगत चरित्र पर नागार्जुन ने बहुत सी कविताएँ लिखी है। सबका जिक्र करना यहाँ संभव नहीं यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण कविताओं के माध्यम से हम नेताओं के व्यक्तित्व का दिग्दर्शन करेंगे। नागार्जुन ने इन नेताओं पर लगभग 100 कविताएँ लिखीं हैं। उनकी एक कविता है—'आओ तुमको भली भाँति पहचान गये हम'। इसमें उन्होंनें नेताओं के शोषक-विसंगत चरित्र को खोल कर रख दिया है—

"दाँत निपोड़ो / बोट बटोरो / छाप-छापकर बापूजी के नाम, कोकटी चादर ओढ़ो
ऐलानों के भारी-भारी गोले छोड़ो / दंगल करो; अखाड़ा कोड़ो
टिकटों के खातिर कर लो तुम आपस में ही लत्तम-जुत्तम
ईमानदारी का रिकार्ड यह कैसा उत्तम
है अवाम की बर्बादी का तुम्हें नहीं कुछ भी रंजोग़म

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-107

देशभक्ति का-जनसेवा का नाहक ही भरते आये दम
आओ, तुमको भली भाँति पहचान गये हम / डेमोक्रेसी की कोसी में बाढ़ आ गयी
गुटबन्दी की खाई को चौड़ा बना गयी / जात-पात की रेती पर फिर घास छा गयी
खद्दरधारी घड़ियालों की पलटन तिरंगा चबा गयी
सत्य-अहिंसा की प्रतिमा को दीघा की मेढ़की खा गयी"[1]

अब इससे स्पष्ट और व्यंजक भाषा में क्या लिखा जा सकता है। कई कविताओं में उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि नेताओं के मन में एक ही बात है चुनाव कैसे जीतें और सत्ता सुख कैसे पाएँ। 'बतला दो बापू क्या थे तुम ?' कविता में उन्होंने व्यंग्य करते हुए लिखा है

"निवार्चन के हो हल्ले में / खो गया हाय बहरा विवेक
आपाधापी में सबकी है- / कैसे भी जीतूँ यही टेक! "[2]

इसी तरह उन्होंने नेताओं के मन की बात को स्पष्ट लिख कर व्यंग्य किया है-

"जनता वाले परेशान हैं सबको खुश रखें कैसे
जनता वाले परेशान हैं सत्ता-सुख चक्खें कैसे"[3]

'तीनों बंदर बापू के' कविता में कवि ने इन्हीं नेताओं की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। ये नेता एक नम्बर के झूठे, चालाक और जनता को ठगनेवाले नटवर लाल हैं। पूरी कविता नेताओं के व्यंग्यपूर्ण चरित्र की दास्तान है, एक दो परिच्छेद देखिए-

"सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के
युग पर प्रवचन लाद रहें हैं तीनों बंदर बापू के
सत्य अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
पूँछों से छवि आँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
दल से ऊपर, दल के नीचे तीनों बंदर बापू के
मुस्काते हैं आँखे मींचे तीनों बंदर बापू के
छील रहे गीता की खाल / उपनिषदें हैं इनकी ढाल
उधर सजे मोती के थाल / इधर जमे सतजुगी दलाल
मत पूछो तुम इनका हाल / सर्वोदय के नटवरलाल
मूँड़ रहे दुनिया-जहान को तीनों बंदर बापू के
चिढ़ा रहे हैं आसमान को तीनों बंदर बापू के
करें रात-दिन टूर हवाई तीनों बंदर बापू के
बदल-बदल कर चखें मलाई तीनों बंदर बापू के
गाँधी-छाप झूल डाले हैं तीनों बंदर बापू के
असली क्या हैं, सर्कसवाले हैं तीनों बंदर बापू के
दिल चटकीला, उजले बाल / नाप चुके हैं गगन विशाल

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-64
2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-17
3. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-103

फूल गये हैं कैसे गाल / मत पूछो तुम इनका हाल / सर्वोदय के नटवरलाल"[1]

एक-एक पंक्ति में सत्य की चुभन है, नेताओं के जनशोषक स्वभाव का खुलासा है। कवि ने जनता के सामने इनको नंगा खड़ा कर दिया है लेकिन इनकी खाल बहुत मोटी है, इनपर इसका कोई फर्क नहीं पड़ा।

इसी तरह एक और कविता है 'आये दिन बहार के'। चुनाव लड़ने के लिए किसी प्रतिष्ठित दल का टिकट पाना आसान नहीं। इसके लिए तन-मन-धन की कवायद करनी पड़ती है। कितने तिकड़म के बाद जब टिकट मिलता है तो नेताओं के मन का कमल खिल उठता है, इसी स्थिति पर व्यंग्य करते हुए कवि लिखते हैं–

"'स्वेत-स्याम-रतनार' अँखियाँ निहार के / सिण्डकेटी प्रभुओं की पग-धूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के / खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के आये दिन बहार के।"[2]

इस कविता की व्याख्या करते हुए रामविलास जी ने लिखा है–**"कोई रीतिवादी नायिका-प्रौढ़ा मध्या धीरा आदि-अपने प्रियतम को देखकर इतना प्रसन्न न हुई होगी जितना टिकट पाकर यह कांग्रेसी नेता।....व्यंग्य में गहराई पैदा होती है इस रीतिवादी सन्दर्भ की ओर संकेत से।"[3]**

किस तरह इन्होंने राजनीति को खेल का मैदान बना दिया है और स्वार्थ का खेल खेल रहे हैं। इसपर नागार्जुन की एक कविता है-'फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण सरोवर'। कवि लिखते हैं–

"जिन वीरों ने कसमें खायीं राजघाट पर / वे सारे बेहोश पड़े हैं खाट-खाट पर
*** * * * * * ***

कुर्सी-कुर्सी गद्दी-गद्दी खेल रहे हैं / घटक-तंत्र का भ्रूणपात हो झेल रहे हैं
जोड़-तोड़ के सौ-सौ पापड़ बेल रहे हैं/ भारत-माता को खाड़ी में ठेल रहे हैं
इसीलिए तो मिलता है सरकारी भत्ता / तिकड़म पर हो गयी निछावर शासन सत्ता
महँगाई के सूपनखा के सगे बन्धु हैं / कुटिल क्रूर शोषक समाज के कृपासिन्धु हैं"[4]

कवि उन नेताओं को याद दिला रहा है कि तुमने राजघाट पर जो कसमें खाई थीं उसे तो पूरा करो। कुर्सी और गद्दी ही तुम्हारा अन्तिम लक्ष्य हो गया है इसलिए हर हाल में तुम तिकड़म करके इसे हथियाना चाहते हो। इन कविताओं में नागार्जुन की काव्य भाषा और कला देखने योग्य है।

'लाल भवानी' कविता में भी कवि ने बीच-बीच में नेताओं के विसंगत चरित्र पर व्यंग्य किया है–

"अँग्रेजी, अमेरिकी जोंकें, देशी जोंकें एक हुई, / नेताओं की नीयत बदली भारतमाता टेक हुई,
*** * * * * * ***

कागज की आजादी मिलती ले लो दो-दो आने में
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तैलंगाने में!
*** * * * * * * ***

ऊपर वाले बैठे-बैठे खाली बात बनाते हैं; / बाढ़-अकाल-महामारी में काम नहीं कुछ आते हैं
देश-भक्ति की सनद मिल रही आए दिन शैतानों को,

---

1. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-19
2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-47
3. रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. सं.-156
4. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-82

डाँट-डपट उपदेश मिल रहे दुखी मजूर किसानों को,

*** * * * * * * ***

नेता परेशान हैं जनता का तूफान दबाने में
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तैलंगाने में।"[1]

इन नेताओं में कोई नैतिकता नहीं है। ये अपने स्वार्थ में अंधे हैं इसके लिए आगे इन्हें न देश दिखाई देता है न दल। ये आपस में ही उठा-पटक में लगे रहते हैं-

"एक दूसरे को धकिया कर कैसे भला अकड़ता है
चपतें लगा रहा है कैसे, कैसे कान पकड़ता है
निजी स्वार्थ के आगे कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है
कांग्रेसी ही कांग्रेसी से देखो कैसे लड़ता है"[2]

इन नेताओं ने संसद और विधान सभाओं की गरिमा का भी ध्यान नहीं रखा। ये बार-बार अपने विरोधियों से हाथा-पाई कर लेते हैं और बच्चों की तरह लड़ पड़ते हैं, इसी पर कवि ने व्यंग्य करते हुए लिखा है–

"देखा सबने चिड़ियाखाना / सुना चीखना और चिल्लाना
धवल टोपियाँ फेंक रहे थे / मगर गधों से रेंक रहे थे
धोती-कुर्तों में थे हाथी / सुअर-ऊँट थे जिनके साथी
बाघों का था चश्मा काला / डरकर भागा माइक वाला
पर्ची बाँट रहे थे बन्दर / गैंडा था पर्दे के अन्दर
बैलों के पीछे अनबोले / मचल रहे थे साँप-सपोले
यार पास था, कार पास थी / बुढ़िया कंगारू उदास थी
सीमा के जंगल की बिल्ली / जाने कैसे पहुँची दिल्ली
सुना चीखना और चिल्लाना / सबने देखा चिड़ियाखाना।"[3]

एक अन्य कविता में नागार्जुन ने जनता को इन नेताओं से सावधान करते हुए लिखा है–

"गाँधी-तिलक-सुभाष सभी से परिचित उनकी आँत!
वही इन्दिरा की गर्दन पर चले गड़ाने दाँत!
उनकी गद्दारी के आगे हुआ विभीषण मात!
खद्दरधारी बाघों की वो रही पाँत की पाँत!
गाँधी-तिलक-सुभाष, सभी से परिचित उनकी आँत!
मायावी हैं, बड़े घाघ हैं, उन्हें न समझो मन्द!
तक्षक ने सिखलाये उनको 'सर्प नृत्य' के छन्द!
अजी, समझ लो, उनका अपना नेता था जयचन्द
हिटलर के तम्बू में अब वे लगा रहे पैबन्द।
मायावी हैं, बड़े घाघ हैं, उन्हें न समझो मन्द।"[4]

'पुरानी जूतियों का कोरस' कविता प्रतीकात्मक ढंग से नेता के नैतिक चरित्र की पोल खोलने वाली कविता है। उसमें सभी नेता जूते के माध्यम से अपनी शान बधारते हैं और अपने अहं का प्रदर्शन करते नजर

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-49-50*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-127*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-164*
4. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस. पृ. सं.-72*

आते हैं।

ये नेतागण अपनी स्वार्थ की राजनीति करने के लिए जाति और धर्म का इस्तेमाल करते हैं। जनता को भड़काकर ये उन्हें बाँटते हैं और नफरत की आग में अपने स्वार्थ की खिचड़ी पकाते हैं, कवि ने ठीक ही व्यंग्य करते हुए लिखा है-

"कुछ मुखिया कुछ बने विधायक / कुछ हो बैठे लोक सभाई
बोल बड़े हैं नीयत ओछी / रग-रग में घुल रही मलाई
जात-पाँत के गिरधारी हैं / नारों के ही नाग नथैया
प्रजातन्त्र की गोल-झील में / संविधान की खेते नैया"[1]

कहीं-कहीं कवि ने बड़ी कलात्मकता से मानो नेताओं के मन की बात कविता में खुले आम लिख दी है, एक कविता है 'दलबदलू बुजुर्ग' । कवि ने स्वार्थी नेता के अवचेतन मन को खोल कर रख दिया है-

"दर-असल / अपन वही हैं / वही रहेंगे, हाँ वही / न बदले है, न बदलेंगे /.....
दर असल, अपनी तो नीयत वही है / लाभ-लोभ, भीतरघात, आदत रही है
अपनी तो नीयत वही / आदत वही है....."[2]

ये नेता अपराधियों से भी मिले हुए हैं और देश का सत्यानाश कर रहे हैं। अपराधियों का नेताओं से गठबन्धन देश और जनता के लिए खतरनाक साबित हुआ। कवि ने उन्हीं पर व्यंग्य किया है-

"अपराधों की राख मलो तुम / लोकतंत्र के दर्पण में
बीस गुना चमकेगा मुखड़ा / फिर तो आत्मसमर्पण में!!"[3]

स्वार्थ ने इन नेताओं को अपराध करने के लिए उकसाया और ये अपराध की दुनिया में चले गये। 'नर्सरी राइम' कविता में कवि ने नेताओं के इसी चरित्र का चित्रण किया है—

"अन्दर बाहर धींगा मुश्ती / परमारथ में भारी सुस्ती
स्वारथ में तो बेहद चुस्ती / एक दूसरे की जड़ काटें
मन में खोट, बदन भर चोटें / तकरीरों से अग-जग पाटें
*** * * * * * * ***

सूखा-राहत सुपरफास्ट है / अब कुर्सी का चांस लास्ट है
फौरन-फौरन जल्दी-जल्दी / जमा करो तुम धनिया-हल्दी
जीरा-मेथी मिर्च मसाला / सारा कुछ लॉकर में डाला
छोड़ गए हैं सारे साथी / द्वार खड़े हैं बूढ़े हाथी
एनी ह्वेयर, एनी टाइम / क्राइम-क्राइम क्राइम क्राइम"[4]

एक-एक पंक्ति से नेताओं का चारित्रिक सत्य टपक रहा है, लगता है नागार्जुन को इनके रग-रग, रेशे-रेशे की जानकारी है। वे इस जानकारी का इस्तेमाल इन कविताओं में करते हैं। सबसे बड़ी बात है मन में छुपी हुई भावनाओं को काव्य में स्पष्ट रूप से प्रकट कर देना।

प्रजातंत्र की कुछ खामियों का शिकार है हमारा देश और इसकी राजनीति। इसमें किसी भी आदमी को छूट है कि वह चुनाव लड़े और जीत जाने पर विधान सभा, लोक सभा जाए। अनपढ़ एवं अशिक्षित

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-124
2. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-142-143
3. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-145
4. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-24-25

लोगों के लिए भी उसका द्वार खुला है लेकिन जो व्यक्ति स्वयं अशिक्षित है उसे कदम-कदम पर परेशानी होगी ऐसे लोगों से क्या उम्मीद की जा सकती है, नागार्जुन ने एक कविता लिखी है- 'अभी-अभी, उस दिन'। ऐसे ही एक नेता का व्यंग्य चित्र देखिए–

"अभी-अभी उस दिन मिनिस्टर आए थे / बत्तीसी दिखलाई थी, वादे दुहराए थे
भाखा लटपटाई थी, नैन शरमाए थे / छपा हुआ भाषण भी पढ़ नहीं पाए थे
जाते वक्त हाथ जोड़ कैसे मुस्कुराए थे / अभी-अभी उस दिन...."[1]

कुछ ऐसे ही नेताओं के हाथों में हमारी शासन व्यवस्था है। तभी तो हमारा खुदा ही हाफिज है।

यहाँ के कई मंत्री लापरवाह हैं। वे बड़ा बेतुका बयान देकर जनता को दुखी कर देते हैं। अच्छा परीक्षाफल नहीं होने पर शिक्षा मंत्री ने जो गैर जिम्मेदाराना बयान दिया उस पर कवि ने व्यंग्य किया है-

"खून-पसीना किया बाप ने एक, जुटाई फीस!
आँख निकल आई पढ़-पढ़ के नम्बर पाए तीस
शिक्षा मंत्री ने सिनेट से कहा-अजी शाबाश
सोना हो जाता हराम यदि ज्यादा होते पास
फेल पुत्र का पिता दुखी है, सिर धुनती है माता
जन-गण-मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता"[2]

नेताओं के पतन पर कवि ने एक महत्त्वपूर्ण कविता लिखी है– 'रामराज'। उसमें नेताओं के पतन के कई बिन्दुओं की ओर कवि ने संकेत किया है। इसी अध्याय में इस कविता में पहले उद्धृत किया जा चुका है इसलिए उसे यहाँ उद्धृत करना उचित नहीं। यह कविता 1949 ई. की है किन्तु नेताओं के चरित्र पर कवि की दृष्टि अचूक है। उनके स्वभाव, उनकी नीति, उनकी नीयत सबकुछ कवि की पकड़ में आ जाता है और वे कविता में उसे उतार लेते हैं। ये कविताएँ अपनी कड़वी सच्चाई के कारण महत्त्वपूर्ण हैं।

सत्ता पर आसीन कांग्रेसियों के शोषक चरित्र पर भी कवि ने कई कविताओं में प्रकाश डाला है, भजन की पैरोडी द्वारा व्यंग्य करते हुए कवि ने एक कविता लिखी–

"काँग्रेस जन तो तेणें कहिए, जे पीर आपनी जाणे रे
पर दुःख में अपना सुख साधे, दया भाव न आणे रे
तीन भुवन मां ठगे सभी को, शरम ना राखे केनी रे
*** * * * * * * ***
जिह्वा थकी, सत्य ना बोलै, पर धन अपनी माने रे
माया मोह न छुटै छन भर, लोभ बस्योजेहि मन मां रे
तकदीरन की ताली लागी, सकल मनोरथ तनमां रे
जैसे तैसे वोट बटोरे, पिछली कीर्ति बखाणै रे
बड़े-बड़े सेठन के हित माँ, अपणा हित पहचाणै रे

---

1. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-59
2. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-60

इतना स्वार्थी चरित्र शायद ही कहीं देखने को मिले । अनपढ़-गँवार की गलती क्षमा की जा सकती है इनकी नहीं । ये पढ़े-लिखे स्वार्थी लोग ही देश को दीमक की तरह चाट गए, जिन्हें देश के बारे में सोचना चाहिए वे सिर्फ अपने बारे में सोच रहे हैं, इसी संकीर्ण सोच ने विकास के रास्ते को रोक रखा है।

आई. ए. एस. अधिकारी से लेकर चपरासी तक का हाल हमारे देश में लगभग ऐसा ही है। कुछ अपवाद को छोड़ दिया जाय तो सामान्यतः यह देखा जा सकता है कि जो जहाँ है वहीं पद का दुरुपयोग अपने स्वार्थ के लिए कर रहा है। बड़ी लापरवाही से अपना काम कर रहा है और जहाँ तक संभव हो रहा है जनता का शोषण कर रहा है। इसलिए पूरी जनता त्रस्त है, परेशान है और देश का विकास रुका हुआ है। कोई भी काम सीधे-सरल ढंग से नहीं हो पाता और भ्रष्ट लोग भ्रष्ट तरीके से अपना काम करा लेते हैं, ईमानदार लोग परेशानी में फँस जाते हैं। परेशानी से बचने के लिए अधिकांश लोग गलत रास्ता अपनाते हैं और धन-बल का इस्तेमाल कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। पूरे राष्ट्र की बागडोर संभाले ये नौकरशाह कितने सुस्त हैं यह 50 वर्षों के विकास को देख कर जाना जा सकता है। नागार्जुन ने खुले तौर पर चोट करते हुए लिखा है–

"प्रदेश के विकास का दायित्व संभाल नहीं पाती नई दिल्ली
आलस्य और बेरुखी के मारे केन्द्रीय नौकरशाही / चलती है कछुए की चाल से
व्यक्तिगत स्वार्थ-पूर्ति में लेकिन / बेतहाशा भागती है खटमल के बच्चों की तरह
उसे न तमिलों से मतलब है न बंगालियों से / न तो गिरिजनों से, न हरिजनों से
उसे तो सिर्फ अपनी मोटी तनख्वाह से मतलब है
उसका तो खानदान ही 'हकूमत की नर्सरी', होता है....."[1]

सबसे दुर्भाग्य की बात है कि जब इन्हें सबसे अधिक जनता का साथ देना चाहिए तभी ये अपना स्वार्थ देखकर जनता का साथ छोड़ देते हैं। फिर उनके होने न होने का क्या फायदा। बाढ़, अकाल, सूखा और महामारी के ही समय वे जान बूझ कर छुट्टी पर चले जाएँगे तो उनको पालने पोसने का क्या काम। नागार्जुन ने इन्हें 1967 ई. में पटना में आए 'बाढ़' में पिकनिक मनाते देखा था। उन्होंने ऐसे ही एक प्रखंडाधिकारी का चित्रण करते हुए लिखा है–

"छः महीने का अकाल / दस महीने का संकट-
सभी को दे गयी मात / अबकी यह चार दिनों की बरसात
हफ्ता भर डूबे रहे राजेन्द्र नगर-कंकड़बाग
धो दिया पुनपुन ने पटना की धरती का सुहाग
*** * * * * * ***
सिकुड़े रहे अफसर, 'चरण कमल' भीगन न पाये
धँसना न पड़े पानी में, बूट मौजे उतर नहीं जायें।
देते रहे दिलासा उन्हें होमगार्ड के जवान / 'हमारे जीते जी हुजूर काहे होंगे परेशान'
अभी उस रोज, नाव पर मिले एक प्रखंडाधिकारी
सुसज्जित, सुवासित, चेहरे पर चमक थी सरकारी
बोले, "गनीमत है साहब, दया भगवान की / बच गये अपन तो, आ पड़ी थी जान की
खायी थी बाढ़ के पानी में पैर न भिगोने की कसम

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-72

प्रण हुआ पूरा, दिखलायी है खुदा ने रहम / छुट्टियाँ भी तो साली जाने कितनी थी जमा
धिरे थे पानी में, मगर बच्चों में दिल खूब ही रमा
फेमिली यहीं थी, भरा पूरा था राशन / डल की झील में शिकारे पर सलामत था इन्द्रासन
अभी तो और भी पाँच-सात रोज आराम में गुजारेंगे
अपन तो मौज है, रिलीफ-सिलीफ कुच्छों नहीं करेंगे!"
इतने में ऊपर मँडराता दिखा हवाई जहाज
मुस्कुराये साहब कहा, 'अमर रहे पाँच पार्टियों का राज!"[1]

ऐसे कामचोर, दायित्वहीन, स्वार्थी अधिकारी किस काम के। ऐसे अधिकारी न देश के बारे में सोचते हैं न जनता के बारे में। उनकी आत्मा मर चुकी है उनमें न ईमानदारी है न नैतिकता।

ये अधिकारी काव्य और कला को बेकार का काम मानते हैं। उनके हृदय में न इन सब चीजों के लिए आदर है न समझ, कवि ने उनकी बुद्धि पर तरस खाकर व्यंग्य किया है–

"जी हाँ, लिख रहा हूँ / बहुत कुछ! बहोत-बहोत!! / ढेर-ढेर सा लिख रहा हूँ!
मगर आप उसे पढ़ नहीं / पाओगे.....देख नहीं सकोगे / उसे आप!
*** * * * * * ***
बाप रे, कितना मुश्किल है! / आप तो 'फोर-फिगर' मासिक-
वेतन वाले उच्च-अधिकारी ठहरे / मन ही मन तो हँसोगे ही
कि भला यह भी कोई / काम हुआ कि अनाप- / शनाप ख्यालों की
महीन लफ्फाजी ही / करता चले कोई-/ यह भी कोई काम हुआ भला!"[2]

साहित्य, संगीत कला को यदि कोई अधिकारी व्यर्थ बताए तो उसकी सकीर्ण, अकलात्मक मानसिकता पर तरस आना स्वाभाविक है।

इन्हीं अफसरी चरित्र पर नागार्जुन ने एक बड़ी अच्छी कविता लिखी है–'बड़ा साहब'। पूरी कविता-'अधिकारी' का व्यंग्य चित्र है–

"छोटे-छोटे बाल छंटे हैं, चिकनी-मोटी गर्दन
सिर पर हैट, सिगार का धुआँ छूट रहा है छन-छन
बूट-पैंट मानिला शर्ट से ढका हुआ सारा तन
उतरे हैं देवता स्वर्ग से धरती पर अफसर बन!
गाँधी नेहरू से गुंजित है मन मन्दिर का आँगन
यही चलाते पटना-दिल्ली का हकूमती इंजन!
पहले के आई-सी-एस ठहरे, हो आए हैं लन्दन
पहली को पाते हैं साहब तीन हजारी वेतन।
मुन्सिफ़ बना दमाद, भतीजे ने पाया प्रोमोशन
बेटे ने पकड़ा दामोदर वैली-कार्पोरेशन
डेरे पर भी फोन लगी है, घण्टी बजती टन-टन
स्टेट्समैन गीता है, रामायण इंडियन-नेशन।
एस-डी-ओ थे ब्यालिस में, गोली चलवाई दन-दन
अब तो करते रहते निशि-दिन नेताओं का कीर्तन।
कुछ इनमें साहित्यिक भी हैं, लिखते हैं अभिनन्दन

---

1. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-41-42
2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-65-66

प्रजा और राजा दोनों के दिल का करते रंजन।
चापलूस करते गंगा की मिट्टी से दन्त-मंजन
बदल गया है भीतर-भीतर नित्त नेम का बंधन।
मुँह पर मलते हैं लॉयल्टी-का ही ये गुलरोगन
जैसा मालिक, वैसी सर्विस कैसा बढ़िया स्लोगन।
छोटे-छोटे बाल छँटे हैं, चिकनी-मोटी गर्दन
उतरे हैं देवता स्वर्ग से धरती पर अफसर बन।"[1]

यह है अधिकारी का रंग-ढंग, आकृति-स्वभाव, लोभ-लाभ का कच्चा चिट्ठा । जिस सरकार का खाते हैं, उसके गुण गाते हैं। पहले अंग्रेज सरकार के नौकर थे तो अपने ही भाइयों पर जुल्म ढाते थे; अब गाँधी-नेहरू का कीर्तन करते हैं। ये सत्ता का सुख पूरे खानदान के साथ उठा रहे हैं और चापलूसी करके अपनी कुर्सी बचा रहे हैं। सचमुच में ये अधिकारी धरती के देवता हैं।

इसी तरह 'जयति जयति जय सर्वमंगला' (तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-165) एवं 'लाल भवानी' (हजार हजार बाँहोंवाली, पृ. सं.-50) कविता में उन्होंने नौकरशाह के शोषक एवं स्वार्थी चरित्र पर व्यंग्य किया है। ये ही शासक हैं जिन्होंने इस देश को नरक बना रखा है, जनता का जीना हराम कर दिया है।

ग) पुलिस

किसी भी देश का प्रशासन वहाँ की पुलिस व्यवस्था पर टिका होता है। वही कानून भी लागू करती है और कानून की रक्षा भी करती है। जनता और संविधान की रक्षा करना उसका पहला कर्तव्य है किन्तु निरंकुश और भ्रष्ट पुलिस जनता के शोषण में सहायक बनती है और रक्षक होकर भक्षक का काम करती है। जब कानून के रखवाले इतने खतरनाक हो जाएँ तो देश का खुदा ही हाफ़िज है। अभी तक हम अर्धविकसित देश के रूप में इसलिए हैं कि हमारी पुलिस लापरवाह, कामचोर, भ्रष्ट और स्वार्थी है, कुछ एक अपवाद को छोड़ दिया जाए तो यह जनता का पचास वर्षों का अनुभव है। कवि नागार्जुन ने भारतीय पुलिस के इस शोषक मुखौटे को काव्य में बड़ी बेरहमी के साथ बेनकाब किया है।

'ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा' कविता में उन्होंने पुलिस जुर्म की शिकार एक नवविवाहिता का चित्रण किया है जिसका पति शायद पुलिस के हाथों मारा गया। कवि की संवेदना उस नव दम्पत्ति के साथ है—

"सोच रहा हूँ, देख रहा हूँ / देख रहा हूँ सोच रहा हूँ
उस तरुण का ही दूल्हा शायद कालिज में पढ़ता होगा!
इसी साल तो नहीं हुई उनकी भी शादी?
अगर पुलिस की नादिरशाही का शिकार हो गया / कहीं उसका भी दूल्हा
तो क्या होगा? / तो क्या हुआ? / इसी तरह उस बेचारे का लहू जमेगा?"[2]

कई बार छोटी-छोटी बातों पर भी प्रशासन की ओर से गोली चालाने का आदेश हो जाता है और निदोर्ष लोगों की हत्या हो जाती है। किसी की गलती की सजा उन्हें मिल जाती है, कवि इस मूर्खतापूर्ण संहार

---

1. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-61
2. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-58-59

का विरोध करते हैं। लेकिन यहाँ व्यंग्य नहीं 'करूण भावना' प्रधान होती है। आपातकाल के आस-पास की एक कविता है–'तुम तो नहीं गयी थी आग लगाने'। एक बेकसूर महिला गंगा स्नान करने गई थी और उसे गोली लग जाती है इसी से क्षुब्ध होकर कवि लिखते हैं–

"तुम तो नहीं गयीं थीं आग लगाने / तुम्हारे हाथ में तो पेट्रोल का गीला चिथड़ा नहीं था।
आँचल की ओट में तुमने तो हथगोले नहीं छिपा रखे थे।
भूखवाला भड़काऊ, परचा भी तो नहीं बाँट रही थी तुम!
दातौन के लिए नीम की टहनी भी कहाँ थी तुम्हारे हाथ में!
हाय राम, तुम तो गंगा नहाकर वापस लौट रही थी
कंधे पर गीली धोती थी, हाथ में गंगाजल वाला लोटा था
बी. एस. एफ. के उस जवान का क्या बिगाड़ा था तुमने?
हाय राम, जाँघ में ही गोली लगनी थी तुम्हारे!
जिसके इशारे पर नाच रहे हैं हकूमत के चक्के / वो भी एक औरत है।"[1]

हमारे प्रशासन की क्रूरता इससे अधिक क्या होगी जहाँ एक निरीह औरत इसकी शिकार होती है। इसी विषय पर एक महत्त्वपूर्ण कविता है–'शासन की बंदूक'। प्रतीकों के माध्यम से कवि ने पुलिस और प्रशासन की क्रूरता, निर्ममता और दमन को प्रकट किया है–

"खड़ी हो गयी चाँप कर कंकालों की हूक / नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक / जिसमें कानी हो गयी शासन की बंदूक
*** * * * * * * * * * ***
सत्य स्वयं घायल हुआ, गयी अहिंसा चूक / जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक"[2]

जिस पुलिस को देश और जनता की रक्षा करनी थी वही उनपर अत्याचार कर रही है, तानाशाही शासन लागू कर रही है। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है। पुलिस तो सरकार और सत्ताधारी का शस्त्र हो गई है, उनकी सभी नीतियों की समर्थक, भले वे गलत हों। उसमें अपना विवेक नहीं है जबकि उसे अपने अधिकारों का भी उपयोग करना चाहिए। राजनेताओं के हाथों की कठपुतली बनने के कारण ही वह और बदनाम हो गई है।

व्यक्तिगत स्तर पर पुलिस भ्रष्टाचार में लिप्त है और पैसे लेकर हर तरह के गैरकानूनी काम को संरक्षण दे रही है। सामूहिक स्तर पर राजनीतिक पार्टी का समर्थन कर रही है और सत्ता उसका दुरूपयोग अपने लिए करती है। नागार्जुन ऐसे ही भारतीय पुलिस को चेतावनी देते हुए कहते हैं-

"जिनके बूटों से कीलित है भारत माँ की छाती
जिनके दीपों में जलती है तरूण-आँत की बाती
ताजा मुंडों से करते हैं तो पिशाच का पूजन
है असह्य जिनके कानों को बच्चों का कल-कूजन
जिन्हें अँगूठा दिखा-दिखाकर मौज मारते डाकू
हावी हैं जिनके पिस्तौलों पर गुण्डों के चाकू
चाँदी के जूते सहलाया करती जिनकी नानी
पचा न पाये हैं जो अबतक नये हिंद का पानी
जिनको है मालूम खूब शासक जमात की पोल

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-9
2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-46

मंत्री भी पीटा करते जिनकी खूबी के ढोल
*** * * * * * * ***

अजी, आपकी बात विसात है, क्या बूता है कहिए
सभ्य राष्ट्र की शिष्ट पुलिस है तो विनम्र रहिए
वर्ना होश दुरुस्त करेगा, आया नया जमाना
फटे न वर्दी, टोप न उतरे, प्राण न पड़े गँवाना"[1]

कवि ने भारतीय पुलिस को विनम्र बनने की सीख दी है जिससे वह जनता की सेवक हो सके, शोषक नहीं। जनता जब जाग जाएगी और क्रोध में आ जाएगी तो उसको सँभालना मुश्किल हो जाएगा, अपराधियों का साथ देने वाली ऐसी पुलिस का क्या काम। 'खड़ा है ट्रेन' कविता में उन्होंने पुलिस अत्याचार का विरोध कर रहे छात्रों का चित्र खींचा है, उसी में उस अत्याचार का भी उल्लेख है–

"साथियों मालूम है तुमको ? / "कि पटने में मरे हैं आठ ?
"यह खूँखार है सरकार। / "जनता का नहीं यह राज।
"जी हाँ, पुलिस का है राज / "जी हाँ, लाठियों का राज
"हाँ, हाँ, गोलियों का राज ! "[2]

'नवादा' कविता में भी पुलिस बर्बरता का बड़ा हृदयविदारक दृश्य कवि ने खींचा है–

"आतंक में डूबा हुआ छोटा शहर / पुलिस बरपा गयी जिस पे कहर
ना समझ अधिकारियों ने / मार डाले दो तरूण! / पन्द्रह अगस्त मना लिया
बस और क्या बाकी रहा!!
*** * * * * * * * * * ***

पीच रोड पर / धूसर दाग लहू के देखे
बेदम बूढ़े हाथी की खुरदरी पीठ पर / मसल गया हो कोई ज्यों सूखा-सूखा सिन्दूर!
गोली लगी / गिरा धरती पर यहीं महेन्दर
वासुदेव भी यहीं गिरा था
हुए अनेकों घायल बना कर्बला ट्रान्सपोर्ट का अड्डा "[3]

ऐसी ही कविताओं पर विचार करते हुए डॉ. विजय बहादुर सिंह ने लिखा है–"**हमें या तो अपने समय के साथ रहना होगा, या फिर उससे आगे। नागार्जुन साथ-साथ भी हैं और आगे-आगे भी। उनका ध्यान समकालीनता पर भी है और तत्कालीनता पर भी।.....नागार्जुन जब अपने समय के राजनीतिक आचरणों पर कविता लिखते हैं या किसी गोली कांड पर, उनकी कविता हमारा ध्यान अपने समय की उन घटनाओं के प्रति खींचती है, जो सिर्फ घटनाएँ नहीं हैं। बल्कि भारतीय आबादी की प्रधान चिन्ताएँ हैं।**"[4]

कवि के लिए एक-एक जान की कीमत है। इसलिए कवि ने पुलिस बर्बरता को विरोध किया है। 'मैं हूँ सबके साथ' कविता में उन्होंने पुनः छात्रों पर पुलिस अत्याचार का वर्णन किया है–

"तीन दिनों तक मिनिस्टरों की नब्ज गयी थी डूब
पुलिस पिसाचिन पहले नाची, फिर तो सटकी खूब
कितने मरे, हुए घायल कितने सो जाने राम
दिया देश ने नये सिरे से आजादी का दाम

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-79
2. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-80
3. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-86
4. डॉ. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ. सं.-41

खूब खुली इन दिनों यहाँ राम-राज की पोल
बन्दूकों ने पिया प्रेम से सर्वोदय का घोल
*** * * * * ***

गोली खा-खा गिरे लोग झपटे लाशों पर श्वान
बच्चे तक उफनाए, आगे आए, दे दी जान
*** * * * * ***

छात्रों को तो नेहरू तुमने खूब पिलायी सीख
पुलिस लाडली को दे डालो हमदर्दी की भीख"[1]

झूठी रिर्पोट लिखने में भारतीय पुलिस का कोई जोड़ नहीं, सच लिखकर वह अपनी और सरकार की बदनामी नहीं कर सकती। इसी तथ्य पर कवि ने एक कविता लिखी 'वह तो था बीमार'। भूख से एक आदमी मर गया लेकिन थानेदार अपना खौफ दिखाकर घरवालों से लिखवा लेता है कि 'वह बीमार था'। यह सरकार, प्रशासन और पुलिस का मिला जुला शोषण है, कविता इस तरह है–

"मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घर वालों से-"वह तो था बीमार"
अगर भूख की बातों से तुम कर न सके इंकार
फिर तो खायेंगे घर वाले हाकिम की फटकार
ले भागेगी जीप लाश को सात-समुन्दर पार
अंग-अंग की चीर-फाड़ होगी फिर बारंबार
मरी भूख को मारेंगे फिर सर्जन के औजार
जो चाहेगी लिखवा लेगी डॉक्टर से सरकार
जिलाधीश ही कहलायेंगे करुणा के अवतार
अन्दर से धिक्कार उठेगी, बाहर से हुँकार
मंत्री लेकिन सुना करेंगे अपनी जय-जयकार
सौ का खाना खाएँगे, पर लेंगे नहीं डकार
मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घर वालों से-"वह तो था बीमार"[2]

इस कविता के माध्यम से कवि ने पूरे तंत्र को बेनकाब किया है। जो अपने स्वार्थ के लिए किसी भी हद तक गिरने को तैयार है जिनके लिए जनता का कोई मूल्य नहीं। आए दिन समाचार पत्रों में अथवा लोगों से पुलिस विभाग के कारनामें सुनने को मिलते हैं। जिनमें उनके शोषण की एक से एक कहानी कही जाती है। अपवाद वहाँ भी हैं, कुछ अच्छे और ईमानदार अधिकारी देश और जनता की सेवा में तत्पर हैं किन्तु अधिकांश अधिकारी भ्रष्टाचार के पंक में धँसे हुए हैं, वे स्वार्थ के समन्दर में अपनी प्यास बुझा रहे हैं और सत्तातंत्र का दुरुपयोग कर रहे हैं।

3. आन्दोलन एवं क्रांतिः आस्था से अनास्था तक

जब शोषण चरम पर पहुँच जाता है तो उसका विरोध शुरू होता है। पहले यह विरोध व्यक्तिगत रहता है फिर संगठित होकर सामूहिक होता जाता है और अंततः जन-आन्दोलन में बदल जाता है। मानव

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-87-88
2. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-134

इतिहास में यह होता रहा है। आधुनिक युग इस मामले में समृद्ध रहा है। गाँधी जी के व्यापक जनजागरण ने कम से कम ऐसा माहौल अवश्य बना दिया कि अब यहाँ के लोग शोषण और अत्याचार को चुपचाप सहन करने वाले नहीं हैं, वे शोषण का विरोध संगठित होकर करना सीख गए हैं। स्वतंत्र भारत में भी कई छोटे-छोटे आन्दोलन होते रहे हैं और कवि नागार्जुन उनका हार्दिक स्वागत करते रहे हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में कुछ आन्दोलनों का जिक्र किया है और हार्दिक समर्थन भी दिया है। उन्होंने एक साक्षात्कार में स्पष्ट कहा है कि–**"मैं इन संघर्षों व संगठनों से जुड़ना व उन्हें जानना चाहता हूँ, क्योंकि मेरी कविता के लिए–बेहतर कविता के लिए, यह बहुत जरूरी है। मेरी जितनी भी अच्छी व चर्चित कविताएँ है–जिनकी वज़ह से मैं आज कुछ हूँ–वे सब जनसंघर्षों से जुड़ी कविताएँ हैं।"**[1] नागार्जुन किनारे बैठ कर लहरों को गिनने वाले साहित्यकार नहीं हैं वे सक्रिय हिस्सा लेने वाले जागरूक जनकवि हैं इसलिए उनकी इन कविताओं में इतनी ऊर्जा है। कई कविताओं में उन्होंने आन्दोलनकारियों को खुला समर्थन दिया है। समग्र क्रांति का खुलकर समर्थन करने वाले नागार्जुन ने उसकी विसंगतियों को देखकर उसका विरोध भी किया। यह उनके विरोधाभास और विसंगति का प्रमाण नहीं है बल्कि सतत जागरूक जनकवि की विवेकशीलता का प्रमाण है। यह उनका विचलन नहीं है बल्कि उन्होंने बताया है कि शीघ्र ही जो अपनी भूल सुधार लेता है वह भूला नहीं माना जाता। अंधभक्त और अन्ध समर्थन न कभी उन्होंने किया, न करना चाहिए था। अपनी आत्मा के सामने वे निर्दोष हैं क्योंकि स्वविवेक की कसौटी पर वे खरे उतरे हैं। शर्म और आलोचना के लिहाज से उन्होंने आज तक कोई काम नहीं किया। उनमें अद्भुत साहस है अपने को सुधारने के सम्बन्ध में। आदमी सदैव सुधार की ओर अग्रसर रहता है, नागार्जुन का जीवन इसका उदाहरण है और इतिहास गवाह है कि उनका अनुमान उनकी आशंका बाद में सही साबित हुई। समय को देखने की उनकी अचूक दृष्टि के कारण ही ऐसा है।

शोषण युक्त शासन और सरकारी अत्याचार का विरोध नागार्जुन ने खुलकर किया है। उनकी कई कविताओं में उन घटनाओं का उल्लेख है जिसमें आजाद भारत में हुए पुलिस जुल्म का खुला चित्रण और विरोध है। कवि शोषकों का विरोधी है और खुलकर शोषितों का साथ देता है। 'मै हूँ सबके साथ' कविता में उन्होंने पटना में छात्रों पर हुए अत्याचार का विरोध किया है। इस लम्बी कविता में उन्होंने जवाहरलाल नेहरू और बिहार के मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह को खूब खरी-खोटी सुनाई है। वे लिखते है–

"दिया देश ने नये सिरे से आजादी का दाम
खूब खुली इन दिनों यहाँ पर राम-राज की पोल
शर्मिन्दा होकर तिरंगा उतरा अपने आप
महाक्रांति की पड़ी सुनाई मुझको तो पदचाप
गोली खा-खा गिरे लोग, झपटे लाशों पर श्वान
बच्चे तक उफनाए, आगे आए, दे दी जान
अजब जवाबी हमला था वह, अद्भुत थी मुठभेड़
जूझी जनता, तोड़ व्यक्तिगत भेद-भाव की मेड़
***   *   *   *   *   ***

1.नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-187

चापलूस कर लिये इकट्ठे, बुद्धि हो गयी भ्रष्ट!
ओ मदांध शासक, तुमसे पब्लिक पाती है कष्ट
मिटा नहीं पाओगे अबकी बदनामी के दाग!
देहातों तक फैला गयी है विप्लव की यह आग!
ढह जाएगी शान तुम्हारी, मिट जाएगा नाम!
लीपा-पोती का तो होगा, बहुत बुरा परिणाम!
कान फूँकते उल्लू, गीदड़ चाँप रहे हैं गोड़!
ओ बिहार-केशरी, तुम्हारी बुढ़भस है बेजोड़!!
चचा नेहरू अब न तुम्हारे आएँगे कुछ काम
अब न बेचकर खा सकते हो तुम बापू का नाम!
बना शोक पथ यह अशोक पथ, बध्य भूमि कालेज
हँसते होंगे मन-ही-मन हम पे अब वे अँगरेज!
बात भर है राम-राज की रावण के हैं काम!
किस मुँह से लेंगे अब हम डेमोक्रेसी का नाम?
* * * * * * * *

इस पवित्र प्रतिशोध-यज्ञ में मैं हूँ सबके साथ....
क्यों गूँगा होऊँ बतलाओ झुकने दूँ क्यों माथ? "[1]

इस तरह कवि ने अपनी सक्रिय हिस्सेदारी और जन प्रतिबद्धता सिद्ध की है। 'संग तुम्हारे साथ तुम्हारे' कविता में भी वे आन्दोलनकारी विद्रोहियों के साथ खड़े हैं, वे लिखते हैं–

"मैं भी यहाँ शहीद बनूँगा / अस्पताल की खटिया पर क्यों प्राण तजूँगा
हाँ, हाँ, भाई, मुझको भी तुम गोली मारो / पतित बुद्धिजीवी जमात में आग लगा दो
* * * * * * * * * *

संग तुम्हारे, साथ तुम्हारे/ मैं न अभी मरनेवाला हूँ.../ मर-मर कर जीनेवाला हूँ"[2]

नागार्जुन की कविताएँ व्यवस्था विरोधी कविताएँ हैं। ये सर्वहारा के समर्थन और शोषकों के विरोध में लिखी गई कविताएँ हैं कवि ने स्पष्ट लिखा है–

"अब आज होंगे नगर, आजाद होंगे गाँव / अब आजाद होंगी भूमि
अब आजाद होंगे खेत / अब आजाद होंगे कारखाने
मशीनों पर और श्रम पर, उपज के सब साधनों पर
सर्वहारा स्वयं अपना करेगा अधिकार स्थापित
दूहकर वह आंत जोकों की, मिटा देगा धरा की प्यास
करेगा आरम्भ अपना स्वयं का इतिहास"[3]

जन-जन का अधिकार, सच्ची आजादी, आर्थिक सम्पन्नता, शोषण मुक्त समाज यही कवि का लक्ष्य है इसी की चाहत में वे तमाम व्यवस्था-विरोधियों के साथ हैं।

12 तिलंगों को कानून तोड़ने के जुर्म में फाँसी की सजा सुनाई गई लेकिन कवि को विश्वास है कि उन्हें मुक्त किया जाएगा नहीं तो प्रजातान्त्रिक देश होने का हमारा गर्व मिट्टी में मिल जाएगा, बड़ी दुलार और आशा से उन्होंने उनको विश्वास दिलाया कि–

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-87-89
2. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-13
3. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-3

"यदि तुम्हें फाँसी पड़े तो कलंकित होगा समूचा राष्ट्र
* * * * * * * * *

असंभव हो जाएगा वाजिब हकों के वास्ते संधर्ष करना
असंभव हो जाएगा फिर आततायी दानवों के जुल्म का प्रतिरोध करना
असंभव हो जाएगा जागीरदारी जमींदारी साजिशों का फाश करना
असंभव हो जाएगा दुर्दान्त नौकरशाह थानेदार की उन मुजरिमाना हरकतों से मुक्ति पाना
* * * * * * * * *

झूलने देंगे नहीं हम तुम्हें फाँसी पर-/ जेल में सड़ने नहीं देंगे तुम्हें हम–
सजा के उस एक तरफा फैसले को बदलवा कर ही रहेंगे-
हे तिलंगे वीर बारह, तुम्हारे ये प्राण हैं अनमोल इनका अन्त हम होने न देंगे-
न्याय होगा- न्याय का नाटक न होगा
बारहो तुम फिर हमारे बीच जल्दी लौट आओगे"[1]

जिनके लिए कवि ने यह कविता लिखी शायद ही उन तक कवि की यह हार्दिक संवेदना पहुँची होगी किन्तु न्याय और उसके समर्थन के प्रति कवि की प्रतिबद्धता जग-जाहिर है।

भोजपुर में किसानों के संघर्ष का कवि प्रत्यक्षदर्शी बनना चाहता है, उनके साथ जुड़कर संघर्ष करना चाहता है, जनकवि का यही उत्साह उन्हें हिन्दी साहित्य का महान कवि बनाता है। जनता का कदम-कदम पर साथ देनेवाला ऐसा कवि हिन्दी में और कोई नहीं। उन्होंने लिखा है–

"यही धुआँ मैं ढूँढ रहा था / यही आग मैं खोज रहा था
यही गन्ध थी मुझे चाहिए / बारूदी छर्रे की खुशबू!.....
* * * * * * * *

मुन्ना, मुझको / पटना-दिल्ली मत जाने दो
भूमि पुत्र के संग्रामी तेवर लिखने दो
पुलिस दमन का स्वाद मुझे भी तो चखने दो मुन्ना, मुझे पास आने दो
पटना-दिल्ली मत जाने दो
* * * * * * * *

यहाँ अहिंसा की समाधि है / यहाँ कब्र है पार्लमेंट की
* * * * * * * *

तुम भी आओ तुम भी आओ / देखो जनकवि, भाग न जाओ
तुम्हें कसम है इस माटी की / इस माटी की / इस माटी की / इस माटी की।"[2]

श्रमिकों और किसानों का साथ कवि हर समय देता है उन्होंने साफ शब्दों में स्वीकार किया है कि "हम गरीब किसान के साथ हैं, गरीब मजदूर के साथ हैं, हरिजन के साथ हैं। इनका उद्धार हो, ऐसा हम चाहते हैं। लोगों को खाने-पीने को मिले, वह अच्छी तरह रह सकें।"[3] उसके लिए उन्होंने संसद तक को कब्रगाह बनाने की बात कह दी। एक कवि को इतना भावुक नहीं होना चाहिए कि प्रजातंत्र के प्रतीक को मिटाने की बात कर दे किन्तु जनता के लिए सब कुछ क्षम्य है। इस विद्रोह को उन्होंने भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद और बाघा जतीन के विद्रोह से मिला कर देखा है।

---

1. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-26-27*
2. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या, पृ. सं.-20-21*
3. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-182*

व्यवस्था का यह विद्रोह धीरे-धीरे संगठित आंदोलन बन जाता है। नागार्जुन ने कई छात्र आन्दोलनों का चित्रण किया है और सरकार के खिलाफ उनको समर्थन दिया है। पटना में एक छात्र-आन्दोलन का चित्रण इस प्रकार किया है–

"ट्रेन की छत पर खड़े हैं तीन लड़के / सैकड़ो विद्यार्थियों की भीड़
नीचे प्लेट फारम पर खड़ी है / सभी हैं विक्षुब्ध
सब हैं क्रुद्ध, काली झंडियों से लैस !"[1]

नागार्जुन बड़े उत्साह से विरोध प्रदर्शन का चित्रण करते हैं मानो वे मन से स्वयं इसमें शामिल हों। आठ विद्यार्थियों के मारे जाने पर छात्रों का यह हुजूम एक ट्रेन पर कब्जा करके आगे बढ़ रहा है।

'तिरंगा झंडे' के अपमान पर पुलिस गोली चलाती है और कई विद्यार्थी मारे जाते हैं। नागार्जुन यहाँ छात्रों का समर्थन करते हैं क्योंकि छात्रों को समझाने का यह दमनात्मक तरीका उनकी समझ के बाहर है। आदमी से ऊँचा कुछ भी नहीं इसलिए कवि इस खूनी हत्याकाण्ड का विरोध करते हैं, उन्होंने लिखा है–

"दस हजार, दस लाख मरें, पर झंडा ऊँचा रहे हमारा!
कुछ हो कांग्रेसी शासन का डंडा ऊँचा रहे हमारा!
सत्य अहिंसा की लाशों पर नादिरशाही तख्त जमाएँ!
नयी पौध को मसल-मसल कर दुनिया-भर में नाम कमाएँ!
*** * * * * * * * ***
शिक्षण-संस्था की पवित्रता मिली धूल में, अजी वाह तुम !
गोली मारी हाय-हाय अधखिले फूल में, अजी वाह तुम!"[2]

नागार्जुन स्वप्नवादी हैं। इस दुनिया को और सुन्दर और बेहतर बनाना चाहते हैं इसलिए सत्ता परिवर्तन की आशा रखते हैं, सत्ता-परिवर्तन के लिए ही वे क्रांति का समर्थन करते हैं उन्होंने कहा है– **"हमारा क्रांति में विश्वास हट गया हो या ठंडी क्रांति में विश्वास बढ़ गया हो, ऐसी बात भी नहीं है।"**[3]

इसलिए जब इंदिरा गाँधी ने देश में आपातकाल लागू कर दिया और प्रजातंत्र खतरे में पड़ गई, सबकी स्वतंत्रता को ग्रहण लग गया तो देश की जनता के साथ नागार्जुन भी सक्रिय राजनीति में कूद पड़े। चौराहों पर कविताएँ सुनाई, अनशन पर बैठे, घूम-घूम कर सभाएँ आयोजित कीं, नतीजा सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया। जब वे जेल गए तो वहाँ उन्होंने पाया कि अधिकांश आन्दोलनकारी जनसंघी और विद्यार्थी परिषद पद वाले थे, खेतिहर मजदूर और किसानों की संख्या कम थी तभी इस क्रांति की सच्चाई वे समझ गए और जेल से बाहर निकलकर उन्होंने इस क्रांति का विरोध किया।

नागार्जुन इंदिरा गाँधी की तानाशाही से त्रस्त थे इसलिए उन्होंने परिवर्तन का सर्मथन किया, उन्होंने लिखा है–

"क्रान्ति सुग बुगाई है / करवट बदली है क्रान्ति ने
बार-बार लाखों की भीड़ जुटी / बार-बार सुरीले कण्ठों से लहराई
जाग उठी तरूणाई.. जाग उठी तरूणाई / बार-बार खचाखच भरा गाँधी-मैदान

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-80*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-84-85*
3. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-105*

बार-बार प्रदर्शन में आए लाखों-लाख जवान... / बार-बार वापस गए
बार-बार आए / .....हवा में भर उठी इन्कलाब के कपूर की खुशबू
बार-बार गूँजा आसमान / बार-बार उमड़ आए नौजवान
बार-बार लौट गए नौजवान...."[1]

लेकिन जेल जाकर उन्होंने जो कुछ जाना समझा वह इस प्रकार है—"जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में चलने वाले आंदोलन के वर्ग-चरित्र को मैं अंध कांग्रेस विरोध के प्रभाव में रहने के कारण नहीं समझ पाया। 'संपूर्ण क्रांति' की असलियत मैंने जेल में समझी। सीवान, छपरा और बक्सर की जेलों में 'सपूर्ण क्रांति' के जो कार्यकर्ता थे, उनमें अस्सी प्रतिशत जनसंघी और विद्यार्थी परिषद वाले थे और भालोद के कार्यकर्ता दाल में तैरते हुए जीरे के बराबर। औद्योगिक और खेत मजदूर न के बराबर थे। हरिजन भी इक्के-दुक्के ही थे। यह सब देखकर मैं समझ गया कि यह आंदोलन किन लोगों का था। इस आंदोलन के चरित्र के संबंध में मैं शुरू से ही संशयग्रस्त था। ठीक इसी तरह मेरे प्रति भी संपूर्ण क्रांति के लोग अपने मन में संशय रखते थे।"[2] इतना ही नहीं उन्होंने लगभग गाली देते हुए कहा—**"अब मुझे ऐसा लगता है कि मैं वेश्याओं और भँडुओं की गली से लौट आया हूँ।"**[3]

बाद में संपूर्ण क्रांति वालों का जो हश्र हुआ उसने नागार्जुन के वक्तव्य को सही सिद्ध कर दिया। उस आन्दोलन से निकले कितने नेता आज राज्य स्तर पर सत्ता की बागडोर थामे हुए हैं किन्तु सभी भ्रष्टाचारी के दलदल में फँसे हुए हैं। कोई ईमानदार, देश का सच्चा सेवक नहीं।

नागार्जुन ने इस अहिंसक क्रांति को बहुत नजदीक से देखा था इसलिए उन्होंने इसके व्यक्तित्व पर टिप्पणी की थी कि 'काश क्रांति इतनी आसानी से हुआ करती। क्रांति इतनी आसानी से नहीं होती उसके लिए अपना सबकुछ बलिदान करना होता है, विरोधियों का सबकुछ लेना होता है। क्रांति का कारवाँ तीर्थ यात्रा की तरह ठंढी नहीं हुआ करती और न भीड़ इतनी आत्मानुशासित, कवि ने ठीक ही लिखा है—

"काश! क्रांतियाँ उतनी आसानी से हुआ करतीं
काश! क्रांतियाँ उतनी सरलता से सम्पादित हो जातीं!
काश! क्रांतियाँ योगी, ज्योतिषी या जादूगर के चमत्कार हुआ करतीं।
काश! क्रांतियाँ बैठे-ठाले सज्जनों के दिवा-स्वप्नों-सी घटित हो जातीं
अग्निगर्भी संकल्प / आत्मविलोपी उत्सर्ग
पावन एवं पुण्य जुगुप्सा / निर्मल करूणा / कठोर अनुशासन
अपरिसीम साहस / अनवरत अध्यवसाय.. / यही तो कुछ-एक तत्त्व हैं
यही पहुँचा देते हैं क्रांति की तलहटियों तक
शोषित-निपीड़ित-संधर्षशील मानव-समुदाय को
कुंभ के मेले में / तीर्थराज 'प्रयाग की ओर अभिमुख'
लाखों-लाख की गतानुगतिक 'भेड़िया धसान' भीड़
लगा-लगाकर डूब 'संगम' के 'जादुई' जल में

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-17-20*
2. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-99*
3. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-99*

वापस-आ जाती है अपने-अपने ठौर पर
नहीं, नहीं, वैसा हुआ नहीं हुआ करता"[1]

इसलिए कई कविताओं में उन्होंने क्रांति का मजाक उड़ाया है। उसपर व्यंग्य किया है। क्रांति को 'खिचड़ी विप्लव' कहकर उन्होंने उस पर कड़ा व्यंग्य किया है–

"खिचड़ी विप्लव देखा हमने / भोगा हमने क्रांति विलास
अब भी खत्म नहीं होगा क्या / पूर्ण क्रांति का भ्रांति विलास
* * * * * * * *
मिला क्रांति में भ्रांति विलास / मिला भ्रांति में शांति विलास
मिला शांति में क्रांति विलास / मिला क्रांति में भ्रांति विलास
पूर्ण क्रांति का चक्कर था / पूर्ण भ्रांति का चक्कर था
पूर्ण शांति का चक्कर था / पूर्ण क्रांति का चक्कर था
टूटे सींगों वाले साँड़ों का यह कैसा टक्कर था!
उधर दुधारू गाय अड़ी थी / इधर सरकसी बक्कर था।
समझ न पाओगे वर्षों तक/ जाने कैसा चक्कर था!"[2]

ऐसी भटकी हुई क्रांति किस काम की, इसमें हिस्सा लेकर ही नागार्जुन ने लोगों को सावधान करते हुए कविता लिखी कि–

"नित-नये मिलन हैं पुराने यारों के / घिनौने इंगित हैं रंगे सियारों के
दिखावा है, छल है / मल ही मल है / हल्ला है, शोर है, हुआँ-हुआँ है
कुआँ है, कुआँ है, कदम कुआँ है / इधर नहीं बढ़ना-
विक्षुब्ध नौजवानों, होशियार! / इधर नहीं बढ़ना- / कुपित श्रमिको, किसानो, होशियार!
इधर नहीं बढ़ना- / बेसहारे, भूमिहीनों, होशियार! / इधर नहीं बढ़ना-
दुखियारे गमगीनों, होशियार / क्रांति का कुहासा है इस ओर / भ्रांति का धुआँ है इस ओर
कदमकुआँ है इस ओर"[3]

एक कविता में उन्होंने एकदम भदेस भाषा में क्रांति को किसी मतलब का नहीं बताया है, इसलिए टिप्पणी करते हुए लिखा है–

"न गधी न, घोड़े का / न बैल का, न गाय का
ससुराल नहीं - मायका..../ जी हाँ, सम्पूर्ण क्रांति का
शांति का भ्रांति का / शत-प्रतिशत मायका।
* * * * * * * *
लोकनीति.... / सम्पूर्ण क्रांति का मायका / अपना यह बिहार!"[4]

इस मोहभंग का पुष्ट कारण था, एक तो इसमें शामिल लोगों को वर्ग-चरित्र, कथनी-करनी में अंतर, स्वार्थ और सत्ता की मात्र राजनीति और लोभ-लाभ की फिक्र। कवि से यह सब न हो सका। जनता को धोखा देना उनके लिए संभव न था इसलिए तमाम प्रलोभनों को ठुकराते हुए उन्होंने जनता का साथ दिया।

सत्ता परिवर्तन के बाद भी यदि निम्नवर्ग का हाल नहीं बदला, भूख-गरीबी, अशिक्षा-कुपोषण एवं तरह-तरह की व्याधि से निजात नहीं मिली तो उस क्रांति का क्या मतलब है! नागार्जुन स्थिति में सीधे और

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-34*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-29*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-113*
4. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-63*

स्पष्ट बदलाव चाहते हैं वह नहीं होता तो दुखी होते हैं निराश होते हैं, जिस जे. पी. के आन्दोलन में वे तन-मन से सक्रिय रहे, जेल गए उसी पर व्यंग्य करने में उनके हृदय की हालत क्या हुई होगी लेकिन जयप्रकाश जी के अकर्मण्य व्यक्तित्व पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा है–

"अगले पचास वर्ष और आप जिएँ / स्वस्थ प्रसन्न रहे, शांति-सुधा-रस पिएँ
आगे-पीछे उमड़-उमड़ आएँ तरूणों की टोलियाँ
साथ हों पुलिस वैन, साथ हो आफिसर
हो नहीं लाठी चार्ज, छूटें नहीं अश्रुगैस-गोलियाँ
अगले पचास वर्ष और बने रहें कूड़ों के ढेर
भंगियों के जीवन में हो नहीं किंचित भी हेर-फेर
गल्लों के आढ़तिये मचाएँ अधिकाधिक अंधेर
चुपचाप देते रहें पुष्ट चन्दा अवेर-सबेर
बढ़ती जाए फिर भी समग्र क्रांति की टेर
*** * * * * * * ***

लेटे रहे युगावतार पितामह भीष्म / प्रवचन रत, हृदय परिवर्तन कारी
अगले पचास वर्ष और / समग्र लाभ, लोभ के अविकल अधिकारी
मुक्तहस्त दान दें टैक्स चोर तस्कर व्यापारी
करें निःसंकोच विदुर-बुजुर्ग तरुण कंधों की सवारी
मस्त रहें धृतराष्ट्र, चढ़ी रहे समग्र क्रांति की खुमारी
*** * * * * * * ***

सन्त होंगे महासन्त, कुसन्त होंगे उपसन्त
स्वार्थी न होंगे पर, कीर्ति की लालसा का रहेगा न अन्त
ऊपर-ऊपर मूक, सम्पूर्ण क्रांति, कंचन, मंचन क्रांति, विचार वंचन क्रांति, किंचन क्रांति
फल्गु-सी प्रवाहित रहेगी भीतर-भीतर तरल मदिर भ्रांति"[1]

पूरी कविता में क्रांति के बाद की स्थिति का यथार्थ चित्रण है इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है। कवि ने इनकी रग-रग, रेशे-रेशे को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने जे. पी. के माध्यम से पूरी व्यवस्था को पहचानकर ऐसा लिखा है। जब इस व्यवस्था में भंगियों का भला ही नहीं होगा, बनिये और व्यापारी वर्ग का आर्थिक शोषण जारी रहेगा फिर इसे क्रांति कहना क्या ठीक रहेगा! इसीलिए वे इससे अलग हो गए और इसपर कटाक्ष करते रहे, लोगों को सावधान करते रहे।

4. कविता के बाड़े में भारतीय नेताःएक व्यंग्य अलबम

भारतीय राजनेता नागार्जुन के व्यंग्य काव्य के आलम्बन हैं। भारतीय राजनेता के विसंगत व्यक्तित्व की खबर कवि ने व्यंग्य के माध्यम से ली है इसलिए आजाद भारत का शायद ही कोई मशहूर नेता उनके पैने व्यंग्य बाण से बच पाया है। जिस नेता के चरित्र का विरोधाभास उन्हें नजर आया तुरंत ही कवि ने उस पर काव्यात्मक प्रहार किया। इस व्यंग्य में चुटकी लेने का भाव है, मजाक करने की प्रवृत्ति है, जनता का आक्रोश है, कवि का सात्विक क्रोध है और है एक सजग नगारिक का काव्यात्मक विरोध। उनके साहित्य में इतने नेताओं के व्यंग्य चित्र मौजूद हैं कि देख कर आश्चर्य होता है। डॉ. नामवर सिंह ने ठीक ही

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-21-22

लिखा है– **"नागार्जुन के काव्य में व्यक्तियों के इतने व्यंग्यचित्र है कि उनका एक विशाल अलबम तैयार किया जा सकता है।"**[1]

सत्तातंत्र में बैठे सर्वोच्च शासक पर व्यंग्य करना हिम्मत का काम है क्योंकि इसमें बड़ा खतरा है किन्तु कबीर की परम्परा के नागार्जुन, इस मामले में उनसे भी एक कदम आगे हैं। उन्होंने राजनेताओं पर सीधे व्यंग्य करके सत्तातंत्र को चुनौती दी और आलोचना के लोकतंत्र को विकसित किया। डर कर मौन रहने वाले, सरकारी सुविधा का सुख लूटने वाले कवि नागार्जुन नहीं हैं–सबकुछ को दाँव पर लगाकर सिर्फ जन-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करना नागार्जुन को पूरे हिन्दी साहित्य में इकलौता कवि बनाता है। आधुनिक युग में उनकी जोड़ का दूसरा कवि नहीं।

नागार्जुन ने इंदिरा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, विनोबा भावे, मुरारजी देसाई जयप्रकाश नारायण, राजीव गाँधी, संजय गाँधी, लाल बहादुर शास्त्री, दरोगा प्रसाद राय, श्रीकृष्ण सिंह, गुलजारी लाल नंदा, कामराज, वी. पी. मंडल, चरण सिंह, लालू यादव, एवं मायावती जैसे राजनेताओं पर कविताएँ लिखी हैं। अपने आप में ये कविताएँ राजनीतिक दस्तावेज हैं। इन कविताओं में इन नेताओं की किसी न किसी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। कवि ने सिर्फ इन लोगों पर ही व्यंग्य नहीं किया है बल्कि इनके माध्यम से वे इनकी प्रवृत्तियों की अलोचना भी की है जिससे दूसरे राजनेताओं को सीख मिले।

क) जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे, उनकी लोकप्रियता अपार थी। नागार्जुन ने कहीं-कहीं उनकी प्रशंसा भी की है किन्तु अधिकांश कविताओं में उन पर व्यंग्यबाण छोड़े हैं। प्रशंसात्मक कविताओं में 'जय विश्वबंधु' कविता उल्लेखनीय है–

"हे नेहरू! हे उज्ज्वल-चरित्र!'
हे मानवता के महामित्र!
तुम निखिल एशिया की आशा के केन्द्र-बिंदु!
तुम जन-जन के शुचि-शुभ्र गगन में शरद-इंदु!"[2]

जवाहरलाल नेहरू एक गरीब देश के प्रधानमंत्री थे उन्हें अपना समय और देश का धन सही चीज में व्यय करना चाहिए था किन्तु वे बार-बार विदेश यात्रा पर जाते रहे और विदेशी राजा-महाराजाओं एवं शासकों को आमंत्रित करते रहे जिनपर काफी व्यय होता रहा, कवि एक आम आदमी की तरह सोचता है और उसकी तरफ से व्यंग्य करता है कि 'आओ रानी हम ढोएँगे पालकी/यही हुई है राय जवाहरलाल की'। इंग्लैड की महारानी के आने की तैयारी में भारत की गरीब जनता का कितना पैसा पानी की तरह बहाया गया कवि इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता है।

कवि ने गरीब जनता की दयनीय दुर्दशा को शाही मेहमान के सामने इस तरह खड़ा कर दिया है कि विसंगति अपने चरम पर व्यंग्य को गहरा बना रहा है–

"बेबस-बेसुध, सूखे-रुखड़े, / हम ठहरे तिनकों के टुकड़े
टहनी हो तुम भारी भरकम डाल की
खोज खबर तोलों अपने भक्तों के खास महाल की!"
भूखी भारत माता के सूखे हाथों को चूम लो
प्रेसिडेन्ट की लंच-डिनर की स्वाद बदल लो, झूम लो"[3]

---

1. नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-9
2. शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ. सं.-272
3. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-58

जवाहरलाल की शाहखर्ची पर कवि का व्यंग्य भारतवर्ष की स्थिति को देखते हुए सही लगता है। गाँधी जी की राह पर चलने वाले नेता कितनी जल्दी उनकी सबक भूल गए। गाँधी जी को याद करके कवि ने इसे और तीखा बना दिया है।

इस कविता पर रामविलास शर्मा जी की टिप्पणी पठनीय है–**''नागार्जुन की एक प्रसिद्ध कविता है–'आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी।...भारत की गरीबी और बदहाली, इसके लिए ब्रिटेन की जिम्मेदारी, उसी ब्रिटेन से भारत के नेताओं की मैत्री यह सब देखकर नागार्जुन के हृदय में तीव्र आक्रोश उत्पन्न होता है, साथ ही वह ब्रिटिश मलका और उसके भारतीय भक्तों पर खुलकर हँसते हैं।''**[1]

भ्रष्टाचार और महँगाई का प्रवेश जवाहरलाल नेहरू के समय से ही हो गया था जिसपर प्रकाश डालते हुए कवि ने व्यंग्य किया है कि यदि तुम और दस साल सत्ता में रह जाते तो स्वराज के वृक्ष की डाल और पतन की ओर झुक जाती। एक कविता में ही जैसे कवि ने उनके शासन की तमाम खामियों की आलोचना कर दी है, जो इस प्रकार है–

(I) महँगाई आसमान छूने लगती। (II) सम्पन्नता और सामान्य सुविधा भी सपना हो जाता।
(III) खादी की ओट में गाँजे की तस्करी होती। (IV) लोगों का तेज हरण हो जाता है।
(V) प्रतिभाशाली लोगों का अपमान और भूखों का सम्मान होता।
(VI) सभी चीजें मिश्रित हो जातीं।
(VII) क्रांन्ति स्थगित हो जाती और नब्बे प्रतिशत जनता का तकदीर हरण हो जाता।
(VIII) विरोधी राजनेता नजरबन्द हो जाते, जेल चले जाते या उपेक्षित होते ।
(IX) समाजवादी अमीर हो जाते और धनपति मार्क्सवादी।

इस तरह नागार्जुन ने कई महत्त्वपूर्ण बिंदु उठाकर जवाहरलाल नेहरू के शासन की विसंगतियों पर कटाक्ष किया है।

जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि मेरे मरने के बाद मेरी राख को भारत की मिट्टी में छिड़क देना किन्तु इस भावुकतापूर्ण इच्छा से अंततः क्या होगा, कवि ने बड़े हल्के ढंग से व्यंग्य किया है–

"राख वाली जमीन में / निश्चित ही उपजेंगे प्रचुर अन्न...
लेकिन टिड्डों का हमला रुकेगा कैसे ? / राख वाली नदी का जल निश्चित
ही अधिक निर्मल होगा.../ लेकिन, मगर कहाँ जायेंगे"[2]

प्रश्न सही है कि काश पहले हम अपनी फसल को कीड़े मकोड़ों से बचाने का उपाय कर पाते। उन्होंने नेहरू जी की भावुकतापूर्ण देशभक्ति पर व्यंग्य किया है कि जीते जी तो किसानों के लिए मंगलकारी उपाय कर नहीं पाए अब मर कर फिजूल खर्ची करके इच्छा पूरी करने से भी नहीं चूकते। अंत में जिन मगरमच्छ रूपी शोषकों की ओर इशारा कर रहे हैं वह भी उन्हीं पर व्यंग्य है।

'बताऊँ' कविता में उन्होंने नेहरू जी की 'विदेशी वाणिज्य-भक्ति?' की व्यंग्यपूर्ण उपमा दी है। जैसे नायक दूसरी औरत से प्रेम करने लगे यह बेहयायी भी है, बेवफाई भी–

"बताऊँ ? / कैसी लगती है- / नेहरू की विदेशी-वाणिज्य-भक्ति?
धीरोदात्त नायक की सुदुर्लभ परकीया-रसाई!!"[3]

स्वदेशी व्यापार और वाणिज्य तंत्र की ओर ध्यान न देकर नेहरू जी ने हर क्षेत्र में जो विदेशी व्यवस्था को अपनाने की कोशिश की आज उसका खामियाजा पूरा हिन्दुस्तान भुगत रहा है। हर देश को स्वावलंबी होना चाहिए, उसके लिए स्वदेशी उद्योग एवं वाणिज्य को बढ़ावा देना चाहिए तभी उस देश का समुचित

---

1. रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. सं.-155
2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-11-12
3. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-55

विकास होगा लेकिन आज बेरोजगारी के जिस मुकाम पर हमारा देश पहुँच गया है उसमें कहीं न कहीं उनका भी दोष है।

'झंडा' कविता में कवि ने नेहरू जी के क्रूर शासन का पर्दाफाश किया है। बिहार में 'राष्ट्र ध्वज' के लिए जिस बर्बरता का परिचय सत्तातंत्र ने दिया उस पर कवि ने लिखा–

"दस हजार, दस लाख मरे, पर झंडा ऊँचा रहे हमारा!
कुछ हो कांग्रेसी शासन का डंडा ऊँचा रहे हमारा!
*** * * * * * ***

इक तरफा फुफकार रहा है, लाल किले का भारी झंडा!
ओ बिहार, क्या देख रहा तू! खाता चल नेहरू का डंडा
*** * * * * * ***

खबरदार ओ पंडित नेहरू! खबरदार श्री कृष्ण, अनुग्रह!
पी जाएगी शक्ति तुम्हारी अपनी ना समझी का आग्रह।"[1]

पूरी कविता नेहरूजी और श्री कृष्ण सिंह के शासन की खामियों की आलोचना है, हालाँकि इस कांड के लिए वे दोषी नहीं हैं लेकिन सत्तातंत्र में बैठे होने के कारण कवि की शिकायत के शिकार वही हुए हैं। गुनाहगारों को सजा देने का अपना तरीका होता है, हमारी सरकार उसपर विचार करे और प्रयास करे कि गुनाहों का खात्मा हो गुनाहगारों का नहीं। सत्तातंत्र की क्रूरता का कवि विरोधी है।

जवाहरलाल जी की फिजूलखर्ची नागार्जुन की आँखों में बहुत चुभती है। खुद जब वे विदेश यात्रा पर जाते हैं तब इस गरीब देश का कितना नुकसान होता है इसका उन्हें कोई अनुभव नहीं। 'पंडित जी जाने वाले हैं रानी के दरबार में' कविता और 'आओ रानी हम ढोएँगे पालकी' एक ही भाव बोध की कविता है-

"जय बोलो जी, जय बोलो जी वीर जवाहरलाल की
लंदन में ढोयेंगे पंडित जी रानी की पालकी
रत्ती भर भी नहीं लगेगा बट्टा शाही शान में
मरें पटापट लोग भूख से चाहे हिन्दुस्तान में "[2]

'कामनवेल्थी दुनिया' के साथ नेहरू जी की साँठ-गाँठ कवि को चिन्ता में डाल देती है क्योंकि वे उसे 'कसाई-बाजार' की संज्ञा देते हैं जहाँ अपने स्वार्थ के लिए विश्व-जन के कल्याण की हत्या की जाती है।

बिहार में बाढ़ आई है उस पर नेहरू जी का हास्यापद बयान आता है–'बाढ़ यहाँ के लिए वरदान है।' कवि उनके गैर जिम्मेदाराना बयान से दुखी है, उनके व्यवहार से आहत होकर लिखता है–

"नेहरू उड़कर यहाँ आए, हमारा हाल देखा / दे गये फिर हमें अपना ज्ञान।
बाढ़ तो है यहाँ की खातिर महा वरदान / सलामत कुर्सी, सलामत रहे उनकी जान
हमारे ही वोट पाकर डींग मारे और झाड़े शान
हमारी तो अमावस है, तुम्हारा यह प्रात!! / छीलो बात पर तुम बात
राजा दूल्हा बाज, चीलों की चली बरात / बाँटने को मौत की सौगात!
हो रहे हम क्षुब्ध और अंधीर / देख लो तुम हमारा उरचीर
सताती तुमको न क्या अपने वतन की पीर
प्रकृति के दुर्दान्त पैरों को न सकती बाँध क्या जनशक्ति की जंजीर
हाय नाहक देशमाता के दृगों से बह रहा है नीर"[3]

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-84*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-43*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-50-51*

कविता अपने आप में नेहरूजी की लापरवाही का प्रमाण है। एक शासक को संवेदनशील और जिम्मेदार इंसान होना चाहिए। कभी-कभी नेहरू जी ने जो आलस्य और लापरवही दिखाई, कवि ने दर्द भरे स्वर में उनकी शिकायत की।

कवि ने 'दिल्ली चलो!' कविता में नेहरू जी को दंडित कर करने की भी बात की है, यहाँ कवि का साहस देखते बनता है–

"संकटों की आग में फौलाद जैसे तुम ढलो !
पिटा मेनन, कान नेहरू के मलो! / दिल्ली चलो; दिल्ली चलो!"[1]

'नेहरू' नाम से उन्होंने एक और विस्फोटक कविता लिखी है जिसमें नेहरू जी की तमाम नीतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है, पूरी कविता लाजवाब है–

"दुनिया भर को पंचशील का पाठ पढ़ाओ / आइजन हावर के माथे पर मलो रात-दिन
सत्य-अहिंसा की बातों का बादामी गुलरोगन / हमें पिलाओ अनुशासन की बासी खट्टी छाछ
*** * * * * * * * * * * ***
हमें नहीं चाहिए तुम्हारे सोशलिज्म का / यह कंकाली ढाँचा / अति असह्य है प्रजातंत्र पर
ब्यूरोक्रेसी का यह विकट तमाचा / रहो ताकते, बिड़ला-टाटा डालमिया की ओर
रहो ताकते, पड़े मुसीबत में न कहीं कोई भी डाकू-चोर
रहो ताकते, रंज न हों अंग्रेज और अमरीकी वाणिक समाज
रहो ताकते, बना रहे लाठी-गोली का राज / रहो ताकते, सुखी न हो जायें मजदूर-किसान
रहो ताकते, दबे रहें मध्यवर्गी इंसान / रहो ताकते, राजनीति धुस जाये कहीं न घर घर
रहो ताकते, हो न मुअत्तल महापतित आफ़ीसर
बाहर की दुनिया के लेखे तुम हो गौतम-बुद्ध / घर में लेकिन बात-बात पे कुद्ध
बाहर निभा रहे हो अपने पंचशील-दशशील / ठोक रहे हो घर में तरुणों के सीने पर कील
अजी तुम्हारे दिल-दिमाग की खूबी कौन बताए।
हे अद्भुत नटराज, तुम्हारी माया कही न जाए।"[2]

कथनी-करनी का भेद नेहरू के व्यक्तित्व की कमजोरी रही है, कवि ने बड़ी खूबी से उनके व्यक्तित्व की विसंगतियों को यहाँ व्यंग्यपूर्ण ढंग से उभारा है।

इन कविताओं को देखकर कवि की चिंता और उनके साहस का अनुमान लगाया जा सकता है। कवि की जनता के सामने किसी की परवाह नहीं है, किसी का खौफ नहीं है।

ख) इंदिरा गाँधी

नागार्जुन ने सबसे अधिक कविताएँ इंदिरा गाँधी पर लिखी हैं। इन कविताओं में व्यंग्य इतना तीखा हो गया है कि कहीं-कहीं वह गाली-गलौज के स्तर तक पहुँच गया है जो कवि के लिए शोभनीय नहीं। लेकिन इन कविताओं के बिना न जन आकांक्षा को समझा जा सकता है न इंदिरा गाँधी के अन्दरुनी व्यक्तित्व को। इन कविताओं में उनके तानाशाही, चापलूस पसन्द, स्वार्थी एवं भ्रष्ट चरित्र का पता चलता है जो कुछ अंशों तक सही है। सत्ता का मद बड़े-बड़ों को ले डूबता है । बड़े-बड़े नेताओं की संगत में रहकर भी इंदिरा जी ने बड़प्पन का परिचय नहीं दिया, कवि इसी विडम्बना की ओर संकेत करते हैं–

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-52
2. नागार्जुन, हज़ार हजार बाँहोंवाली, पृ. सं.-82-83

"क्या हुआ आपको? / क्या हुआ आपको? / सत्ता की मस्ती में
भूल गईं बाप को? / इन्दुजी, इन्दुजी क्या हुआ आपको?
छात्रों के लहू का चस्का लगा आपको / काले चिकने माल का मस्का लगा आपको
किसी ने टोका तो ठस्का लगा आपको / अन्ट-शन्ट बक रही जूनून में
शासन का नशा घुला खून में / फूल से भी हल्का
समझ लिया आपने हत्या के पाप को / इन्दुजी, क्या हुआ आपको
बेटे को तार दिया, बोर दिया बाप को / बचपन में गाँधी के पास रहीं
तरुणाई में टैगोर के पास रहीं / अब क्यों उलट दिया 'संगत' की छाप को?
* * * * * * * * * *

रानी महारानी आप / नवाबों की नानी आप
नफाखोर सेठों की अपनी सगी माई आप /काले बाजार की कीचड़ आप, काई आप
* * * * * * * * * *

सुन रहीं गिन रहीं / गिन रहीं सुन रहीं.....
हिटलर के घोड़े की एक-एक टाप को/एक-एक टाप को, एक-एक टाप को"[1]

भारत जैसे प्रजातान्त्रिक देश में तानाशाही प्रवृत्तियों द्वारा सत्ता का दुरूपयोग करना उचित नहीं था किन्तु इंदिरा गाँधी ने ऐसा किया। सत्य-अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाले बापू और समाजवाद का नारा लगानेवाले जवाहरलाल के साथ रहकर भी यदि इंदिराजी ने हिटलरी तरीके से शासन चलाने की कोशिश की तो निश्चय ही यह दुर्भाग्यपूर्ण था, इसी द्वंद्व में कविता अपने समय की धड़कन बनी है। कवि ने व्यंग्य तो किया है परन्तु सीख देने वाला, इसे साकारात्मक व्यंग्य कहना अधिक उचित होगा।

जनतंत्र में संसद जनता का न्याय-मंदिर है जहाँ पूरे देश के भाग्य का फैसला होता है इसलिए हमें उसे स्वच्छ रखना है, हमें अपने उदारवादी, कल्याणकारी संविधान की भी रक्षा करनी चाहिए लेकिन इंदिरा गाँधी की करतूत देखकर तो हिटलर की नानी भी उसके आगे पानी भरने लगेगी। कवि ने ठीक ही लिखा है-

"जय हो, जय हो, हिटलर की नानी की जय हो!
जय हो, जय हो, बाघों की रानी की जय हो!
जय हो, जय हो, हिटलर की नानी की जय हो!!"[2]

लोकतंत्र के आवरण में जो नाटक हो रहा था कवि उसे बखूबी जानता है इसलिए व्यंग्य करता है—

"डेमोक्रेसी की डमी / वो देखो, देखो, / गुफा से निकली संजय की ममी"[3]

इंदिरा गाँधी ने सत्तातंत्र को इस तरह अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया कि आम जनता को लगने लगा कि यह चुनाव करवाना सिर्फ एक नाटक है। वास्तव में वह अपनी जीत का पूरा उपाय करके ही यह दिखावा कर रही है। इसी विषय पर एक कविता है-'अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन!' इसमें उन्होंने इंदिरा राज की तमाम परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

(I) "संविधान की रूई रूपहली भद्रलोक धुनते हैं
देवि, तुम्हारे स्टेनगनों से तरुण मुंड भुनते हैं

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-10-11*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-26*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-141*

स्वाद मिला असली सत्ता का क्यों न मचाएँ शोर
पूँछ उठाकर नाच रहे हैं लोक सभाई मोर
तुम उनकी रानी-अधिरानी निर्मम निठुर कठोर
गीदड़-भालू, शेर-साँप सब तो हैं मुग्ध विभोर
* * * * * * * * *

(II) अधभूखे-अधनंगे डोलें हरिजन-गिरिजन वन में
खुद तो चिकनी रेशम डाटे उड़ती फिरो गगन में
महँगाई की सूपनखा को कैसे पाल रही हो
शासन का गोबर जनता के मत्थे डाल रही हो"[1]

यह कविता अद्‌भुत और महत्त्वपूर्ण है। अपनी कलात्मक संगठन शक्ति और कथ्य-विस्फोट के कारण। इसमें कवि ने इंदिरा गाँधी को दुर्गा के रूप में चित्रित किया है और भारत की राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक स्थिति के दुर्भाग्यपूर्ण बदलाव को प्रस्तुत किया है। यह 1971 ई. में रचित एक लम्बी कविता है जो वास्तविक स्थिति और आनेवाली स्थिति का जिक्र कर रही है। कवि का अनुमान कितना सही निकला यह इतिहास बताता है।स्वार्थ, सत्ता, तानाशाही मनोवृत्ति पर कवि का प्रहार एकदम सीधा है। रूपकों के माध्यम से कवि ने पूरे शोषण तंत्र को बेनकाब कर दिया है। राजनेताओं के स्वार्थ और शोषण ने जनता को बेहाल कर दिया है। जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तब उनकी रक्षा कौन करे। यह चुनाव तो सिर्फ एक प्रहसन है जनता को भरमाने का।

सत्ता के सिंहासन पर बैठे राजनेता धीरे-धीरे कालेधन के सहारे अपनी दुकान चलाने लगे। अमीरों और भ्रष्ट लोगों ने पैसे देकर भारतीय राजनीति को अपने हाथों की कठपुतली बना लिया, इसी का संकेत कवि इस कविता में कर रहे हैं - 'देवी, तुम तो कालेधन की बैसाखी पर टिकी हुई हो'। कवि लिखते हैं-

"लाभ-लोभ के नागपाश में / जकड़ गए हैं अंग तुम्हारे
घनी धुंध है भीतर-बाहर / दिन में भी गिनती हो तारे
* * * * * * * * * *

महँगाई का तुझे पता क्या! / जाने क्या तू पीर पराई!
इर्द-गिर्द बस तीस हजारी / साहबान की मुस्की छाई!
* * * * * * * * * *

ठगों उचक्कों की मलिकाइन / प्रजातंत्र की ओ हत्यारी
अबके हमको पता चल गया / है तू किन वर्गों की प्यारी
* * * * * * * * * *

जीभ घिस गई रटते-रटते / जनता जनता जनता जनता
ऐसी नकली हमदर्दी से / देखो मैडम, काम न बनता
* * * * * * * * * *

दीन जनों का लहू पी रहीं / इस पचास में इस पचपन में
कौन कहेगा, सचमुच माँ की / दूध पिया तुमने बचपन में
कागज का रुपया हँसता है / मतपत्रों की खींचतान में

---

1. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-48

गुण्डा-गर्दी महायान है / प्रजातंत्र के हीनयान में
अपनी ही प्रतिमा की नकली / चमक दमक पर बिकी हुई हो
देवी तुम तो काले धन की / बैसाखी पर टिकी हुई हो
*** * * * * * * ***
कदम-कदम पर जी कुढ़ता है / पीट रहा हूँ मैं अपना सिर
इस समाधि में उभर रहा है / चंडी का मुख-मंडल फिर-फिर"[1]

कवि जब भी इंदिरा गाँधी पर लिखता है उसे कोई न कोई रूप उसमें नजर आता है-दुर्गा, चंडी, बाधिन, डायन आदि-आदि । और वे उनके व्यक्तित्व की विसंगतियों, करतूतों का खुलासा व्यंग्य और दर्द के माध्यम से करते हैं। इसमें व्यंग्य के साथ-साथ शिकायत का भी स्वर है।

कवि ने इंदिरा गाँधी को निकृष्ट रूपकों द्वारा प्रस्तुत किया है जिससे उनकी करतूतों का भण्डाफोड़ जनता में कर सकें। आम जनता जैसे गाली-गलौज देती है वैसे ही उन्होंने उनपर कीचड़ उछाले हैं, यह निकृष्ट व्यंग्य का उदाहरण है जो क्रोध की चरम सीमा से उपजा है। कलात्मकता में ये कविताएँ कमजोर हो गई हैं क्योंकि यहाँ भाषा नग्न है और व्यंग्य कुंठित। कवि का यह व्यवहार अशोभनीय है। व्यंग्य का भी ऊँचा प्रतिमान होना चाहिए जो व्यक्तिगत राग-द्वेष से मुक्त होकर लोक कल्याण के लिए उपयुक्त हो। 'बाधिन' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-16), 'जाने तुम कैसी डायन हो' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-25) और 'यह बदरंग पहाड़ी गुफा सरीखा' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-28) जैसी कविताएँ इसका उदाहरण है, इसी कविता से एक उदाहरण देना ठीक होगा–

"देखो, यह बदरंग पहाड़ी गुफा-सरीखा / किस चुड़ैल का मुँह फैला है।
संविधान को पोथा, देखो, / पूरा का पूरा ही कैसे लील रही है!
यह चुड़ैल है! / देशी तानाशाही का पूर्णावतार है / महा-कुबेरों की रखैल है
यह चुड़ैल है! / मुस्कानों में शहद घोलकर चुम्बन देती!
दिल में तो विषकन्या वाला वही प्यार है"[2]

भारत के प्रधानमंत्री के बारे में इस तरह लिखना कवि के लिए उचित नहीं था, इसमें कवि की कुंठा और निम्न वर्ग की असभ्यता नजर आती है। भले ही ये कविताएँ लोकप्रिय रही हों किन्तु कवि की सराहना नहीं की जा सकती है। गली की गाली को साहित्य में संचित नहीं किया जा सकता लेकिन कवि ने इसका ख्याल किए बिना ऐसा किया है। आलोचना और व्यंग्य का भी एक स्तर होना चाहिए, स्तरहीन व्यंग्य कुंठित मानसिकता की उपज है, इससे बचना चाहिए।

इंदिरा गाँधी के शासन काल में सत्ता की बर्बरता और बढ़ गई थी, अपनी जिद पर अड़कर इन्होंने आम जनता पर ही नहीं बड़े-बड़े नेताओं पर भी लाठी चार्ज करवाए। 'तुम तो नहीं गयी थी आग लगाने' कविता में उन्होंने यह दिखाया है कि इंदिरा गाँधी के शासन में एक बेकसूर औरत भी शोषण की शिकार है–

"हाय राम, जाँघ में ही गोली लगनी थी तुम्हारे!
जिसके इशारे पर नाच रहे हैं हकूमत के चक्के वो भी एक औरत है।"[3]

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-125-129
2. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-28
3. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-9

कवि का यही पक्ष प्रशंसनीय है जहाँ वह आम जनता के पक्ष में खड़ा है । उन्हें इस बात का तो दुख है ही कि सत्ता तंत्र अंधी हो गई है और बेकसूरों को भी मारने से बाज नहीं आ रही। उन्हें इस बात का भी दुख है कि इस घटना के बाद कोई सांत्वना व्यक्त करने नहीं आया, किसी को आम आदमी की चिंता नहीं है। कहाँ गाँधी जी की जन चिंता और कहाँ इंदिरा गाँधी की क्रूरता !

जयप्रकाश नारायण जैसे लोकनायक पर भी इस बर्बर सरकार ने लाठियाँ बरसाईं । छोटी-छोटी घटनाओं के लिए हत्याकाण्ड करवाना, आम जनता के आन्दोलन पर अमानवीय प्रहार करवाना स्वाधीन भारत के शोषकों को शोभा नहीं देता लेकिन इंदिरा गाँधी के शासन में ऐसा हुआ, तभी कवि लिखते हैं-

"एक और गाँधी की हत्या होगी अब क्या ?/ बर्बरता के भोग चढ़ेगा योगी अब क्या ?
पोल खुल गयी शासक दल के महामन्त्र की! / जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की!
*** * * * * * * * * ***

भटक गया है देश दलों के बीहड़ वन में / कदम कदम पर संशय ही उगता है मन में
नेता क्या हैं, निज-निज गुट के महापात्र हैं! / राष्ट्र कहाँ है शेष, शेष बस 'राज्य' मात्र है!
*** * * * * * * ** * * ***

देवी प्रतिमा चण्ड-मुण्ड को लिये साथ में / हुई अवतरित, बन्दूकें हैं दसो हाथ में
लगे बैठने गद्दों पर हिटलर-मुसोलिनी / हुई मूर्छिता भारत माता ग्रामवासिनी।"[1]

विरोधियों और आन्दोलन कर्मियों के साथ सत्ता पक्ष को कैसे निबटना चाहिए यह अभी तक हमारी सरकार नहीं जान पाई है, देश अपना है, जनता अपनी है फिर सजा हम किसको दे रहे हैं। वार्ता और समझौते से सबकुछ हल किया जा सकता है, लाठी और गोली से नहीं। झुककर ही झुकाया जा सकता है, त्रुटियों को दूर करके ही लोकतंत्र को मजबूत किया जा सकता है लेकिन स्वार्थ, सत्ता और जिद को अपना कर कभी सत्ता स्थाई नहीं हो सकती । 1977 ई. में इंदिरा गाँधी के पतन का यही मुख्य कारण था।

कवि ने इंदिरा शासन की तुलना ब्रिटिश शासन की क्रूरता और तानाशाही से की है। वे लिखते हैं–

"नए राष्ट्र की नव दुर्गा है / नए खून की प्यासी
नौ मन जले कपूर रात-दिन / फिर भी वही उदासी
लूटपाट की काले धन की / करती है रखवाली
पता नहीं दिल्ली की देवी / गोरी है या काली
चार-मुखी है,-वचन बदलती / यों ही एक-मुखी है
इस छलिया माई से अब तो / जनता बहुत दुखी है
तानाशाही तामझाम है / सोशलिज्म का नारा...
पार्लमेंट पर चमक रहा है / मारूति का ध्रुवतारा।"[2]

इंदिरा गाँधी ने पुत्र मोह में पड़कर देश की बागडोर उसके हाथों में थमा दी जो उसके योग्य नहीं था। जवाहरलाल के परिवारवाद ने राजनीति में परिवारवाद को इस तरह बढ़ावा दिया जिससे देश की राजनीति स्वार्थ के चंगुल में फँस गई और आज हम इसका वीभत्स रूप देख रहे हैं। 'इर्द-गिर्द संजय के, मेले जुड़ा

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-14-15
2. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-131-132

करेंगे' कविता में नागार्जुन ने चुनौती देते हुए ठीक ही लिखा है-

"इर्द-गिर्द संजय के मेले जुड़ा करेंगे / तीन रंग के सिल्कन झंडे उड़ा करेंगे
अन्धकार ही अन्धकार तब छा जाएगा / बेटे का यह मोह आपको खा जाएगा"[1]

इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता है जनकवि का आत्मविश्वास और तानाशाही शासन तंत्र से टक्कर लेने का अद्‌भुत साहस। उन्होंने अपने साक्षात्कार में स्पष्ट घोषित किया है कि—"सभी तरह के अत्याचारियों, शोषकों, तानाशाहों के खिलाफ मैं जनता का हूँ और उसी का रहूँगा ।"[2] कवि का आत्मविश्वास ही है जो जनता का सम्बल है—

"देवि, तुम्हारी प्रतिमा से मैं दूर खड़ा हूँ / छोटा हूँ पर उन बौनों से बहुत बड़ा हूँ
*** * * * * * * * * ***

जनकवि हूँ, क्यों चाटूँगा मैं थूक तुम्हारी / श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बन्दूक तुम्हारी"[3]

नागार्जुन ने कई कविताओं में इंदिरा गाँधी की तुलना कई जीव जन्तुओं, विचित्र-जीवों से की है जैसे 'तुम्हें मुबारक शाही नखरे' (इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-71) कविता में उन्होंने उन्हें 'रानी मक्खी' की संज्ञा दी है। एक कविता में उन्होंने इंदिरा जी की तुलना झांसी की रानी से की है। दोनों की देशभक्ति की तुलना कितनी व्यंजक है—

"खूब लड़ी मर्दानी वो तो चमकी थी तलवार में
यह मर्दानी दमक रही है डालर के अभिसार में
उसे फिरंगी झुका न पाये, आगे थी ललकार में
इसको तो वे बहा ले गये हमदर्दी की धार में
खूब लड़ी मर्दानी वो तो चमकी थी तलवार में"[4]

इस कविता में नागार्जुन ने इंदिरा गाँधी के पारिवारिक पृष्ठभूमि पर भी व्यंग्य किया है।

एक कविता में उन्होंने इंदिरा गाँधी को 'बंदरिया' तक कह दिया है, यह व्यंग्य का निकृष्टतम रूप है जहाँ कवि अपनी कुंठा मिटाता है—

"तीन रंग का घाघरा, ब्लाउज गाँधी-छाप
एक बँदरिया उछल रही है देखो अपने-आप"[5]

कुछ कविताओं में इंदिरा गाँधी के सत्ता के अंत का आनन्द कवि ने व्यंग्य के माध्यम से उठाया है। कवि मानो चिढ़ा रहा है। 1977 ई. के चुनाव में इंदिरा गाँधी को मुँह की खानी पड़ी, इस पर कवि ने लिखा है—

"प्रभुता की पीनक में नेहरू-पुत्री थी बदहोश
जन गण मन में दबा पड़ा था बहुत-बहुत आक्रोश
नसबंदी के जोर जुलुम से मचा बहुत कोहराम
किया सभी ने उस शासन को अन्तिम बार सलाम"[6]

एक अन्य कविता है— 'इस चुनाव के हवन-कुंड में' इसमें कवि ने उनकी हार का मातम व्यंग्य करते हुए मनाया है...

"चुपके से गाँधी मुसकाया / युग की देवी हार खा गई

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-83*
2. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-185*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-83*
4. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-63*
5. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-68*
6. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-84*

बछड़ा तो बछड़ा, गैया तक / अजी, मुहर की मार खा गई
क्या-क्या मनसूबा बाँधा था / क्या-क्या तो देखे थे सपने
कौन कहेगा प्यारे थे बस / बहुँए अपनी, बेटे अपने
क्या-क्या मनसूबा बाँधा था / क्या-क्या तो देखे थे सपने"[1]

ये व्यंग्य मात्र मजा लेने के लिए लिखे गए हैं, इनका कोई उद्देश्य नहीं है इसलिए ये निस्तेज हैं। हारे हुए पर व्यंग्य करना व्यंग्यकार की कमजोरी है, इंदिरा जी के मामले में कवि ने यह कमजोरी दिखाई है लेकिन कलात्मकता में ये बेजोड़ हैं।

इंदिरा गाँधी की शासन व्यवस्था पर कवि ने एक लम्बी कविता लिखी है– 'नदियाँ बदला ले ही लेंगी'। पूरी व्यवस्था कितनी शोषण-युक्त, अत्याचारी, क्रूर और निर्मम है यह इस कविता से जाना जा सकता है, 'आपातकाल' लागू करना इंदिरा जी की बहुत बड़ी भूल थी जिसके लिए उनकी आलोचना सभी करते हैं लेकिन जनता सरकार की विफलता ने इंदिरा जी को पुनः सत्ता में वापस आने का मौका दिया जिसका जिक्र इस कविता में है, इस कविता में दो महत्त्वपूर्ण बातों का जिक्र करना जरूरी लगता है–

(I) हरिजनों पर अत्याचार जारी है और शासन मौन है-

"नियमित हरजिन-वध के आगे / अश्वमेघ की बात न करना
*** * * * * * * ***
गिरिजन-हरिजन सब तो सहते / सोचा था हम भी सह लेंगे"[2]

लेकिन कवि से नहीं सहा गया, तीस दिन में ही उनका धैर्य जवाब दे गया और वे विद्रोही हो गए।

(II) इंदिरा जी को वे भारत-पुत्री कहते हुए उसके कार्य को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–

"भारत पुत्री ही सवार है/ भारत माता के सीने पर
खुदगर्जी में, औरों के तो / शर्त लगाती है जीने पर
इनकी खातिर कोटि-कोटि जन / आज बाध्य है विष पीने पर"[3]

लेकिन तमाम बुराइयों के बाद भी कवि निराश, हताश और उदास नहीं है। परिवर्तन की आँधी को वह देख रहा है, यही आशा उसके और जनता के जीने का आधार है। आज जो सत्ता परिवर्त्तन चल रहा है उसमें कहीं न कहीं उस अत्याचार की अनुगूँज है। जनता जब जागती है तो सबकुछ स्वाहा हो जाता है।

ग) मुरार जी देसाई

जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गाँधी के बाद उन्होंने मुरार जी भाई की खबर ली है। जनता पार्टी ने उन्हें अपना प्रधनमंत्री चुना लेकिन जो उम्मीद उनसे की गई थी उसपर वे खरे नहीं उतरे। इसी बात की शिकायत कवि ने कुछ कविताओं में की है। एक कविता में वे उनके तुनक मिजाजी स्वभाव पर व्यंग्य करते हैं–

"तुनुक मिजाजी नहीं चलेगी / नहीं चलेगा जी ये नाटक
सुन लो जी भाई मुरार जी / बन्द करो अपने अब त्राटक
*** * * * * * * ***
बदतमीज हो, बदजुबान हो... / इन बच्चों से कुछ तो सीखो
सबके ऊपर हो, अब प्रभु जी / अकड़ूमल जैसा मत दीखो
*** * * * * * * ***
तरुण हिंद के शासन का रथ / खींच सकोगे पाँच साल क्या?

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-87*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-162-163*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-166*

जिद्दी हो पहले दरजे के / खाओगे सौ-सौ उबाल क्या!"[1]

उनके व्यक्तित्व को देखते हुए नागार्जुन ने उनको सीख दी थी, शान्त और उदार रहने को कहा था। आशंका जताई थी कि यही हाल रहा तो पाँच वर्ष तक कैसे राज चलाओगे, लेकिन बाद में यह बात ठीक साबित हुई। जितने धैर्य और समन्वय का परिचय उन्हें देना था वे नहीं दे सके और अंततः उनकी सरकार जल्दी ही गिर गई।

उनको सत्तासीन हुए बारह महीने हो गए और बदलाव की बयार नहीं बही, कोई परिवर्तन नजर नहीं आया इसपर कवि ने उन्हें एक बार और सावधान किया-

"कुर्सियों पर जमे तुमको / फाइलों में रमे तुमको / क्रांन्ति-पर थमे तुमको,
हो गए बारह महीने / हो गए बारह महीने
* * * * * * * * *
सादगी-ईमानदारी / गयी कुचली, गयी सारी / दुखी हैं नर और नारी
हो गए बारह महीने / हो गए बारह महीने / जल रहे, भुन रहे हरिजन
दुखी पुरजन, दुखी परिजन / तुम्हें तो प्रिय हुए अरिजन
हो गए बारह महीने / हो गए बारह महीने"[2]

उनको गद्दी पर बैठे एक वर्ष हो गए लेकिन शोषण, स्वार्थ और लापरवाही का अंत नहीं हुआ यह अत्यंत दुख का विषय था। हमारी कार्य संस्कृति नहीं बदली। यही मूल चिंता का कारण है। राजनीति तो सिर्फ दर्पण है, पूरे समाज का चेहरा वहाँ प्रतिबिम्बित होता है और समाज में शोषण मौजूद है, कानून उसे रोकने में अक्षम साबित हो रहा है। यह दुख का कारण है। हरिजनों पर अत्याचार नहीं रुका, बेलछी कांड को अंजाम दिया गया और सरकार कुछ न कर सकी।

मुरार जी भाई पर और भी कुछ कविताएँ हैं-(I) 'देख लो, इनके कई-कई माथ है' (तुमने कहा था, पृ. सं.-58), 'भाई भले मुरार जी' (हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-131) एवं 'कंचन मृग' (हजार-हजार बाँहोंवाली, पृ. सं.-131)। इसमें कहीं व्यक्तिगत स्वार्थ पर व्यंग्य किया गया है कहीं राजनीतिक उठा-पटक का जिक्र है। 'कंचन-मृग' कविता में उन्होंने मुरार जी भाई के स्वर्ण-प्रेम पर कटाक्ष किया है। मुरारजी भाई के शासन काल में भी गरीबी दूर नहीं हुई, आम आदमी की तमाम समस्याएँ वैसी ही बनी रहीं, इस पर वे लिखते हैं–

"कैसे सूखा टिक्कड़ तोड़ूँ? / हाय नमक तक मिलता नहीं उधार जी!
दिलवा भी दो दवा कहीं से बच्ची है बीमार जी!
निकल नहीं पाती घर से बीबी है लाचार जी!
तुम्हें दुआ दे रहे फटी साड़ी के सौ-सौ तार जी!
* * * * * * * * *
तुम्हें मुबारक टैक्सों की भरमार जी!
हमें मुबारक अपने अरमानों का बंटाढार जी!
अबके सचमुच भारत का होना है बेड़ा पार जी!
सेठों की लक्ष्मी का तुमने किया खूब श्रृंगार जी!

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-89-90

2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-59-61

क्या रक्खा है यहाँ, और क्यों टपकाते हो लार जी!

भाई भले मुरार जी!"[1]

मुरार जी पर लिखी कविताएँ उतनी तीखी नहीं हैं, कही-कहीं उन्हें सुधरनें की सलाह दी गई है। फिर भी एक जगह व्यक्तिगत व्यंग्य निकृष्ट बन पड़ा है, कवि को इसका ख्याल रखना चाहिए था–

"मूत्र अपना पी रहे हो, / दिव्यजीवन जी रहे हो

क्या कहूँ जिद्दी रहे हो / हो गए बारह महीने / हो गए बारह महीने"[2]

व्यंग्य और व्यक्तिगत आक्षेप में अंतर होता है कवि के व्यंग्य का रुख व्यक्ति की प्रमुख प्रवृत्तियाँ होनी चाहिए न कि निजी आदत! इन्हीं कुछ बिन्दुओं पर नागार्जुन का भटकाव नजर आता है।

घ)विनोबा भावे

बड़े नेताओं में नागार्जुन ने विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण पर व्यंग्य किया है। ये दोनों व्यक्तिगत रूप से अच्छे नेता के रूप में जाने जाते हैं किन्तु नागार्जुन ने इनकी भी कमजोरियों को व्यंग्य का शिकार बनाया है। विनोवा भावे पर नागार्जुन की दो कविताएँ बेजोड़ हैं–

(I) 'संत विनोबा' और (II) 'तकली मेरे साथ रहेगी'

पहली कविता में उनके भूदान आन्दोलन की विसंगतियों की ओर कवि ने ध्यान दिलाया है।उन्होंने बिहार के भूमिदान आन्दोलन को जमींदारों का ढकोसला बताया है। यहाँ जमींदार नाम कमाने के लिए बंजर भूमि का दान कर रहे थे और विनोबा के लौटते ही उस जमीन को वापस ले लेते थे; कवि ने लिखा है–

"सर्वोदय के संत तुम्हारे मीठे-मीठे बोल–

सत्य-अहिंसा जमींदार के दिल में देंगे घोल?

लो, वे कोसी का कछार करते हैं तुमको दान!

यहीं रहो तुम, मिल, जुल हम उपजावैं खेढ़ी-धान!"[3]

जमींदारी उन्मूलन कानून संसद में पास हो गया लेकिन जमींदारी नहीं गई, उनका शोषण नहीं गया। इस माहौल में हृदय परिवर्तन और भूमिदान सपना था; बिनोवा जी के प्रभाव से कुछ क्षेत्र में यह हुआ भी किन्तु अधिकांश जगह पर बेकार सिद्ध हुआ। पूरी कविता गरीब भूमिहीन मजदूर छोटे किसानों की सच्ची जीवन गाथा हैं–

"सबका उदय तभी होगा, तब सब होंगे खुशहाल;

आठों पहर यहाँ बेचैनी, कुर्की साँझ-परात!

हम क्या जानै संत, तुम्हारे भूमिदान की बात?

बिना डीह के हुए करोड़ों यहाँ डोम, बँस फोड़!

लाखों लाख फिरै वे नगन...भूखै मरैं करोड़

* * * * * * *

कैसा तप, साधना कैसी, कैसा यह भूदान

जिस पर खद्दरधारी जालिम बिखरावैं मुसकान।

* * * * * * *

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-129-130

2. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-60

3. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-51

संत विनोबा, समझ बूझ लो जमींदार भी चाल
वर्ना गला नहीं पाओगे सर्वोदय की दाल।"[1]

इस तरह उन्होंने विनोबा जी को सावधान किया है जिसे भोला भाला समझकर जमींदार उन्हें ठग रहे हैं।

विनोबा भावे ने आपातकाल को 'अनुशासन पर्व' कह कर समर्थन दिया था। इस अत्याचार और दमन चक्र का उन्होंने मौन, समर्थन दिया था इसी पर कवि उनपर व्यंग्य करते हैं। विनोबा जी ने उस समय इंदिरा गाँधी का समर्थन किया था जिस पर कवि ने व्यंग्य किया है–

"राजनीति के बारे में अब एक शब्द भी नहीं कहूँगा
तकली मेरे साथ रहेगी, मैं तकली के साथ रहूँगा
नहीं जरूरत रही देश में सत्याग्रह की, अनुशासन है
सही राह पर हाकिम है तो भली जगह पर सिंहासन है
* * * * * * * *
सत्य रहेगा अन्दर, ऊपर से सोने का ढक्कन होगा
चाँदी की तकली होगी तो मुँह में असली मक्खन होगा
करनी में गड़बड़ियाँ होंगी, कथनी में अनुशासन होगा
हाथों में बन्दूकें होंगी, कन्धों पर सिंहासन होगा"[2]

जो समय और समाज हमारे सामने है हम उसके उत्तरदायी हैं चुप्पी साध लेने और आँखें मींच लेने से समस्याएँ नहीं खत्म होतीं उनसे जूझना पड़ता है। पलायन से बढ़कर पाप नहीं इसलिए विनोबा जी का मौन खलता है। स्वतंत्रता सेनानी का इस तरह अत्याचार को देखते हुए चुप रह जाना खतरनाक था, कवि ने उनकी इसी प्रवृत्ति की खिल्ली उड़ाई है। इस मामले में जयप्रकाश जी एक उदाहरण हैं जिन्होंने नेतृत्व की बागडोर संभाली और आन्दोलन को एक दिशा दी।

ङ) जयप्रकाश नारायण

जयप्रकाश जी में भी विसंगतियाँ थीं जिससे नागार्जुन के समर्थन के साथ-साथ उन्हें भी उनके व्यंग्य का शिकार होना पड़ा। 'वो सब क्या था आखिर' कविता में उन्होंने उनकी अकर्मण्यता पर आँसू बहाया है। कवि हृदय से जयप्रकाश जी का सम्मान करता है इसलिए चाहता है कि सत्ता परिवर्तन में उनकी सक्रिय हिस्सेदारी हो लेकिन जन-सैलाब का सही उपयोग लोकनायक जयप्रकाश भी नहीं कर सके, समय पर चूक गए। इसलिए कवि उनसे दुखी होकर प्रश्न पूछ रहा है–

"दस लाख की भीड / उस दिन दिल्ली के माहौल को
कर रही थी कंपित उत्तप्त /......तुम्हारा स्पष्ट आदेश चाह रही थी
......तुम उनके समक्ष / मुस्कुराए थे निहायत भद्रतापूर्वक
वहाँ से वापस आकर लगभग दो घंटा बोले थे
बोट क्लब वाले मैदान में वही लाखों की भीड़
फिर तुम्हारे सामने थी / उस दिन मार्च की छठी तारीख थी
'लोकनायक' उस रोज वो तुम कौन थे?
तुम्हारा भोलापन / तुम्हारी 'लोकनीति' / सम्पूर्ण क्रांति वाले तुम्हारे सोंधे ख्याल

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-51-52
2. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-73-74

व्यापक जन क्रांति की तुम्हारी अनिच्छा / 'सर्वहारा' के प्रति परायेपन के तुम्हारे भाव
अभिनव महाप्रभुओं के प्रति शक्ति सन्तुलन का / तुम्हारा हवाई मूल्य बोध....
तुम्हारी मसीहाई महत्वाकांक्षाएँ.... / काहिल, आसम पसन्द, संयमशील, डरपोक, कपटी, क्रूर
'भलेमानसों' से दिन-रात तुम्हारा घिरा होना / वो सब क्या था आखिर?
समझ नहीं पाया कभी, समझ नहीं पाऊँगा
तरल आवेगों वाला, अति भावुक हृदय धर्मी मैं जनकवि"[1]

श्रद्धा मिश्रित व्यंग्य के कारण यहाँ भावुकता का आवेग दिखाई पड़ रहा है। व्यंग्य करने का भी यह एक कलात्मक अंदाज है।

च) राजीव गाँधी

राजीव गाँधी पर नागार्जुन ने तीन कविताएँ लिखी हैं। 'विकल हैं व्याकुल हैं..." (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-146-147) में उन्होंने उनकी तारीफ की है क्योंकि वे मक्खनबाजी का मौका नेताओ को नहीं देते थे। दूसरी कविता उन्होंने उनके बहुमत पाकर सत्तासीन होने के समय लिखी और यह आशंका जताई कि यही बहुमत इसके पतन का कारण बनेगा। 1984 में इंदिरा गाँधी के बाद बहुत से अभिनेता-अभिनेत्रियों को संसद में जाने के लिए टिकट दिए गए, इन्हीं सब प्रवृत्तियों के आधार पर नागार्जुन ने भविष्यवाणी की थी जो सही निकला–

"यह प्रचण्ड बहुमत ही सचमुच
तेरे शिशु का महारोग है
ये ही इसको ले डूबेगा
नहीं काम का रहने देगा
यह प्रचण्ड बहुमत ही
इसको ले डूबेगा"[2]

बाद में वे 'मिस्टर क्लीन' नहीं रह पाए। बोफोर्स तोप की खरीददारी में दलाली का दाग उनके दामन पर भी लग गया इसी को ध्यान में रख कर नागार्जुन ने एक कलात्मक कविता लिखी है–

"कच्ची हजम करोगे / पक्की हजम करोगे
चूल्हा हजम करोगे / चक्की हजम करोगे
बोफोर्स की दलाली / गुपचुप हजम करोगे
नित राजघाट जाकर / बापू-भजन करोगे"[3]

छ) लालबहादुर शास्त्री

लालबहादुर जी पर लिखी गई कविता सुन्दर श्रद्धांजलि है। उन्होंने कम राजनेताओं की प्रशंसा की है, गाँधी जी के बाद लालबहादुर दूसरे नेता है जिनके लिए हृदय ही नहीं काव्य में भी कवि आँसू बहाते हैं। कवि ने चुन-चुन कर एक-एक उपमा से शास्त्री जी को श्रद्धा सुमन अर्पित किया हैं–

"सब खड़े रहे उसकी बलिवेदी के समीप
लौ चली गयी बिल्कुल ऊपर / रह गया रिक्त आकाशदीप
*** * * * * * * ***

---

1. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-23-24
2. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-13
3. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-20

दुर्दम दानव के नथनों में / वह डाल गया कैसी नकेल
तानाशाही के सीने पर वह बज्रकील
वह लाद गया हिंसा पर कैसे पंचशील
वह शक्तिदूत, वह शांतिदूत / वह जरा-मरणजित, यशःपूत
वह वामन का परमावतार / अपनी मिट्टी की महिमा का वह कलाकार
वह अति साधारण, अतिमहान / वह ओज-तेज का कीर्तिमान
सादगी-विनय से पूर-पूर / वह आडम्बर से दूर-दूर
वह परम अकिंचन, कर्मवीर, वह सत्यसंध /वह बारूदी बदबू पर ताजी मलय गंध"[1]

ज) लालू यादव

दूसरी प्रशंसात्मक कविता 'लालू यादव' पर है। लालू यादव के ग्रामीण स्वाद बोध पर कवि ने एक कविता लिखी है- 'लिट्टी इण्टरनेशनल' भदेस भाषा में लालू जी को कविता में कवि ने उतारा है। इस कविता की सबसे बड़ी खासियत है इसका प्रस्तुतीकरण। नाटकीय कला के साथ कविता अपने-आप में भाषा की मिठास से भरी हुई है–

"मगर हाँ / एक ठो दिक्कत फिर भी रह जायेगी
कच्चे आम की चटनो / करोंदे का अचार / कच्चे आँवले की चटनी।।
ई सब कइसे होगा? / लेकिन हाँ, जाना-आना लगा रहेगा तो
आपके तरफ का खाना-पीना / हमारे इहाँ के लोग भी जान जाएँगे
और हाँ, गुझिया, मालपुआ / मिस्सी रोटी....ई सब सीखने में
आपके कुक को कई महीने लग जायेंगे..../ हड़बड़ाइए नहीं
रसे-रसे सब कुछ आपका कुक / सीखिए लेगा न ऽऽ!!"[2]

इस कविता में लालू यादव की राजनीति पर एक शब्द भी कवि ने नहीं लिखा है सिर्फ उसके स्वाद बोध और ग्रामीण व्यंजन के प्रेम को प्रकट किया है।

झ) चौधरी चरण सिंह

कुछ कविताओं में नागार्जुन ने चौधरी चरणसिंह का उल्लेख किया है लेकिन एक कविता उनको भी समर्पित है। प्रधानमंत्री बनने की उनकी चाह पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं–

"चरण सिंह की अन्तिम चाह / कैसे भी, पूरी हो वाह...
लम्बे डग हैं, सँकरी राह / बड़ी जलन है, बेहद दाह
चरण सिंह की अंतिम चाह"[3]

चरणसिंह ने कोशिश करके, उठा-पलट कर खुद को प्रधानमंत्री बना लिया लेकिन वह अल्पमत में रहे और संसद का सामना नहीं कर सके। ऐसी चाह पर आह ही भरी जा सकती है। जब वे खेल न सके तो खेलने भी नहीं दिया। विपक्ष का इस तरह इतनी जल्दी बिखर जाना जनता के लिए अच्छा नहीं हुआ परन्तु स्वार्थी राजनेताओं का यही हश्र होता है।

---

1. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-20
2. नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-32-33
3. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-139

ञ) संजय गाँधी

राजनीति में संजय गाँधी का प्रादुर्भाव एक धूमकेतु की तरह हुआ था। अपनी माँ की सत्ता के सहारे वह तेजी से भारतीय राजनीति में अपने पाँव जमा रहे थे कि एक विमान दुर्धटना में उनकी जान चली गई। नागार्जुन ने कविताओं के बीच-बीच में उनका उल्लेख किया है। 'इर्द-गिर्द संजय के मेले जुड़ा करेंगे' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-83) एवं 'बड़ी फिकर है हमें तुम्हारी' (हजार हजार बाँहोंवाली, पृ. सं.-188) में उन्होंने उनका जिक्र किया है। कवि ने उनके कालकवलित हो जाने पर लिखा–

"युवक हृदय सम्राट, सम्भावित प्रधानमंत्री
हुआ था औचक ही काल कवलित महा-उत्पाती धूमकेतु की भाँति
हो गया था तिरोहित अपने आप / लाख मना करने पर भी माना नहीं उसने
अपूर्व कीर्तिमान स्थापित करने की धुन में / कर बैठा था वो अपना ही सर्वनाश"[1]

अपने प्रचण्ड व्यक्तित्व और उत्पाती स्वभाव के लिए ख्यात संजय गाँधी अपनी ही भूल के कारण मृत्यु के आगोश में चले गए। कवि ने इसी बात को कविता में उठाया है।

ट) गुलजारीलाल नंदा

राजनीति और पैसे का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। बिना पैसे की राजनीति नहीं होती और पैसे के लिए सभी दल अमीरों से चंदा लिया करते हैं–। कभी-कभी इस लेन-देन में गड़बड़ी हो जाती है और जनता में व्यक्ति और दल की स्थिति भ्रष्टाचार में डूबे व्यक्ति और दल की हो जाती है। गुलजारीलाल नंदा कई बार कार्यवाहक प्रधानमंत्री बने और दल के नाम पर चंदा लिया और फँस गए। कवि ने इसी घटना पर मज़ा लेते हुए व्यंग्य किया है–

"डाल दिया है जाने किसने फंदा जी!
कैसे हजम करेगा लीडर लाख-लाख का चंदा जी?
कैसे चमकेगा सेठों का दया-धरम का धंधा जी?
रेट बढ़ गया घोटाले का सदाचार है मंदाजी!
कौन नहीं है भ्रष्टाचारी, कौन नहीं है गंदा जी?
बुरे फँसे हैं नंदा जी! / डाल दिया है जाने किराने फंदा जी!"[2]

ठ) कामराज

कामराज के मंत्री रहते महँगाई इस तरह बढ़ने लगी कि कवि बेचैन हो गया, उसने एक कविता द्वारा व्यंग्य करते हुए लिखा है–

"खड़ाऊँ थी गद्दी पर / कर रहा था नाम राज / हवा लगी पूछने
कहाँ गये कामराज / सोना लगा हँसने /लोहा लगा रोने/रबड़ लगी घुलने
खादी लगी घुलने / सेन्टर में वाम राज, बाकी अवामराज
त्राँ त्राँ धिन् धिन् धा किट / बनिया टटोलता पाकिट

---

1. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-188
2. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-164

मंडियों पे छा गये, खूब चढ़े दाम राज / हवा रही पूछती कहाँ गये कामराज
खड़ाऊँ थी गद्दी पर / करता था नाम राज
क्या हुआ कामराज, कहाँ गया कामराज"[1]

ड) बी० पी० मंडल

मंडल आयोग की रिपोर्ट तैयार करनेवाले बी. पी. मंडल के विरोधाभासी चरित्र पर भी नागार्जुन ने एक कविता लिखी है–

"वाह भई, मंडल। / वाह भई, विरोधाभासों का बंडल !
वाह भई, बिहारी कालनेमि का कमंडल / वाह भई, शोषित-शिरोमणि...
वाह भई, बी. पी. मंडल!!"[2]

ढ) श्रीकृष्ण सिंह एंव अनुग्रह नारायण सिंह

'झंडा?' कविता में कवि ने बिहार में छात्रों पर हुए जुल्म के लिए श्रीकृष्ण सिंह को दोषी ठहराया है क्योंकि उस समय वही मुख्यमंत्री थे। जवाहरलाल एवं अनुग्रह नारायण सिंह के साथ उन्होंने इन्हें भी खबरदार किया है–

"खबरदार ओ पंडित नेहरू। खबरदार श्रीकृष्ण-अनुग्रह!
पी जाएगी शक्ति तुम्हारी अपनी नासमझी का आग्रह!
मैं बतलाऊँ झंडे का अपमान तुम्हीं ने स्वयं किया है
आजादी के भव्य भाल पर काला टीका लगा दिया है"[3]

ण) दरोगा प्रसाद राय

बिहार में दरोगा प्रसाद राय दो बार मुख्यमंत्री बने। एक बार उनके हटने पर कवि ने उनपर व्यंग्य करते हुए सांकेतिक भाषा में लिखा–

"बैल के सीगों पर प्राण टँगे गाय के / बाघ हँसा, बकरी चली गयी मायके
दिन हैं लद चले 'सिंहासनराय' के / मिल गये आँतों को 'षटरस' जायके
बैल के सींगों पर प्राण टँगें गाय के।"[4]

त) सुखराम

एक कविता उन्होंने भूतपूर्व संचार मंत्री 'सुखराम' पर लिखी है। वह कविता उन्होंने 18 अगस्त 1996 ई. को लिखी है जिससे पता चलता है कि 85 वर्ष की उम्र में भी उन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार पर व्यंग्यात्मक प्रहार करना नहीं छोड़ा। यही तेवर नागार्जुन को अनोखा कवि बनाता है, जिस उम्र में अन्य कवि निष्क्रिय हो जाते हैं, उस उम्र में भी उत्साह के साथ अपना कवि कर्म उन्होंने पूरा किया। इस कविता में उन्होंने भ्रष्टाचार में लिप्त पूर्व प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंह राव और सुखराम पर व्यंग्य किया है। प्रधानमंत्री ने सुखराम जैसे नेताओं का पालन-पोषण किया और उन्होंने अपने मंत्रीत्वकाल में खूब पैसे बनाए, कवि ने इन्हीं तथ्यों का उद्घाटन किया है–

"अब तक कहाँ छिपे थे / ये 'भारत-रत्न' / हिमाचल में पैदा हुए....
पले-पुसे बड़े हुए / पी. वी. की गोद में / बैठे, 5 वर्ष तक मौज किया

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-54
2. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-69
3. नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-84
4. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-44

संचार मंत्री रहे / पी. वी. ने प्यार से / पीठ सहलाई / अपने आप
जादुई तरीके से / नकदा-नगदी करोड़ों की रकम / लॉकर में संचित / होती रही
जय हो सुखराम की! / जय हो पी. वी. के / अंतरंग सखा की!!
मगर दरअसल / 'सुखराम' कोई एक व्यक्ति नहीं, गोत्र है-
पूरा का पूरा पी. वी. नरसिंह राव इस / गोत्र के बीज-पुरूष हैं
राव अगर 5 वर्ष और / प्रधानमंत्री रह पाते तो / पट्ठा सुखराम
जाने क्या हो जाता!"[1]

इस तरह हम देखते हैं कि जीवन के अन्तिम दिनों तक नागार्जुन के व्यंग्य की धार भोथरी नहीं हुई।

थ) मायावती

कांशीराम और मायावती को ध्यान में रखकर कवि ने एक कविता लिखी है 'मायावती-मायावती'। उनके कारनामों का उल्लेख करते हुए कवि ने इनके विद्रोही तेवर को प्रस्तुत किया है। दलितों के लिए काम करने के कारण ही कवि ने इनकी जयजयकार की है–

"मायावती-मायावती / दलितेंद्र की छायावती-छायावती
मायावती-मायावती / जय-जय है दलितेंद्र / प्रभु, आपके चाल-ढाल से
दहशत में है केन्द्र / जय-जय हे दलितेंद्र।"[2]

(द) बाल ठाकरे

बाल ठाकरे जैसे खतरनाक नेता पर कलात्मक ढंग से कवि ने व्यंग्य करके अपने साहस का परिचय दिया है। उनकी उग्र राजनीति पर टिप्पणी करते हुए कवि ने लिखा है–

"बर्बरता के ढाल ठाकरे! / प्रजातंत्र के काल ठाकरे!
धन-पिशाच के इंगित पाकर ऊँचा करता भाल ठाकरे!
चला पूछने मुसोलिनी से अपने दिल का हाल ठाकरे!"[3]

इस तरह नागार्जुन को व्यंग्य का एक भी बिंदु दिखाई पड़ा और उन्होंने व्यंग्यवाण छोड़े। छोटा नेता हो या बड़ा, स्थानीय, राज्यस्तरीय हो या राष्ट्रीय कोई उनकी दृष्टि से नहीं बच सका। बहुत सी व्यंग्य कविताएँ पुस्तकों में संकलित नहीं हो पाई हैं वे पत्र-पत्रिकाओं में हैं जिनकी अनुपलब्धता की वजह से उसपर चर्चा नहीं हो पाई। जनकवि होने को फर्ज कवि ने बखूबी निभाया। व्यंग्य के कोड़े से सबको यह बताया कि अपनी कमजोरियाँ दूर करो नहीं तो जनता तुम्हे माँफ नहीं करेगी। इन कविताओं में जन-आकाक्षाओं की अभिव्यक्ति हुई है इसलिए ये लोकप्रिय हो गईं। क्षणिक मानी जानेवाली ये कविताएँ अपनी व्यंग्य शक्ति के कारण 'दीर्घजीवी' हैं। ये व्यक्ति मात्र की आलोचना नहीं है प्रवृत्ति की आलोचना है।

(ध) फूलन देवी

फूलन देवी 'शोषित नारी' और 'लड़ाकू महिला' का प्रतीक बन गई थी। कवि नागार्जुन ने उन पर दो प्रशंसात्मक कविताएँ लिखीं हैं। (1) फूलन देवी (नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-237-238) (2) फूलन कथा (नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-456-461)। कवि को उनका लड़ाकू व्यक्तित्व अच्छा लगता है, उन्होंने उन्हें 'दुर्गामाता की बेटी' कहा है–

"फूलन देवी दुर्गामाता की बेटी है / कौन सामना कर सकता है।"[4]

दूसरी कविता में उनके जेल-भ्रमण का वर्णन है।

---

1. *शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-462-463*
2. *शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-464*
3. *शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-51*
4. *शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-237-238*

पाँचवाँ अध्याय

नागार्जुन की हिन्दी कविता में प्रकृति सौन्दर्य

(1) नागार्जुन की हिन्दी कविता में ग्राम्य-प्रकृति

(2) नागार्जुन की हिन्दी कविता में पर्वतीय प्रकृति के विविध रंग

(3) ऋतु-सौन्दर्य

(क) बसंत (ख) ग्रीष्म (ग) वर्षा
(घ) शरद (ङ) शिशिर (च) पूस

(4) प्रकृति के विविध उपादान : सौन्दर्य का नया संसार

(क) बादल (ख) नदी (ग) समुद्र (घ) सूरज
(ङ) चाँद (च) तारे (छ) पेड़ (ज) पत्ते
(झ) फूल (ञ) पक्षी (ट) कीचड़

प्रकृति से मनुष्य का रिश्ता सबसे पुराना और गहरा है। इसके बिना हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते लेकिन जैसे-जैसे हम विकास की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। आज हमारे जीवन में जो समस्याओं का अम्बार लग गया है उसका मुख्य कारण है-प्रकृति से दूरी। इस यांत्रिक युग में प्रकृति से इतना आत्मीय रिश्ता कवि नागार्जुन का है, जो आश्चर्य-जनक, सुखद और सन्तोषजनक है।

प्रकृति पर नागार्जुन ने काफी लिखा है खास कर निराला के बाद डॉ. नामवर सिंह ने भी उनकी इस विशेषता पर लिखा है **"नागार्जुन के काव्य संसार का एक बहुत बड़ा भाग अनूठे प्रकृति चित्रों से सजा है, जिनसे कवि की गहरी ऐंद्रियता और सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि का एहसास होता है। वर्षा और बादलों पर इनती अधिक कविताएँ निराला के बाद नागार्जुन ने ही लिखी है"**[1] कवि का प्रकृति से वही रिश्ता है जो बच्चे का माँ से होता है, किसान का धरती से होता है- वात्सल्यपूर्ण और यथार्थमय। कवि प्रकृति से इतना निकट है कि उससे संवाद स्थापित करता है, उसके एक-एक क्रियाकलाप से रोमांचित होता है और अद्‌भुत प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

प्रकृति के नाना-रूपों का कवि सजीव चित्रकार है और उसके विविध क्रिया-कलापों का प्रत्यक्षदर्शी। नागार्जुन के काव्य में अधिकांशतः प्रकृति आजाद है, कम स्थलों पर वह अन्य भावों का आलम्बन एवं प्रतीक बनी है। कवि का अपने देश की धरती, आकाश, समन्दर, सूरज, चाँद, तारे, बादल, पवन, नदी, पेड़, पक्षी और फूलों से सहज और आत्मीय सम्बन्ध है। वह अनुपम इन्द्रियबोध और अद्‌भुत सौन्दर्य-रूप को जगाता है। कवि का चंचल भाव-बोध सूक्ष्म अनुभूतियों के अद्वितीय-राग को जगा जाता है। कवि ने अनुछुए प्रसंगों की सृष्टि करके नए भाव बोध को शब्दों में साकार किया है। उनका प्रकृति चित्रण छायावादी कवियों के प्रकृति चित्रण से अधिक यथार्थ, जीवंत और सहज है। वह सहज हमारी संवेदना को छूती है और हममें एकाकार हो जाती है।मानव और प्रकृति का इतना निष्कलुष और स्वाभाविक सम्बन्ध अन्यत्र परिलक्षित नहीं होता है। **डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी** उनके प्रकृति प्रेम की विशिष्ट अभिव्यक्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं–**"प्रकृति से प्रेम सुसंस्कृत व्यक्ति ही कर सकता है। नागार्जुन के लिए प्रकृति शिशु रूप में तृप्ति का माध्यम है। वे प्रकृति का सौन्दर्य आँकने में विशिष्ट हैं। नागार्जुन ने जीवन जगत के जो चित्र खींचे हैं वे उनके देखे हुए हैं।"**[2]

कवि को प्रकृति से लगाव ही नहीं उसकी चिन्ता भी है। जंगल के जलने और गंगा के प्रदूषित होने की चिन्ता कवि की कविता में मौजूद है।

कवि ने प्रकृति से कभी अपने व्यक्तित्व को अलग नहीं माना, वे चमकते सूर्य, रंग बिरंगे फूल और पकी सुनहली फसलों में अपनी ही आभा देखते हैं। उन्होंने प्रकृति में एकाकार अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है–

"नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है।
यह विशाल भूखण्ड आज जो दमक रहा है / मेरी भी आभा है इसमें
भीनी-भीनी खुशबू वाले / रंग बिरंगे / यह तो इतने फूल खिले हैं
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था / कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था
पकी सुनहली फसलों से जो / अबकी यह खलिहान भर गया

---

1. नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-7
2. नामवर सिंह (सं.), आलोचना, जुलाई-सितम्बर-1987, वर्ष-36, अंक-82, पृ. सं.-72

मेरी रग-रग के शोणित की बूँदे इसमे मुसकाती हैं / .....मेरी भी आभा है इसमें ''[1]

इसी अपनेपन से कवि की कविता में जीवन की ऊर्जा और राग की सृष्टि होती है। जो प्रकृति को भी धड़कता हुआ चित्रित करती है।

नागार्जुन भावुक कवि जरूर हैं किन्तु इनके चित्रण में भावुकता दूसरे तरह की है यहाँ यथार्थ बोध अधिक है। डॉ. केदार नाथ सिंह की टिप्पणी इस संदर्भ में पठनीय है "उनकी प्रकृति और प्रेम पर लिखी हुई कविताओं में वह बुनियादी भावुकता अपने सर्वोत्तम रूप में मौजूद है जो समकालीन कविता सें लगभग गायब हो गयी है। यह एक गहरी यथार्थवादी दृष्टि से अनुशासित भावुकता है जैसी क्लासिकल कविता में पायी जाती है।"[2]

धरती प्रेम और पूजा से अन्न नहीं उगलती बल्कि कठोर श्रम खोजती है जो उसके गर्भ से अन्न को निकाल ले, बड़े सुन्दर ढंग से कवि ने धरती और श्रम के यर्थाथवादी रिश्ते को स्पष्ट किया है–

''धरती धरती है/ पन्हाई हुई गाय नहीं
कि चट से दूह लो कटिया भर दूध ।
* * * * * *
धरती धरती है -/ सचल-अचल वस्तुओं की जननी
सर्वसहनशीला अन्नपूर्णा बसुन्धरा / स्तुति नहीं, श्रम-कठोर श्रम माँगती,
चाहती आई है सदा से धरती/ कर्षण -विकर्षण - सिंचन- परिसिंचन
वचन -तपन-सेवा सुश्रुषा / कर-चरण - तन का सचेतन संस्पर्श
सुदुर्लभ स्वेदकण / प्रतीक्षातुर नयनों के स्निग्ध, तरल प्रेक्षण
शिष्योचित श्रद्धाभक्ति / पुत्रोचित परिचर्या / पतिसुलभ प्रीति
मातृसुलभ ममता पितृसुलभ परिपोषण / चाहती आई है सदा से धरती।''[3]

आजकल आदमी कितना यान्त्रिक और अर्थतंत्र का गुलाम हो गया है कि हवाखोरी के समय भी अपने चित्त को लोभ-लाभ से हटा नहीं पाता, पैसे की चिन्ता उसे हर वक्त लगी रहती है। कवि ने फटकारते हुए ऐसे लोगों को प्रकृति के सानिध्य का आनन्द उठाने कहता है–

''बस-बस, बस / रहने दीजिए / जरा-सा सब्र तो करें
बरतें तो जरा सा परहेज / उठाएँ नहीं शेयरों के सवाल
उठाएँ नहीं नफा-नुकसान की बातों के बवाल
अभी तो आप हवा खाने आए हैं / करने आए हैं चहलकदमी
देखिये भी तो, झुकी हैं दूब की नोकें
कितना दमदार है ओस की बूँदों का मोतिया नूर
कैसा प्रशांत है ढाकुरिया का पानी / साफ है आसमान / धुली है धरती
क्रें-क्रें करते हुए कतार में तैर रहे बतख
आप भी गुनगुनाइए क्वॉर के सूरज की अगावनी में''[4]

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-47*
2. *डॉ. केदार नाथ सिंह, मेरे समय के शब्द, पृ. सं. 59*
3. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-84-85*
4. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-48*

प्रकृति का कितना सुन्दर रूप चित्रित किया है कवि ने। एक-एक अंग का इतना मनोहारी वर्णन मर्मस्पर्शी है, काश! आदमी सबकुछ भूल कर प्रकृति के प्रशांत वातावरण से एकाकार हो पाता तो उसके लिए कितना फायेदमंद होता।

प्रकृति का जादू बड़ा अद्‌भुत होता है, उसका रूप मौसम के अनुसार बदलता है और इतना नया हो जाता है कि पहचानना मुश्किल हो जाता है, नागार्जुन जहरीखाल जाते रहते थे एक नाशपाती के वृक्ष के नीचे बैठते-लेटते थे, इस बार उसके नए रूप ने उन्हें भ्रम में डाल दिया। कवि ने इसी का जिक्र करते हुए लिखा–

"यह तो वो नहीं है! / क्या मैं रोज यहीं बैठता था?
क्या नाशपाती का वही पेड़ है यह? /.....
फलों वाली प्रजाति का यह तरुण तरु
आज मुझे बिल्कुल नया-नया लगता है।
ताम्रवर्णी पत्तियों वाली टहनियाँ / चाँदी के फूलों से ढक गयी हैं।
लगता ही नहीं कि यह वही पेड़ है / पिछले साल जब हमने
इससे विदाई ली थी। / यह हजार-हजार फलों से लद रहा था
रसीले-खटमिट्ठे फलों से! / अभी तो पट्ठा
सफेद फूलों से पटा पड़ा है। / लगता ही नहीं कि वही है"[1]

यह कवि के तारीफ करने का नया अंदाज है। वह भ्रम में नहीं है, उस पेड़ को पहचानता है किन्तु उसके नए रूप को देखकर अभिभूत हो उठता है और आश्चर्यचकित होकर पूछ बैठता है कि क्या यह वही पेड़ है?

कवि ने जलते हुए जंगल का जिक्र अपनी एक कविता में किया है। कवि को जंगल के साथ उन लोगों की चिन्ता भी है जो वहाँ रहते हैं–

"मैंने देखा / दो शिखरों के अन्तराल वाले जंगल में
आग लगी है.... /..... / दस झोपड़ियाँ, दो मकान हैं
इनकी आभा दमक रही है / इनका चूना चमक रहा है
इनके मालिक वे किसान है / जिनके लड़के मैदानों में
युग की डाँट डपट सहते हैं / दफ्तर में भी चुप रहते हैं"[2]

कवि की चिन्ता कितनी व्यापक है इस कविता से पता चलता है आग लगने का सम्बन्ध उस झोपड़ी से है जो उसकी चपेट में आ जाएगा और उस झोपड़ी का सम्बन्ध उस लड़के से है जो मैदानी क्षेत्रों में जाकर मेहनत मजदूरी करके सौ-सौ बात सहकर अपना और अपने घरवालों की पेट भर रहा है। वह आग उसके पेट तक पहुँचेगी जिसमें बहुत कुछ राख हो चुका होगा। दूरदर्शी कवि ही इतनी सूक्ष्म अनुभूति को साकार कर सकता है।

हमारा देश अद्‌भुत है, जिस गंगा की शुचिता और स्वच्छता की महिमा गाता है, उससे लाभ उठाता है, उसी में लाश को फेंक कर उसे दूषित करने से नहीं हिचकता। इससे अधिक मूर्खता और नासमझी क्या होगी जल के इतने अच्छे स्त्रोत को हम प्रदूषित करने से बाज नहीं आ रहे। सड़े हुए लाश के दुर्गन्ध से जल ही नहीं वायु और पूरा वातावरण प्रदूषित हो उठता है, कवि ने इस वीभत्स दृश्य का लोमहर्षक चित्रण किया है–

---

1. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-25
2. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-38-39

"क्षुब्ध गंगा की तरंगों के दुसह आघात....
शोख पुरवइया हवा की थपकियों के स्पर्श .....
खा रही है किशोरी की लाश.... /- हाय गाँधी घाट ।
- हाय पाटलिपुत्र ! / - दियारा है सामने उस पार
पीठ पीछे शहर है उस पार / आज ही मैं निकल आया क्यों भला इस ओर
दे रहा है मात मति को / दृश्य अति वीभत्स यह घनघोर!
भागने को कर रही है बाध्य / सड़ी-सूजी लाश की दुर्गन्ध
मर चुका है हवा खोरी का सहज उत्साह / वाह गंगा वाह!"[1]

1. नागार्जन की हिन्दी कविता में ग्राम्य प्रकृति

नागार्जुन स्वयं को मिथिला का 'धरती पुत्र' मानते थे। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा था "हम यही हैं, समझे, धरती पुत्र मिथिला के"[2]। गाँव से उनका इतना गहरा लगाव था कि उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है "हम मात्र यही हैं, गाँव देहात के आदमी और इससे ज्यादा कुछ होना भी नहीं चाहते"।[3] गाँव कवि के रग-रग में प्रवाहित है प्रवास और यायावरी जीवन में भी कवि गाँव को गहराई से याद करता है। गाँव की पूरी प्रकृति जैसे उसे पुकारती है और कवि उसकी गोद में आने के लिए मचल उठता है। गाँव के चित्रण में जो दुलार और आत्मीयता है वह स्वंय प्रदर्शित है। यह प्रगाढ़ प्रेम का परिचायक हैं, उन्हें अपने गाँव और उसकी पूरी प्रकृति से जबरदस्त लगाव है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने 'लोभ और प्रीति' शीर्षक निबन्ध में इस मनोविज्ञान पर प्रकाश डालते हुए लिखा है **"परिचय प्रेम का प्रवर्त्तक है। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता । यदि देश प्रेम के लिए हृदय में जगह करनी है तो देश के स्वरूप से परिचित और अभ्यस्त हो जाओ। बाहर निकलो तो आँखें खोलकर देखो की खेत कैसे लहलहा रहे हैं, नाले झाड़ियों के बीच से कैसे बह रहे हैं टेसू के फूलों से वनस्थली कैसी लाल हो रही है, चौपाइयों के झुंड चरते हैं, चरवाहे तान लड़ा रहे हैं, अमराइयों के बीच में गाँव झाँक रहे हैं। उनमें घुसो देखो क्या हो रहा है। जो मिलें उनसे दो-दो बातें करो; उनके साथ किसी पेड़ की छाया के नीचे घड़ी-आध घड़ी बैठ जाओ और समझो कि वे सब हमारे हैं। इस प्रकार जब देश का रूप तुम्हारी आँखों में समा जाएगा, तुम उसके अंग प्रत्यंग से परिचित हो जाओगे तब तुम्हारे अंतःकरण में इस इच्छा का उदय होगा कि वह हमसे कभी न छूटे; वह सदा हरा भरा और फूला फला रहे; उसके धन-धान्य की वृद्धि हो, उसके सब प्राणी सुखी रहें।"**[4]

कवि कहीं बाहर गया है, गर्मी खत्म होने वाली है वर्षा शुरू होने वाली है उमस में कवि बेचैन है, कवि कविता के माध्यम से अपनी पत्नी को चिट्ठी लिख रहा है–

"किन्तु अपने देश में तो / सुमुखि, वर्षा हुई होगी एक क्या कै बार
गा रहे होंगे मुदित हो लोग खूब मलार / भर गई होगी अरे वह बाग्मती की धार
उगे होंगे पोखरों में कुमद पद्म मखान / आँखें मूँद कर रहा मैं ध्यान

---

1. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.- 40
2. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-184
3. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-184
4. रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-1, पृ. सं.-54

लिखू क्या प्रेयसि, यहाँ का हाल ''[1]

पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा भारत के पूर्वी क्षेत्र में मानसून पहले आ जाता है, कवि पश्चिमी क्षेत्र में बैठा पूर्वी क्षेत्र के अपने गाँव की प्रकृति को याद कर रहा है जहाँ कई बार वर्षा हो चुकी होगी और पूरा दृश्य बदल चुका होगा। यही हाल 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता में भी है। कवि अपनी पत्नी के माध्यम से पूरे गाँव, उसकी पूरी प्रकृति को शिद्दत से याद करता है, घर से दूर रहकर ही उसकी याद आती है, गाँव से दूर जाकर ही उसके महत्त्व का पता चलता है, अपने परिवेश का आकर्षण जबरदस्त होता है, क्योंकि उससे परिचय गहरा होता है इसी मनोविज्ञान के तहत कवि लिखते हैं–

''याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम / याद आती लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रूचिर भू-भाग / याद आते धान
याद आते कमल कुमुदिनि और तालमखान / याद आते शस्य-श्यामल जनपदों के
रूप- गुण-अनुसार ही रक्खे गए वे नाम
याद आते वेणुवन वे नीलिमा के निलय, अति अभिराम''[2]

कवि जब बहुत दिनों के बाद गाँव आता है तो उसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ गाँव की प्रकृति का रस लेने के लिए व्यग्र हो उठती हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने एक कविता के बारे में ठीक ही लिखा है–" 'बहुत दिनों के बाद' में दीर्घकाल से रूप, रस, गन्ध, श्रवण आदि के प्रिय विषयों के अभाव की हूक और फिर उन्हें छककर भोगने की अकुण्ठ तृप्ति का आनन्द हैं।"[3] कवि छककर उनका पान करता है, प्यास जितनी तीव्र होती है तृप्ति का अहसास उतना ही गहरा होता है, कवि गंध-रूप-रस-शब्द स्पर्श का आनन्द उठाता है और उस अनुभूति को साहित्य में अभिव्यक्त करता है–

''बहुत दिनों के बाद / अब की मैंने जी भर देखी / पकी-सुनहली फसलों की मुसकान
-बहुत दिनों के बाद
अबकी मैं जी भर सुन पाया / धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
-बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर सूँघे / मौलसिरी के ढेर-ढेर से जाते-टटके फूल
-बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी भर छू पाया / अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल
-बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर तालमखाना खाया / गन्ने चूसे जी भर
-बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर भोगे / गंध-रूप-रस-शब्द स्पर्श सब साथ-साथ इस भू पर
-बहुत दिनों के बाद''[4]

इस कविता में इन्द्रिय का यथार्थ बोध और आत्मीय भावुकता का अनूठा सम्मिश्रण देखने को मिलता है जो अनुभूति के रंग में रंग कर मर्मस्पर्शी हो गयी है।

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-53*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-49*
3. *नामवर सिंह (सं.), आलोचना, जुलाई-सितम्बर, 1987, वर्ष-36, अंक-82, पृ. सं.-71*
4. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-25-26*

गाँव में प्रकृति अपने स्वाभाविक रूप में होती है, अकृत्रिम सौन्दर्य के साथ प्रकृति का खाँटी रूप सबको नया जीवन देता है। वहाँ की प्रकृति शरीर में स्फूर्ति और चेतना में नई ताजगी लाती है, सुबह-सुबह कवि के अनुभव का सुख इस प्रकार व्यक्त हुआ है–

"सुबह-सुबह / तालाब के दो फेरे लगाए
सुबह- सुबह / रात्रि-शेष की भीगी दूबों पर / नंगे पाँव चहलकदमी की
सुबह-सुबह / हाथ-पैर ठिठुरे, सुन्न हुए / माघ के कड़ी सर्दी के मारे
सुबह-सुबह / अधसूखी पतइयों का कौड़ा तापा / आम के कच्चे पत्तों का
जलता, कड़ुआ कसैला सौरभ लिया / सुबह-सुबह / गँवई अलाव के निकट
घेरे में बैठने बतियाने का सुख लूटा / सुबह-सुबह / आंचलिक बोलियों का मिक्सचर
कानों की इन कटोरियों में भरकर लौटा / सुबह-सुबह"[1]

माघ के ठण्ठे मौसम में सुबह नंगे पाँव दूबों में चलने का जो सुख है वह गाँव में ही संभव है, प्रकृति का ठण्ढा स्पर्श भी कितना उष्मादायक है। गाँव में सुबह की हलचल, अलाव के पास बैठ कर आंचलिक भाषा में वार्तालाप करना कवि को कितना सुकून पहुँचाता है। यह पढ़कर ही ज्ञात होता है। शहर में न यह प्रकृति है, न उसका सानिध्य है और न यह सामाजिक परिवेश। वहाँ व्यक्ति एकाकी और प्रकृति से कटा हुआ जीवन बिताता है।

2. पर्वतीय प्रकृति के विविध रंग

नागार्जुन यायावर कवि हैं भ्रमण करना उनका स्वभाव है, इस भ्रमण में देश-विदेश की प्रकृति के साथ उनका साक्षात्कार होता रहा है और वे उनपर कविताएँ लिखते रहे हैं लेकिन गाँव की प्रकृति के बाद उनका लगाव पर्वतीय प्रकृति से ही है। पहाड़ी प्रदेश के प्रति उनका जबरदस्त आकर्षण है, एक व्यक्ति के रूप में भी और कवि के रूप में भी। गर्मी के दिनों में वे महीनों उन प्रदेशों को अपना पड़ाव बनाते रहे हैं, वहाँ की अनुभूति को भी उन्होंने वाणी दी है। पहाड़ों पर बरफ़ पड़ना आम बात है, कवि ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है–

"बरफ पड़ी है / सर्वश्वेती पार्वती प्रकृति निस्तब्ध खड़ी है।
- चहल-पहल का नाम नहीं है / बरफ-बरफ है काम नहीं है
- देख रहा हूँ, बरफ़ पड़ रही कैसे / बरस रहे हैं आसमान से
धुनी रूई के फाहे / या कि विमानों में भर-भर कर यक्ष और किन्नर बरसाते
कासकुसुम अविराम ढँके जा रहे देवदार की हरियाली को अरे दूधिया झाग
ठिठुर रही उँगलियाँ मुझे तो याद आ रही आग"[2]

'बरफ' का गिरना कवि को रोमांचित करता है, इसलिए कवि ने 'बरफ' का भी वर्णन किया है और अमीरों के आनन्द उठाने का भी जिक्र किया है क्योंकि ऐसे में गरीबों के लिए दिक्कत है।

पर्वतीय प्रकृति के अद्‌भुत सौन्दर्य पर नागार्जुन की एक सबसे महत्त्वपूर्ण कविता है–'बादल को घिरते देखा है' हिन्दी साहित्य में इसका स्थान अद्‌वितीय है, कथ्य और कला की उत्कृष्टता के कारण। बादल को पर्वत पर घिरते हुए कवि का देखना इतना रोमांचकारी है कि उसकी अभिव्यक्ति एक सुन्दर कविता के रूप में हुई है। विभिन्न मौसम में पर्वतीय प्रकृति की सुन्दरता, पशु-पक्षियों के कलरव एवं वहाँ पर रहनेवालों

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-75*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-62-63*

के जीवन को कवि ने इस ढंग से प्रकट किया है कि प्रकृति अपने पूरे वैभव के साथ यहाँ उपस्थित है। सुमधुर शब्दों की इतनी लयात्मक लड़ी अपनी रवानगी में पाठको को नई दुनिया में ले जाती है- सौन्दर्य और स्वप्न की दुनिया में। इन कविताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नागार्जुन हिन्दी के कालिदास हैं। लेकिन उनकी इतर प्रवृत्तियाँ इतनी हावी हैं कि कालिदास का कलेवर छोटा पड़ जाता है। इस तरह की कविताओं में कविता का एक रूप नजर आता है। कला के नाजुक सन्तुलन पर सधी हुई कविता का क्या रूप है, क्या शिल्प है, क्या नाद है–

"अमल धवल गिरि के शिखरों पर / बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे / उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम / कमलों पर गिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।"[1]

इस कविता की एक बहुत बड़ी खासियत है–स्वयं अपनी आँखों से देखे हुए का यथार्थ वर्णन कवि ने कालिदास के बादल को कवि-कल्पित बताते हुए अपने प्रत्यक्ष अनुभव को कविता का आधार बनाया है लेकिन यथार्थ का भी इतना सुन्दर रूप कवि ने चित्रित किया है कि कल्पना के चित्र फीके नजर आते हैं–

"ढूँढा बहुत परन्तु लगा क्या / मेघदूत का पता कहीं पर
कौन बताये वह छायामय / बरस पड़ा होगा न यहीं पर
जाने दो वह कवि कल्पित था / मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुम्बी कैलाश शीर्ष पर / महामेघ को झंझानिल से
गरज गरज भिड़ते देखा है / बादल को घिरते देखा है।"[2]

सत्य से सुन्दर और यथार्थ रूप से अच्छा कुछ नहीं होता है, कवि ने पर्वतीय प्रकृति के सौन्दर्य को उद्‌घाटित करके यह सिद्‌ध कर दिया है।शाम के समय सूर्य की किरणें हिम शिखरों को चूम रही हैं और लोग काम समेट कर घर की ओर लौट रहे हैं। पर्वतीय बालाएँ भारी-भारी बोरियाँ पीठ पर लाद कर पगडंडियों पर जा रही हैं, उनके श्रम की लचक से सौन्दर्य की जो झलक कवि को मिलती है कवि ने उसका जिक्र किया है-

"उस ओर, उधर / सन्ध्या की तिगुनी धुंध में / ओझल होती जाती किरणें
हिम मंडित शिखरों को / सत्वर रही चूम... / भारी-भारी बोरियाँ लदी हैं पीठों पर
पर्वत कन्याएँ गयीं घूम- / इस ओर, नुक्कड़ों से नीचे
उभर-खाभर पगडंडी पर..../ खुरदरी लुनाई के आगे
श्रम गया लचक / श्रम उठा झूम / पर्वत-बालाएँ गयी घूम!"[3]

पर्वत के शिखरों पर हिम नयनाभिराम सौन्दर्य प्रस्तुत करता है, उस पर सूर्य की किरणें सोने पे सुहागा के समान लगती है–

"इनकी छवि-छटा निराली / वह धौली-भूरी-काली
बालारूण इनमें भरता / पिघले कंचन की लाली"[4]

कवि को नक्षत्रों और उसके प्रभावों की अद्‌भुत जानकारी है, इसी कविता में वे आगे लिखते हैं–

"ग्रीष्मान्त घनों की करुणा / बरसी थी आज सवेरे / यों तो आवारा बादल
कल लगा गए थे फेरे / नीले नभ में चमकेगी / प्रतिदिन हिम सृष्टि शिखरणी

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-67*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-68-69*
3. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-47*
4. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-32*

समतल में आम पकाएँ / ये नखत अश्विनी-भरणी"[1]

ये अश्विनी और भरणी नक्षत्र मैदानी इलाके में आम पकाने के लिए जानी जाती हैं, कवि ने इस सूचना का अच्छा इस्तेमाल किया है।

3. ऋतु-सौन्दर्य

भारत ऋतुओं का देश है, यहाँ छः ऋतुएँ आती-जाती हैं। उनमें तीन मुख्य हैं-जाड़ा, गर्मी और बरसात। नागार्जुन पावस और बसंत ऋतु के प्रेमी हैं। दो ऋतुओं के बीच का संक्रमण काल उनकी कई कविताओं का विषय बना है। बसंत ऋतु पर तो निराला जी ने भी कई कविताएँ लिखी हैं किन्तु बरसात पर जितना नागार्जुन ने लिखा है, उतना किसी ने नहीं।

क. बसन्त

बसन्त पर कवि की दो कविताओं को देखा जा सकता है। दोनों का शीर्षक है 'बसन्त की आगवानी'। एक 'सतरंगे पंखोंवाली' में संकलित है, दूसरी 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' में। दोनों अच्छी हैं किन्तु 'सतरंगे पंखोंवाली' संग्रह में जो कविता दी गई है वह प्रकृति-चित्रण के कारण महत्त्वपूर्ण तो है ही सरस्वती और लक्ष्मी प्रसंग आने के कारण अदभुत हो गई है। बसंत पंचमी में सरस्वती पूजा होती है, कवि इस दृश्य को देखकर पाठकों को एक सीख दे जाता है कि सरस्वती और लक्ष्मी में कोई झगड़ा नहीं है दोनों साथ रहने वाली देवियाँ हैं इसलिए दोनों में से किसी का अपमान न करना। कवि जीवन-जगत से जुड़कर इस प्रसंग की ओर मुड़ गया वरना इसकी कोई जरूरत नहीं थी, बसंत का चित्रण ही इस कविता का अभीष्ट है—

"दूर कहीं पर अमराई में कोयल बोली / परत लगी चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृद्ध वनस्पतियों की ठूंठी शाखाओं में / पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकुलों के गुच्छे गदराए / अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया
मुखर हुई बाँसरी, उँगलियाँ लगीं थिरकने / पिचके गालों तक पर है कुंकुम न्यौछावर
टूट पड़े भौरें रसाल की मंजरियों पर / मुरक न जाएँ सहजन की ये तुनुक टहनियाँ
मधुमक्खी के झुंड भिड़े हैं डाल-डाल में / जौ गेहूँ की हरी-हरी बालों पर छाई
स्मित-भास्वर कुसुमाकर की आशीष रँगीली / शीत-समीर, गुलाबी जाड़ा, धूप-सुनहली
जग बसंत की अगवानी में बाहर निकला"[2]

बसंत के आने पर प्रकृति के रूप-रंग में जो नए जीवन की लाली छा जाती है कवि ने उसका बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। कवि का हुलास प्रकृति के साथ देखा जा सकता है, मौसम बड़ा संक्रमणशील होता है मनुष्य में भी जीवन के नए रंग को जगा जाता है। दूसरी कविता में आम की मंजरियों का सुगन्ध कवि के मन-मानस को महका-बहका जाता है। भारतीय लोगों का प्रिय फल है आम, उसका बौरा जाना बसंन्त के आगमन की सूचना है, कवि ने ठीक ही लिखा है-

"रंग-बिरंगी खिली-अधखिली / किसिम-किसिम की गंधों-स्वादोंवाली ये मंजरियाँ
तरुण आम की डाल-डाल टहनी-टहनी पर
झूम रही है...../ चूम रही है- / कुसुमाकर को। / ऋतुओं के राजाधिराज को।
इनकी इठलाइट अर्पित है छुई-मुई की लोक-लाज को!!
तरुण आम की ये मंजरियाँ.../ उद्धित-जग की ये किन्नरियाँ

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-32*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-33*

अपने ही कोमल-कच्चे वृन्तों का मनहर सन्धि भंगिमा
अनुपम इनमें भरती जाती / ललित लास्य की लोल लहरियाँ!!
तरुण आम की ये मंजरियाँ!! / रंग-बिरंगी खिली-अधखिली..."[1]

यह कविता सजीव से अधिक चटकीली है और एक कोण से ही लिखी गई है। कवि ने इसमें भाषा की कारीगरी की है।

ख. ग्रीष्म

गर्मी खत्म हो गई बरसात की शुरूआत नहीं हो रही, कवि की आँखें बादलों की बाट जोह रही हैं, मन बड़ा व्याकुल है, ऊमस से हाल बेहाल है, कवि ने उस बेचैनी को बखूबी व्यक्त किया है-

"प्रतीक्षा की / बहुत जोहा बाट
जेठ बीता, हुई वर्षा नहीं, नभ यों ही रहा खल्वाट / आज है आषाढ़ वदि षष्ठी
उठा था जोर का तूफान / उसके बाद / सघन काली घन घटा से
हो रहा आच्छन्न यह आकाश / आज होगी, सजनि वर्षा-हो रहा विश्वास
हो रही है अवनि पुलकित ले रही निःश्वास
*** * * * * * ***
आँख मूँदे कर रहा मैं ध्यान / लिखूँ क्या प्रेयसि, यहाँ का हाल
सामने ही बह रही भागीरथी, बस यही है कल्याण
जिस किसी भी भाँति गर्मी से बचे हैं प्राण / आज उमड़ी घन घटा को देख
सामने सरपट पड़ा मैदान / है न हरियाली किसी भी ओर / तृण-लता-तरुहीन
नग्न प्रांतर देख / उठ रहा सिर में बड़ा ही दर्द /--
किन्तु मुझको हो रहा विश्वास / यहाँ भी बादल बरसने जा रहा है आज
अब न सिर में उठेगा फिर दर्द /--
आया ख्याल / हिमालय में गल रही है बर्फ / आज होगा ग्रीष्म ऋतु का अंत।"[2]

ग. वर्षा

वर्षा ऋतु के आगमन का बोध नागार्जुन किसान की तरह करते हैं इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह ने ठीक ही लिखा है **"वस्तुतः वर्षागम के अवसर पर ऋतु संधि का सहज बोध नागार्जुन को एक किसान की तरह होता है और कविता में उनके पूर्व संचित संस्कार उसी सहजता के साथ फूट पड़ते हैं"[3]**

मौसम का एहसास कवि रोम-रोम से करता है इसलिए वह इतना व्यग्र हो जाता है। ग्रीष्म की गर्मी, सूखे इलाके से वह व्यथित हो जाता है यही कारण है वर्षा की बूँदों का परस उसे नया जीवन देता है। हमलोग भी ऐसा ही महसूस करते हैं, अभिव्यक्त नहीं करते। 'कल और आज' कविता में कवि ने ग्रीष्म और वर्षा के संक्रमण काल को चित्रित किया है लोग कैसे ग्रीष्म को गालियाँ दे रहे हैं, गौरैयों के झुँड कैसे धूल में नहा रहे हैं और मेंढक कैसे धरती की कोख में दुबके पड़े हैं जबकि वर्षा रानी के आने से कैसे प्रकृति में नवजीवन का संचार हो जाता है। कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से इन दोनों का द्वंद्वात्मक चित्रण किया है–

"अभी कल तक / गालियाँ देते थे तुम्हें / हताश खेतिहर / अभी कल तक
धूल में नहाते थे / गौरैयों के झुंड / अभी कल तक / पथराई हुई थी

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-76*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-53-54*
3. *नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-7*

धनहर खेतों की माटी / अभी कल तक / धरती की कोख में / दुबके पड़े थे मेढ़क्
अभी कल तक / उदास और बदरंग था आसमान / और आज
ऊपर-ही ऊपर तन गये हैं/ तुम्हारे तम्बे / और आज / छमका रही है पावस रानी
बूँदों-बूँदियों की अपनी पायल / और आज / चालू हो गयी है
झींगुरों की शहनाई अविराम / और आज जोरों से कूक पड़े नाचते-थिरकते मोर
और आज / आ गयी वापस जान दूब की झुलसी शिराओं के अन्दर
और आज / विदा हुआ चुपचाप ग्रीष्म समेट कर अपने लाव-लश्कर"[1]

इतनी सरल भाषा में इतने सुन्दर और सजीव रूप में कवि ने मौसम और लोक मानस का मिज़ाज चित्रित किया है वह बड़ा यथार्थपरक और आकर्षक है। इस वर्णन में कवि और किसान की मानसिकता का अच्छा प्रकाशन हुआ है। कवि का अनुभव-बोध और किसान की ऋतु-चेतना से ऐसी कविता साकार हो सकी है।

डॉ. राम विलास शर्मा ने इस कविता की व्याख्या करते हुए नागार्जुन की विशेषता को इस तरह प्रस्तुत किया है- **"धरती की कोख में दुबके पड़े थे मेंढक-जो तुच्छ और नगण्य हैं, प्रकृति की समूची कार्यवाही में वह भी कवित्वपूर्ण बन जाते हैं। पावस रानी का पायल छमकाना छायावादी कविता की मेघपरियों के पायल छमकाने से अलग है, अति मानवीयता वाले उदात्तीकरण से भिन्न यहाँ लोक संस्कृति की सहज आत्मीयता है। और अन्त में-आ गई है वापस जान दूब की झुलसी शिराओं के अन्दर । वर्षा के उद्दीपन विभावों की रीतिवादी फौज के बदले एक सीधी सी आये दिन की बात । यही हिन्दी कविता का नया यथार्थवाद है।"**[2]

वर्षा

'पावस' नागार्जुन का प्रिय मौसम है, कवि के मन में उसके प्रति उत्कट आस्था है, इस कृषि प्रधान देश में बर्षा ऋतु पर ही हमारी फसल निर्भर है इसलिए कवि का इसपर प्रेम दूना है। पावस का अभिवादन करते हुए कवि लिखते हैं–

"लोचन अंजन, मानस रंजन / पावस, तुम्हें प्रणाम
ताप--तप्त वसुधा दुख-भंजन / पावस, तुम्हें प्रणाम
ऋतुओं के प्रतिपालक ऋतुवर / पावस, तुम्हें प्रणाम
अतुल अमित अंकुरित बीजधर /पावस, तुम्हें प्रणाम
नेह-छोह की गीली मूरत / पावस तुम्हें प्रणाम
अग-जग फैली नीली सूरत / पावस, तुम्हें प्रणाम"[3]

जब झमाझम वर्षा लगातार होती है तब लोग ऊब जाते हैं और वर्षा को गालियाँ देने लगते हैं लेकिन कवि को मौसम का यह 'अक्खड़' रूप खूब भाता है क्योंकि नवजीवन के लिए उसका लहरा-लहराकर बरसना बहुत जरुरी है-

"सात दिनों के अन्दर ही तो बरस चुकी घनघटा सतावन बार!!
और, सुबह क्या डूब जाएगा सारा ही संसार!!

---

1. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-116-117*
2. *रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. सं.-165*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-85*

पूर्ण हो गया, अब न चाहिए पानी / खा रही गालियाँ घर-घर ऋतु थी रानी
किन्तु नहीं रत्ती-भर भी होता मुझको अभिरोष
बरसो-बरसो रिक्त करो 'रेचक' से अपना कोष
मेघ! तुम्हारी दया कि रातों रात हो गई नई पुरानी दूब!!
जीवनदाता! अपने को तुम खूब उँड़ेलो, खूब!! / हे गर्भित ! हे भरित! अहे परिपूर्ण।
दाताओं के दंभ दुर्ग को तुम न छोड़ते, कर देते हो चूर्ण
मीत, तुम्हारे अक्खड़पन पर मैं प्रसन्न हूँ / क्योंकि अकिंचन हूँ निरन्न हूँ
भोर हो रही, पावस का यह गीला मौसम रंग लायगा आज
बरसोगे या उड़ जाओगे, लग न रहा अंदाज / उचट गई थी नींद काट दी बैठे-बैठे रात
जय असाढ़ / जय सावन-भादों / जयति-जयति बरसात!!"[1]

गाँव के किसान की प्यास बरसात के पानी से ही बुझती है, नागार्जुन में भी वही प्यास है। गरीब किसान के लिए बरसात प्रकृति का वरदान है कवि ने इस बोध के साथ बरसात की जय-जयकार की है।

पावस के प्रति कवि के मन में इतना सम्मान ओर स्नेह उसके जीवनदायी प्रभाव के कारण है, वह किसानों का साथी है, फसलों की माता। पूरी प्रकृति के झुलसते कंठ की प्यास बुझाने वाले इस मौसम पर कवि की श्रद्धा देखते बनती है–

"सुन रे अभागे, फुहारों के रिमझिम गान / टिपिर, टिपिर / टिपिर टिपिर
झर-झर-झर / झर-झर-झर / रिमझिम झिम रिमझिम रिमझिम
चल खेतों में, कस ले कमर / पंक-तिलक है यह त्योहार
सुन ले धरती की मनुहार / रोप रहे होंगे कोटि-कोटि जन मगन-मन धान
यह वो ऋतु है ऋतुओं में सबसे महान
तना है चन्दोवा, फैला है वितान / बरस रहे दिन-रात बादल-भगवान
मना रहा इनकी जै-जै दुनिया जहान /भला, इनकी महिमा का कौन करे बखान"[2]

कवि किसान चेतना से बादल को 'भगवान' कहता है, कवि की सही काव्य-दृष्टि का यह परिणाम है। किसानों के लिए वे भगवान से कम नहीं। भारतीय अर्थव्यवस्था में इस ऋतु का बहुत महत्त्व है।

वर्षा की बूँद के ठण्ढे स्पर्श से कवि का तन-मन रोमांचित हो उठता है, कवि ने इस अनुभूति का अच्छा वर्णन किया है–

"झुलसी अविकच पंखड़ियों पर / फाहों-सी फुहियाँ पड़ी बरस
यह रोम-रोम में जगा गयी / मादक पुलकन/मीठी सिहरन
जादुई परस / जादुई परस / चिर-आकुल रीते प्राणों में
भर गया न जाने कितना रस / हिम आँगन में उतरे जाने
किन सुधियों के छौने सारस / जादुई परस / जादुई परस !!"[3]

नागार्जुन जबरदस्त ऐन्द्रिय-बोध के कवि हैं, इन कविताओं में उनकी ऐन्द्रिक संवेदनाओं के सूक्ष्म बोध को देखा जा सकता है। प्रकृति से मनुष्य का कितना गहरा रिश्ता है, वह अपने स्पर्श मात्र से हमारी कई अनुभूतियों को जगा जाती है। 'पुलकन' और 'सिहरन' जैसी सूक्ष्म अनुभूतियों को नागार्जुन ने ही काव्य

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-56*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-90*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-91*

में उकेरा है।

इस मौसम के अत्याचार को भी कवि वरदान की तरह लेता है, कई दिनों से घिरा है किन्तु कोई दुख नहीं कोई पश्चाताप नहीं–

"अच्छी तरह घिरा हूँ / घिरा हूँ बुरी तरह
ऊदे-ऊदे बादलों ने डाल दिया है घेरा / मुश्किल है अड्डे से निकलना मेरा
*** * * * * * * * ***

....सावनी घटाओं के अ-विराम हमले / झेल रहा हूँ पिछले चार दिनों से
बड़ा ही अच्छा लगता है / काले काले झुके-झुके मेघों का यह घिराव
इर्द-गिर्द जम गया है / कीचड़ का बैरिकेड / बजा रहे हैं बिगुल
पुष्ट कंठोंवाले पीले मेढ़क / फुला-फुला के गर्दन...
कानों में सिहरन है / गुदगुदा उठते है मन-प्राण
बुरा नहीं लगता है बादलों का घिराव"[1]

कवि का सौन्दर्य बोध, उनकी संस्कार-चेतना उपयोगितावादी और यथार्थवादी है तभी तो बादलों का घेरा उन्हें इतना पसन्द है, आज़ाद और यायावर कवि को प्रकृति का यह बन्धन बड़ा प्यारा लगता है।

बादलों को हाथी के समान कहते हुए कवि ने आने वाली वर्षा की संभावना को कविता में चित्रित किया है। पहाड़ों पर बादलों का हाथियों के तरह छा जाना कवि को बड़ा रोमांचक लगता है-

"अरे, इन्होंने तो / ढक लिया अपने आप को / हल्की-झीनी चादरों से
लूज बिनावट वाली / वो मटमैली ओढ़नी / बादलों को ढक लेगी अब
अब फुहारों वाली बारिश होगी / बड़ी-बड़ी बूँदें तो यह
शायद कल बरसाएँगे / शायद परसों.../ शायद हफ़्ता बाद...
गिरिकुंजर तब / पूरे आसमान में / फैल जाएँगे / गर्जन-तर्जन नहीं
बरसेंगे, बस बरसते रहेंगे चुपचाप! / सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात
बिना कहे, आपो आप / चुप चाप!!"[2]

जहरीखाल (जय हरि खाल) में मौनसून का आना कवि को आनन्दित करता है, कवि ने मानव और प्रकृति को बखूबी व्यक्त किया है, कैसे सबलोग मौनसून की पहली वर्षा से प्रभावित होते है–

"मानसून उतरा है / जहरी खाल की पहाड़ियों पर / रातों रात
भिगो गए बादल / सलेटी छतों वाले / कच्चे-पक्के घरों को
रातों रात / सोंधी भाफ छोड़ रहे हैं / ज्यामितिक आकृतियों में
फैले हुए खेत /..... / दावानल-दग्ध वनांचल..../ चीड़ों की झुलसी कतारें
डाल रहीं व्यवधान कहीं-कहीं / मौसम का पहला वरदान
इन तक भी पहुँचा है / जहरीखाल पर / उतरा है मानसून
बादल भिगो गए चुपचाप / रातोरात सबको / इनको / उनको / हमको / तुमको
आपको, आपको, आपको! / मौसम का पहला वरदान / पहुँचा है सभी तक"[3]

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-92*
2. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-27-28*
3. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-33-34*

इस पहली वर्षा में कवि को उन चीड़ वृक्षों की भी चिंता है जो ग्रीष्म ऋतु में झुलस गए हैं।

बरसात में सबका जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। मनुष्य ही नहीं कीड़े मकोड़े (जमीन पर रहने वाले) भी विस्थापित हो जाते हैं–

"विस्थापित होते हैं / बरसात में / कीड़े-मकोड़े
खिसकती हैं चट्टानें शिला वृष्टि के / उछलते हैं रोड़े
गरजते हैं बादल के / घोड़े / हम भी मात्र / दर्शक रह जाते हैं। थोड़े"[1]

कवि को इन तुच्छ समझे जाने वाले जीवों की भी कितनी चिन्ता है, यह इस कविता से पता चलता है, यही संत सा स्वभाव उनकी 'बाबा' छवि को सार्थक करता है। सबके लिए प्यार और चिन्ता उनके स्वभाव का अंग है। यही सहानुभूति बड़े कवि होने की पहचान है।

घ. शरद

वर्षा ऋतु के बाद शरद ऋतु का आगमन होता है, लेकिन नागार्जुन ने शरद ऋतु की पूर्णिमा को दूसरे प्रसंग में याद किया है। यह ऋतु धान के पकने, उड़द-मूँग के फलने का मौसम है कवि ने किसानी हुलास के साथ इसे याद किया है–

"पके धान की कनक मंजरी एक नहीं, सौ बनीं झालरें
उड़द-मूँग की फलियों वाली बेलों की बिछ गई चादरें
चौकस खेतिहरों ने पाए ऋद्धि-सिद्ध के आकुल चुम्बन
शरद-पूर्णिमा धन्य हुई जन-लक्ष्मी का करके अभिनन्दन"[2]

किसानी फसल बोध के अतिरिक्त इसमें कवि की कुसुम चेतना भी मौजूद है। स्वाद और सौन्दर्य के संगम से यह कविता अद्वितीय हो गई है। एक तरफ फसलों के पकने की महक है तो दूसरी तरफ फूलों के खिलने की सुगन्ध–

"कुमुद मुदित हैं कहीं, कहीं पर मुकुलित हैं कमलों के कानन
श्वेत घनों से प्रतिबिम्बित हैं, श्याम सलिल झीलों के आनन
लाल-लाख नक्षत्र टँग गये, नीली चादर बनी अनूठीं
शरद-जुन्हाई के आगे दुनिया की सुषमा लगती झूठी"[3]

ङ. शिशिर

शिशिर ऋतु की ठण्ड जानलेवा होती है इसलिए कवि ने उसे 'विष-कन्या' की संज्ञा से विभूषित किया है। शिशिर पर कवि ने तीन कविताएँ लिखी हैं और तीनों नकारात्मक शिशिर की रात का दृश्य कितना डरावना है–

"शिशिर की निशाऽऽऽ / धुंध में डूब गयी / दिशा दिशा दिशाऽऽऽ
*** * * * * * * * ***

नखत हुए उदास / खाँसता है चाँद / गगन के बीचों बीच
हाँफता है चाँद / शिशिर की निशाऽऽऽ"[4]

खाँसते और हाँफते हुए चाँद के बिम्ब में शिशिर की भयानक रात का चित्रण कितना यथार्थवादी बन

---

1. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-58*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-42*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-42*
4. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !, पृ. सं.-45*

पड़ा है, यह देखा जा सकता है। उत्तरांचल के पहाड़ी इलाके में शिशिर का मौसम बड़ा ठण्डा होता है, पानी बर्फ जैसा ठण्डा हो जाता है, जिससे लोग परेशान हो जाते हैं, कवि ने इसका जिक्र किया है–

"शिशिर की सीमन्तिनी का / बर्फ है पानी!
इन ठिठुरती उँगलियों ने / हार क्या मानी!"[1]

शिशिर ऋतु कवि को पसन्द नहीं इसलिए वे तरह तरह से उसे नकारात्मक रूप में चित्रित करते हैं। गरीबों के लिए ठण्ड का महीना बड़ा खतरनाक होता है, कई लोग तो आधारभूत आवश्यकताओं के अभाव में मर ही जाते हैं शायद इसलिए कवि का शिशिर ऋतु के प्रति द्वेष भाव है, वे कोसते हुए लिखते हैं–

"हज़ार बाँहोंवाली शिशिर-विष-कन्या / उतरी लेकर साँसों में प्रलय की वन्या
हिमदग्ध होठों के प्राणशोषी चुम्बन / तन-मन पर लेप गये ज्वालामय चन्दन
एक-एक शिरा में सौ-सौ सुइयों की चुभन / अद्‌भुत यह भुजपाश अद्‌भुत आलिंगन
तृण-तरु झुलस गये पड़ा है ओसमय तुषार / किया है महाकाल ने हिमानी का श्रृंगार
आज है गरल धन्य, कब था सुधा धन्या / हजार बाँहों वाली शिशिर-विष-कन्या
उतरी लेकर साँसों में प्रलय की वन्या"[2]

च. पूस

लेकिन पूस महीने में पूनम की रात में कोहरे का छा जाना कवि को अच्छा लगता है। कवि ने बड़े प्रेम से इस कोहरे को कविता में उतारा है–

"पूस की ठिठुरन में / पूनम की छुअन में"
अच्छा लगा कोहरा / अच्छा लगा!!"[3]

4. प्रकृति के विविध उपादान : सौन्दर्य का नया संसार

क. बादल

'बादल' कवि को सबसे अधिक आकर्षित करते हैं इसलिए कवि ने विभिन्न रूपों में इन्हें अभिव्यक्त किया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में निराला जी ने बादलों पर लगभग 20-25 कविताएँ लिखी हैं उसके बाद नागार्जुन का ही स्थान आता है इन्होंने भी लगभग 20 कविताओं में बादल को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। निराला के बादल 'गंभीर' और 'विप्लव के वीर' हैं जबकि नागार्जुन के 'चंचल' और 'संधर्षशील'। नागार्जुन ने बादलों के जितने रूप और स्वभाव का चित्रण किया है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देता।'बादल को घिरते देखा है' जैसी कविता में लड़ते हुए बादल का जीवंत चित्रण कवि ने किया है–

"मैंने तो भीषण जाड़ों में / नभ-चुम्बी कैलाश शीर्ष पर
महामेघ को झंझानिल से / गरज-गरज भिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है।"[4]

बादल हमारे अन्दर कई संवेदनाओं को जगाते हैं। सोई हुई उमंग को वे छेड़ जाते हैं और हृदय में प्रेम

---

1. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या !, पृ. सं.-48*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-112*
3. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !!, पृ. सं.-46*
4. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-68-69*

के अनछुए प्रसंग तरंगित होने लगते हैं, वे हमें गुदगुदा जाते हैं। कवि के लिए बादल कई प्रसंगों की याद दिलाते हैं–

"झुक आए कजरारे बादल / कूक उठे मोर
टर्राए मेढक / पहुँचकर धीरज के छोर पर / दम साध लिए धरती ने..."[1]

इस मौसम में भाभी का प्रेम से छेड़ना कवि को बड़ा प्यारा लगता है। ग्रीष्म की तपती धूप में भी कवि को बादल की आशा है, जब बादल आएँगे तो पुनः नए जीवन की शुरुआत हो जाएगी। जेल के एकान्त सेल में भी कवि बादल की बहार देखने को व्याकुल है, आकाश में उमड़ने-घुमड़नेवाले बादलों की वे रग-रग से वाकिफ हैं, नकली और असली बादल का ज़िक्र करते हुए वे लिखते हैं-

"होते रहेंगे बहरे ये कान जाने कब तक / ताम झाम वाले नकली मेघों की दहाड़ में
अभी तो करुणामय हमदर्द बादल / दूर, बहुत दूर, छिपे हैं ऊपर आड़ में
यों ही गुजरेंगे हमेशा नहीं दिन / बेहोशी में, खीझ में, घुटन में, ऊबों में
आएँगी वापस जरूरी हरियालियाँ / घिसी-पिटी झुलसी हुई दूबों में"[2]

कवि बादलों के रूप सौन्दर्य, गुण सौन्दर्य और नाद सौन्दर्य पर रीझता है। वह उसकी चंचलता, उसके बरसने के संगीत पर मुग्ध होकर कविता में उसे उतारता है। कवि ने नटखट बच्चे की तरह उसका चित्रण किया है। एक जगह उन्होंने बादलों को हिरन की तरह चंचल कहा है, वे सीधे उसे कुरंग कहकर उसके खिलवाड़ को प्रस्तुत करते हैं–

"नभ में चौकड़ियाँ भरें भले / शिशु घन-कुरंग
खिलवाड़ देर तक करें भले / शिशु घन-कुरंग
लो, आपस में गुथ गये खूब / शिशु घन-कुरंग
लो, घटा जल में गये डूब / शिशु घन-कुरंग
लो, बूँदे पड़ने लगीं, वाह / शिशु घन कुरंग
*** * * * * * ***
शशि से शरमाना सीख गये / शिशु घन कुरंग"[3]

कवि ने बड़े वात्सल्यपूर्ण भाव से घन-कुरंग की शोख चंचल अदाओं को उकेरा है।

कवि ने छोटी-छोटी कविताओं में एक-एक रुप, एक-एक स्वर को पकड़ा है–

"धिन धिन धा धमक धमक / मेघ बजे / दामिनि यह गयी दमक
मेघ बजे / दादुर का कण्ठ खुला / मेघ बजे
धरती का हृदय घुला / मेघ बजे / पंक बना हरिचन्दन / मेघ बजे
हलका है अभिनन्दन / मेघ बजे / धिन धिन धा....."[4]

बादल के बरसने से जो प्रकृति में संगीत की सृष्टि होती है कवि ने उसे साकार करने का प्रयत्न किया है। जैसे कवि बाजा बजाकर पावस का स्वागत कर रहा हो। मेघ की रिमझिम-रिमझिम उन्हें 'धिन-धिन धा' प्रतीत हो रही है। इसी तरह 'तना है वितान' कविता में बरसते-बादल के नाद सौन्दर्य को कवि ने बखूबी प्रतिध्वनित किया है–

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-39*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-79*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-87*
4. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-88*

"टिपिर,-टिपिर / टिपिर-टिपिर / झर झर झर / झर झर झर
रिमझिम झिम रिमझिम रिमझिम
* * * * * * *
तना है चन्दोवा, फैला है वितान / बरस रहें दिन-रात बादल भगवान
मना रहा इनकी जै-जै दुनिया-जहान / भला, इनकी महिमा का कौन करे बखान"[1]

बादलों का शामियाना कवि के सिर पर आशीर्वाद के रूप में है। कवि ने टिप-टिप चूते, झर-झर-झरते हुए बादल का यथार्थ चित्रण किया है। बादलों का घिराव भी कवि को प्यारा लगता है, इसका जिक्र पहले भी हो चुका है। कवि ने 'बादलों ने डाल दिया है डेरा' कविता में बड़ी-मीठी शिकायत में यह बात कही, प्रेम इजहार करने के भी कवि के हजार अंदाज हैं—

"झेल रहा हूँ पिछले चार दिनों से / बड़ा अच्छा लगता है
काले-काले झुके-झुके मेघों का यह घिराव
* * * * * *
बजा रहे हैं बिगुल / पुष्ट कंठों वाले पीले मेढ़क
फुला-फुला के गर्दन..../ कानों में सिहरन है
गुदगुदा उठते हैं मन-प्राण / बुरा नहीं लगता है बादलों का घिराव"[2]

बादल के साथ कवि का साहित्यिक रिश्ता भी है। जैसे ही वे बादलों को देखते हैं उन्हें कालिदास के 'मेघदूत' के बादलों की याद आ जाती है और वे उससे अपने देखे हुए बादलों की तुलना करने लगते हैं। 'बादल को घिरते देखा है' कविता में भी उनका कवि मन कालिदास की रचना भूमि से टकराता है और 'सफेद बादल' कविता में भी। वे लिखते हैं—

"नगपति, तब हिममय शिखरों पर / ये सफेद बादल छाये हैं
.....जाने ये किस विरही का / कैसा सन्देश लाये हैं।
क्या जाने ये किस कुबेर की / कवि कल्पित अलका जायेंगे।
क्या जाने ये किस विरहिन के / नयन-नीर छलका आयेंगे!"[3]

कालिदास और बादल कवि के तन-मन में बसे हैं। कवि ने 'दो पंचक' कविता में बरसते बादल के प्रभाव का अच्छा चित्र खींचा है। शाल के पत्ते नए हो गए हैं, धरती की जलन बुझ गई है, ग्रीष्म ऋतु बीत गई है और कवि सजल मेघ की जय जयकार कर रहा है—

"जय हो जय हो सजल मेघ-मेदुर, विनम्र आकाश
जय हो जय हो कृषक-वधु की आँखों के उद्‌भास"[4]

बादल को कवि ने राजा और धरती को रानी के रूप में चित्रित किया है और दोनों के प्राकृतिक प्रेम का अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत किया है—

"झुक आये हो? / बस अब झुके ही रहना?
इसी तरह इत्मीनान से बरसते जाना हौले-हौले
हड़बड़ी भी क्या है तुमको!
* * * * * * *

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-90*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-92*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-103*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-107*

देखो भई, हटा न ले जाना / बुरा लगेगा धरती रानी को तुम्हारा वो मखौल
झुक आये हो तो अब झुके ही रहना / बरसते रहना, इसी तरह होने-हौले
देखो भाई, जमे रहो सारा दिन, सारी रात/ करने दो आराम सूरज ओर चाँद को
ले रहे होंगे सुख की साँस- / जंगल, पहाड़, नदियाँ, झील, समन्दर
ले रहे होंगे चैन की नींद आँधी-तूफान-बवंडर
दम साधे कहीं पड़ा होगा महाकाल / कर चुकी माता प्रकृति नये सिर से गर्भ-धारण
देखो भाई महामना मेघराज / भाग न जाना कहीं और अब
आये हो तो जमे रहना चार-छै-रोज / थोड़ी बहुत तकलीफ होगी-
उसे हम खुशी-खुशी- लेंगे झेल... / देखो भई, बंद न करना अपना खेल!"[1]

इतनी आत्मीयता से बादलों को 'भाई' कहकर सम्बोधित करना कवि के प्रगाढ़-प्रकृति प्रेम का परिचायक है।

बादलों का उमड़ना प्रकृति और जीव-जन्तुओं में नवजीवन का संचार करता है। कवि ने बादलों को तरह-तरह की उपमा देकर प्रस्तुत किया है, 'लो, यह उमड़-उमड़ आया' कविता में उन्होंने व्योम को 'माँ' के ममत्व' सा कहा है क्योंकि बादल द्वारा वो धरती को पयपान कराती है यहाँ कवि ने व्योम का लिंग परिवर्त्तन कर दिया है। बादल का एक नाम-'पयोधर' भी होता है और पयोधर का एक अर्थ 'स्तन' भी है, बहुत गहरी बात कवि ने माँ की ममता के द्वारा कह दिया है :-

"माँ के ममत्व-सा झुक आया सनेही व्योम"[2]

कवि ने इसी कविता में लिखा है कि बूढ़े हाथियों में भी—ये बादल जीवन की उमंग फूँक देंगे जबकि गुलमुहर और अमलताश उदास होकर सिर्फ तमाशा देखेंगे—

"भीगी-भुरभुरी मिट्टी की सोंधी सुवास
भर देगी बूढ़े हाथियों में भी जीवन का अहसास
खाली-खाली, चुपचाप, उदास-उदास / देखेंगे तमाशा गुलमुहर-अमलतास"[3]

यहाँ तक कि 'हेमन्त ऋतु' के बादल भी कवि को सुख देते हैं, हेमन्ती बादल को कवि ने 'चार दिन का रईस' कहा है। जैसे श्रमिकों को बोनस मिलता है तो वे परम प्रसन्न होकर खर्च करते हैं वैसे ही ये बादल है, बादल के वर्णन में भी कवि की वर्ग-चेतना काम करती है -

"हेमंती बादल टपका रहे हैं बूँदें / बड़ी-बड़ी बूँदे, अतिशीतल बूँदे
*** * * * * * * * ***
लगता है कल ही इन्हें / तगड़ी बोनस मिली है
चार दिनों के रईस हेमंती बादल / मौज के अपने सहज मूड में हैं
निश्चय ही, ये किसी को / चिढ़ाने नहीं निकले हैं
यहाँ तो मगर गुदगुदा उठे हैं / कानों के गलियारे
दौड़ गयी है पुलकन रोम-रोम में"[4]

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-108*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-115*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-115*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-180*

एक कविता में कवि ने बादल को शोख लड़कियों के रूप में चित्रित किया है। वे उसे 'मेघ-कुल की पुत्रियाँ' कहते हुए उनके गुणों का बखान करते हैं जैसे लोग तारीफ के पुल बाँधते हैं–

"पवन ने बहका लिया था, / मेघ-कुल की पुत्रियाँ है! / बदलियाँ है!
.....अरे, ये तो ऽऽ /-बड़ी भोली बदलियाँ है! / -बड़ी सादी बदलियाँ है"[1]

एक स्थान पर कवि ने नकारात्मक चीजों के साथ भी बादलों का उल्लेख किया है, मनुष्य की बुराइयों का उल्लेख करते-करते कवि ने प्रकृति के कुछ अंगों को 'काले-काले' कहकर प्रतीकात्मक दंग से अपनी बात कही है–

"काले-काले तु-रंग / काली-काली घन-घटा / काले-काले गिरि श्रृंग
काली छवि-छटा... / काले-काले परिवेश / काली-काली करतूत
काले-काले करतूत / काले-काले परिवेश / काली-काली महँगाई / काले-काले अध्यादेश"[2]

पहाड़ी बादलों को कवि ने एक जगह 'गिरि-कुंजर' रूप में भी चित्रित किया है। कवि लिखते हैं –

"जाने, किधर से / चुपचाप आकर हाथी सामने लेट गए है,
लो ये गिरि-कुंजर / और भी बड़े होने लगे विशाल, महाविशाल
लो, ये दूर हट गए / लो, ये और भी पास आ रहे / लो, इनका लीलाधारी रूप
और भी फैलता जा रहा / लेकिन, ये गुम-सुम क्यों है!
.....शायद कल बरसाएँगे / शायद परसों.....
शायद हफ्ता बाद...../ गिरिकुंजर तब / पूरे आसमान में
फैल जाएँगे / गर्जन-तर्जन नहीं / बरसेंगे, बस बरसतें रहेंगे चुपचाप!"[3]

बादलों के तरह-तरह के रूप वर्णन में कवि का जी नहीं भरता इसलिए विभिन्न रूपों में उसे प्रस्तुत करके अपने मन को शान्त करते हैं, अपने काव्य की प्यास बुझाते हैं। जहरीखाल में मानसून के आने का जो वर्णन है वह बड़ा सुन्दर है-

"मानसून उतरा है / जहरीखाल की पहाड़ियों पर / रातोंरात / भिगो गए बादल
सलेटी छतोंवाले / कच्चे-पक्के घरों को / रातों रात"[4]

पहली वर्षा से खेतों से वाष्प उड़ रहे हैं, चीड़ों की कतार दग्ध हैं कवि सबके बीच वर्षा की पहली बूँद का प्रभाव चित्रित कर रहे हैं। यात्रा में भी कवि को बादल का साथ मिलता है, तभी तो कवि ने बदलियों का यह चित्र भी रखा है–

"लगता है / सैर करने के मूड में / बदलियाँ इधर से ही / निकली है.....
*** * * * * * * * ***
मगध-एक्सप्रेस अब / जरा सी देर बाद / मुगलसराय पहुँचने वाली है"[5]

कवि ट्रेन से यात्रा कर रहे हैं और बादलों की करामात को देखकर रोमांचित हो उठते हैं, इस छोटी सी घटना पर कविता लिख देते हैं। यह उनकी प्रमुख प्रवृत्ति है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि वे छोटी-छोटी कविताओं के बड़े कवि है। बड़ी-बड़ी बातों के घटने का इंतजार नहीं करते, जीवन की हर छोटी घटना उनके लिए कविता का विषय है।

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-181*
2. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !, पृ. सं.-34*
3. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कहा दिया मैंने, पृ. सं.-27-28*
4. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कहा दिया मैंने, पृ. सं.-33*
5. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-34*

एक कविता में उन्होने धरती को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। वे आषाढ़ के बादलों के हल्का-फुल्का बरसने पर लिखते हैं–

"बादल चक्कर लगा रहे हैं / हवा उन्हें बहला रही है / फुसला रही है!
जेठ अभी-अभी गुजरा है / बीच-बीच में बूँदा-बाँदी हो जाती है
गरज के साथ छींटें पड़ जाते हैं / धरती के बाल
मुखमण्डल-कन्धे उभरे हुए सीने / बीच-बीच में भीग जाते हैं
मगर बिचारी के होठ सूखे के सूखे हैं! / जमकर वर्षा हो तो-
धरती का दिल जुड़ा रहे / मगर, आवारा बादल / पसन्द करते हैं सुनना
खेतिहरों की गालियाँ! / हवा उन्हें फुसला रही है / बहका रही है
छलावे में टहला रही है।"[1]

कवि ने बादल को 'आवारा' कहकर अपना रोष प्रकट किया है साथ ही मानवीय प्रेम की शारीरिक प्यास के माध्यम से पृथ्वी की तीव्र प्यास का अच्छा रूपक बाँधा है।

बादल के विविध रूपाकृति को कवि ने 'भरे-भरे मायावी बादल' कविता में चित्रित किया है–

"गीले बादल / उदे बादल / भरे-भरे मायावी बादल
अटे हुए हैं / पटे हुए हैं / सारे नभ में डटे हुए हैं
सचमुच क्या तो बरस पड़ेगे
*** * * * * * * * ***
छोटे-छोटे मझोले बादल / आपस में कुश्तियाँ लड़ेंगे
अभी-अभी तो लगता मुझको / सचमुच ही ये बरस पड़ेंगे"[2]

बादलों के नखरे से कवि ऊपरी तौर पर परेशान और हार्दिक रूप से प्रसन्न होता है, उनके क्रिया-कलापों पर कवि की टिप्पणी है–

"उमड़-धुमड़ कर / नभ में छाए / बादल जहरीखाल के
हमको तो ये बेहद भाए / बादल जहरीखाल के
क्यों करते हैं इतने नखरे / बादल जहरी खाल के
क्यों रहते हैं बिखरे-बिखरे / बादल जहरी खाल के"[3]

ख. नदी

नदी-नदियाँ हमारे सांस्कृतिक और स्वाभाविक जीवन का हिस्सा हैं। कवि ने कई नदियों का उल्लेख अपनी कविताओं में किया है। बेतवा, झेलम और गंगा पर तो उन्होंने कविताएँ भी लिखी हैं। वे उनकी गति, उनकी सुन्दरता पर ही नहीं रीझते बल्कि उन्हें प्रदूषित होने से भी बचाना चाहते हैं। कवि सिर्फ सौन्दर्य मुग्ध होकर प्रकृति का चित्रण नहीं करता बल्कि प्रकृति प्रदूषण पर भी अपनी पैनी दृष्टि रखता है और टिप्पणी करता है। गंगा को गंदा करने वालों की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए कवि ने एक वीभत्स रस की कविता लिखी है–

"क्षुब्ध गंगा की तरंगों के दुसह आघात.....
शोख पुरवइया हवा की थपकियों के स्पर्श.....

---

1. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-37*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-38*
3. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-48*

खा रही है किशोरी की लाश.... / -हाय गांधी घाट!
-हाय पाटलिपुत्र!
दियारा है सामने उस पार / पीठ पीछे शहर है इस पार
आज ही मैं निकल आया क्यों भला इस ओर?
दे रहा है मात मति को / दृश्य अति वीभत्स यह घनघोर!
भागने को कर रही है बाध्य / सड़ी-सूजी लाश थी दुर्गंध
मर चुका है हवाखोरी का सहज उत्साह / वाह गंगा, वाह! वाह पाटलिपुत्र!"[1]

भारतीय जनमानस में गंगा जैसी पवित्र नदी नहीं किन्तु इसमें भी लाश फेंक कर इसको भी प्रदूषित करने से लोग बाज नहीं आते। इतने मूर्ख लोगों को क्या कहा जाए। अशिक्षा और कुसंस्कार का इतना भयंकर दुष्परिणाम सबको भुगतान पड़ रहा है जिसकी कोई सीमा नहीं है। यदि लाश को जलाने का सामर्थ्य नहीं है तो उसे जमीन में दफनाया जा सकता था, गंगा में फेंक कर उसे अशुद्ध-प्रदूषित करना कहाँ की बुद्धिमानी है। पता नहीं कब हम भारतीय लोगों में अक्ल आएगी कि अपने जल-स्रोत को स्वच्छ रखना सीखेंगे। यह तो एक उदाहरण है यदि गंगा किनारे निकल पड़े तो गन्दगी के ढेर के सिवा कुछ न मिलेगा, आज भी हम कितने जागरुक हैं इसकी पोल-पट्टी खुल जाएगी।

इलाहाबाद के संगम पर भी कवि ने कविता लिखी है। जिस संगम पर लाखों की भीड़ रहती है उसे अन्य दिनों में जन-विहीन देखकर कवि टिप्पणी कर उठता है–

"गढ़ की गंगा / दुबली गंगा पतली गंगा / कोसों फैला
रेतीला विभ्राट दिख रहा / नंगम नंगा, नंगम, नंगा, नंगम नंगाा
कौन कहेगा-अरे / यहीं पर मेला-ढेला / जुटाकरे हैं.....
गहमा-गहमी, संगम संगा / डूब लगाए भगत भाओ से / एक-एक भिखमंगा!"[2]

प्रकृति के ऐसे कई दृश्य कवि की कविता में मौजूद हैं। कवि ने छोटे-छोटे दृश्यों को कविता का आधार बनाया है।

'बेतवा' पर कवि ने दो कविताएँ लिखी हैं। बेतवा किनारे जाड़े की धूप बड़ी सुन्दर लग रही है क्योंकि बदली छँट गई है–

"बदली के बाद खिल पड़ी धूप / बेतवा किनारे
सलोनी सर्दी का निखरा है रूप / बेतवा किनारे
रग-रग में धड़कन, वाणी है चूप / बेतवा किनारे"[3]

नदी की गति, उसकी लहरों की थाप मन के मृदंग को बजा जाता है, कवि ने उस उमंग को पकड़ा है–

"लहरों की थाप है/ मन के मृदंग पर बेतवा-किनारे
गीतों में फुसफुस है / गीत के संग पर बेतवा किनारे"[4]

पहाड़ी नदी का अपना सौन्दर्य है, पतली धार का घुमावदार मोड़ दूर से चाँदी की हँसुली सी लगती है, इस नयनाभिराम सौन्दर्य का कवि ने एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है–

"नीचे / बहुत नीचे, / बहोत नीीी चे```... / सतपुली-सी गहराई में

---

1. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-40*
2. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-28*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-182*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-183*

अच्छी-खासी पहाड़ी नदी / प्रवाहित है जाने कब से....
बीसियों पतले स्रोत / मिलकर धारा बनते हैं न!
चक्करदार पहाड़ी सड़कों से देखने पर / ये नदियाँ चाँदी की हँसुली-सी लगती हैं।"[1]

नदियों के नाम स्थान-स्थान पर बदल जाते हैं, चेनाब नदी दूसरी जगह 'चन्द्रभागा' के नाम से भी जानी जाती है। कवि ने बड़े शिकायती अंदाज में नदी से बात-चीत की है। कवि ने कहा है कि पहले तू स्वच्छ थी अब मटियाली सी हो गई है। इसी से पता चलता है मानवों की कारिस्तानी। जो नदियाँ पहले स्वच्छ थीं क्योंकि प्रदूषण नहीं था अब वे गन्दी हो गई हैं, मानवीय हस्तक्षेप के कारण नागार्जुन लिखते हैं–

"इत्ते अर्से बाद/ हम मिले भी तो क्यों! / हम मिले भी तो कैसे!
हाय, / तू तब भी क्या ऐसी ही निठुर थी? / ऐसी ही पगलेट-
मटियाले झाग उछालती...../ बेसब्री में खाती हुई पछाड़ पे पछाड़!
ना, तब तू ऐसी न थी!
पहली बार / लगातार कई दिनों तक / साथ रहा हमारा.....
तब तू स्फटिक-सी स्वच्छ थी, / पारदर्शी, प्रवहमान, तरल,
अपने अंदर लाख-लाख वॉट विद्युत समेटे...
वो तू नहीं थी क्या / मेरी प्रिय सखी / चन्द्रभागा!
*** * * * * * * * ***
तेरी पहली झलक मिली थी मुझे / नील-निर्मल जल के अन्दर
तब 'आकंठमग्न' होकर मैं देर तक गुनगुनाता रहा
-मेघदूत के पद, विद्यापति के पद और चंडीदास के पद
क्या, वो तू कोई और थी? / क्या वो मैं कोई और था?
सच-सच बतला / ओ मेरी सनातन सहेली / चन्द्रभागा प्रिय सखी मेरी!!"[2]

इस कविता से दो बातें स्पष्ट हैं (I) समय के साथ नदियों का दोहन और प्रदूषण हो रहा है जिससे जल-स्रोत में बदलाव आ रहा है। (II) मनुष्य और नदी का रिश्ता बदल रहा है, पहले जैसी स्वच्छता और पवित्रता नहीं बची इसलिए रिश्ते में वो भावुकता, वो उष्मा नहीं बची। जैसे-जैसे हम प्रकृति से कटते जाएँगे हमारे जीवन का आनन्द समाप्त होता जाएगा और एक दिन आदमी अकेला हो जाएगा, उसे किसी का साथ नहीं मिलेगा। धीरे-धीरे छीजते हुए रिश्ते पर कवि का दर्द देखने योग्य है।

कवि ने एक विचित्र स्वप्न कथा लिखी है, झेलम के अपने ऊपर से गुजरने की, रात में 3.22 पर उनके स्वप्न में यह घटना हुई और कवि ने बड़े आनन्द से इसका लुफ्त उठाया। इस कविता में अद्भुत नाटकीयता और रोमांचकता है–

"पिछली रात / ठीक 3.22 पर एक हादसा हुआ...
मई-जून की वो भरी-पूरी झेलम / नील-निर्मल प्रवाहों वाली वो वितस्ता
मेरे ऊपर से होकर गुजरी-पिछली रात।
लगातार आधा घंटा तक, नहीं 45 मिनट लगे!
प्रवाहित होती रही मुझ पर से / मैं लेटा रहा, निमिलित नेत्र
मन ही मन जागरुक, मोद-मग्न.....

---

1. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-37*
2. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-40-41*

आशीष की मुद्रा में मेरे होठ हिलते रहे
जी हाँ, मैं मगन-मन लेटा रहा उतनी देर
जी हाँ, झेलम को हड़बड़ी थी-
वो सिन्ध से मिलने जा रही थी
मुझे झेलम पिछली रात निहाल कर गई।"[1]

कवि ने नदी के साथ अपने काल्पनिक अनुभव को भी कितना मर्मस्पशी और आत्मीय बना दिया है।

ग. समुद्र

समुद्र से भी कवि का लगाव बड़ा गहरा है। यह लगाव एक पत्र में प्रदर्शित हुआ है, वह पत्र ही कविता है, जिसमें कवि ने बड़े सम्मान के साथ लिखा है–

"तो, उत्तर भारत का वो कवि / तुम्हें सलाम भेज रहा है....
अपने आकुल-चुम्बन उसने तुम्हारे लिए / मेरी मार्फत पार्सल भेजा है"[2]

कवि अपनी पूरी हार्दिक सम्वेदना सागर के लिए भेज रहा है। यह प्रेम भरा रिश्ता ही कविता की उष्मा है, जिससे शब्दों में कवित्व पैदा हुआ है। प्रकृति के प्रति निश्छल और अगाध प्यार ही कवि की सबसे बड़ी विशेषता है।

घ. सूरज

सूर्य ब्रह्माण्ड की ऊर्जा का केन्द्र है, यह पूरी प्रकृति को ताप और प्रकाश देता है, इसके बिना हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते, कवि ने उसपर दो कविताएँ लिखी हैं। एक कविता में उन्होंने डूबते हुए सूर्य को चित्रित किया है, कोहरे में सूर्य और भी पहले छुप जाता है–

"वो गया / वो गया / बिल्कुल ही चला गया
पहाड़ की ओट में / लाल-लाल गोला सूरज का / दीख जाए पूरब में
शायद सुबह-सुबह / कोहरे में शायद न भी दीखे
फिलहाल तो वो / डूबता-डूबता दीख गया"[3]

पहाड़ी प्रदेश में सूर्य का अपना महत्त्व है क्योंकि वहाँ पूरी प्रकृति सूर्य के इन्तजार में रहती है। सूर्य वहाँ जीवन की हलचल का केन्द्र होता है, मनुष्य, पशु, पक्षी एवं प्रकृति उसकी कृपा पर निर्भर होते हैं। सूर्य के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए कवि ने लिखा है–

"दमक रहे हैं / बालों के गुच्छे / सुनहले-सफेद...
अविराम वृष्टि का यह मध्यान्तर / दे रहा है अवसर / छिपे सूरज को / कि
निचली घाटियों को करे निहाल / कि / चमकाए
धान के मृदु-हरित नवांकुरों को / सीढ़ीनुमा खेतों में / कि
भरे अधिकाधिक जीवन-रस / कच्ची नासपातियों के अन्दर
कि, दमदार बनें / भुट्टों के दूधिया दाने..../ फिलहाल तो प्रकाश का यह देवता
पहाड़ी बरसात का सहमा-सहमा यह सूरज / भर रहा है रंग कर्म की चमक
मकई के पौधों में... / लो वह चमक रहा है / सुनहले-सफेद बालों के गुच्छे

---

1. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !, पृ. सं.-36
2. नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-62
3. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-29

लो वह ओझल हुआ / घिर आया कोहरा / छा गया कोहरा"[1]

फसलों के माध्यम से कवि ने सूर्य की शक्ति, उपयोगिता और महत्त्व का संकेत किया है। वे उसे 'प्रकाश का देवता' कहकर सम्बोधित करते हैं ।

ङ. चाँद

प्राचीन काल से ही चाँद और उसकी चाँदनी मानव को आकृष्ट करती रही हैं कवि ने भी कुछ कविताओं में चाँद और चाँदनी का सौन्दर्य चित्रित किया है। जेल में बन्द कवि को बाहर आकाश में उगे हुए मुक्त चाँद देख कर अपनी घुटन और असह्य हो उठती है । अपनी असमर्थता और चाँद का मुक्त होना कवि को अखर जाता है, उन्हें वह रुचता नहीं है। प्रकृति भी तभी अच्छी लगती है जब वातावरण अच्छा हो, मन की स्थिति अच्छी हो, कवि लिखते हैं–

"वो चाँदनी, ये सीखचें / कैसे गुथें, कैसे बचें
क्योंकर रुके, क्योंकर रचें / वो चाँदनी, ये सीखचें
याँ ये घुटन, याँ ये कुढ़न / फिर दूधिया माहौल वो
कैसे रुचें, कैसे पचें / वो चाँदनी, ये सीखचें / कैसे गुथें, कैसे बचें"[2]

एक कविता में कवि ने संघर्ष करते हुए चाँद का वर्णन किया है। पावस के महीने में सप्तमी का चाँद अंधकार, बादल और मौसम से जूझ रहा है–पूरी प्रकृति अपने शबाब पर है लेकिन चाँद का भी जवाब नहीं–

"काली सप्तमी का चाँद! / पावस की नमी का चाँद!
तिक्त स्मृतियों का विकृत विष वाष्प कैसे सूँघता है चाँद!
जगता था, विवश था, अब ऊँघता है चाँद!
क्षीण दुर्बल कलाधर की कांति प्रतिपल खो रही है
सिमट आया प्रभा मण्डल / पीतिमा की परिधि छोटी हो रही है
मेढ़कों ने चिढ़ाया है रात भर इसलिए कोयल रो रही है
भोर का तार उगा है, बदलियों से जूझता है
झींगुरों को कौन टोके, फटे कंठों को भला कुछ सूझता है!
नीचे आ रहा है चाँद! / कवि पर छा रहा है चाँद!
पावस की नमी का चाँद! / काली सप्तमी का चाँद।"[3]

यहाँ प्रकृति का मानवीकरण करके कवि ने उनपर मानवी भावों का आरोपण किया है। मेढ़कों और झींगुरों के क्रिया-कलापों का वर्णन कवि ने यथार्थवादी ढंग से किया है। 'चाँदनी' को मानवी के रूप में चित्रित करके कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य को 'फिसल रही चाँदनी' कविता में अभिव्यक्त किया है। प्रकृति के कण-कण पर चाँदनी का उतरना कितना मनोरम लगता है–

"पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी / नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही
जम रही, घुल रही, पिघल रही चाँदनी / पिछवाड़े बोतलों के टुकड़ों पर-
चमक रही, दमक रही, मचल रही चाँदनी / आँगन में, दूबों पर गिर पड़ी-
अब मगर किस कदर सँभल रही चाँदनी / पिछवाड़े, बोतल के टुकड़ों पर
नाच रही, कूद रही, उछल रही चाँदनी / वो देखो, सामने

---

1. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या, पृ. सं.-37-38*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-80*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-41*

पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी "[1]

छोटी-छोटी चीजों पर चाँदनी जब आती है, उसका सौन्दर्य बढ़ जाता है। नाली और बोतल के टुकड़ों पर चाँदनी का उतरना, मचलना कवि देखता है। अकाव्यात्मक चीजों में भी कविता का प्रवेश कवि नागार्जुन ने कराया है। चाँदनी का मचलना केदारनाथ अग्रवाल के 'बसंती हवा' की याद दिलाती है।

च. तारे

इसी तरह अन्य प्राकृतिक उपादानों को भी कवि ने कविता में स्थान दिया है। आकाश में तारों को दूर-दूर देखकर कवि लिखते हैं–

"फीके-फीके से ये तारे!

*** * * ***

झिलमिल झिलमिल / थके हुए पग, पका हुआ दिल

क्या न मिलेंगे कभी, अभी-जो / दूर-दूर पर हैं बेचारे? / फीके-फीके से ये तारे!"[2]

कवि को लगता है कि ये तारे अलग-अलग हैं, चिन्तित लग रहे हैं और हारे हुए से लगते हैं। यह तो तारों के ऊपर कवि के विचार का आरोपण है, कवि का मन उदास है इसलिए वह तारों को इस रूप में प्रस्तुत कर रहा है।

छ. पेड़

पेड़-पौधे प्रकृति के सजीव अंग हैं। इनसे प्रकृति को जीवन मिलता है। कवि ने कई सन्दर्भों में कई पेड़ों पर कविताएँ लिखी हैं। नीम और देवदार के पेड़ पर उन्होंने दो-दो कविताएँ लिखी हैं। बनारस में एक जगह नीम का पेड़ सुरक्षित दिख जाने पर कवि प्रसन्न हो उठता है, लोगों की उपयोगितावादी दृष्टि और पेड़ों को नष्ट करने की आदत पर कवि का व्यंग्य भी इसी में अंतर्निहित है–

"अरे हाँ, इस झुरमुट में/ नीम भी हिस्सा है

नीचे गली के किनारे होता तो उसे / दतुअन बनाकर जाने कब

चबा गये होते! / गनीमत है- / गली के किनारे नीचे नहीं है खड़ा

नीम का यह पौधा बड़भागी है!"[3]

नीम का पौधा हमारे लिए दवा के समान है, उसे हमें खुद सुरक्षित रखना चाहिए लेकिन छोटे-छोटे उपयोग में हम उसका विनाश कर देते हैं, कवि का संकेत इसी ओर है। ये पेड़ हमारे सहचर भी हैं बशर्ते हम महसूस करें। गौतम बुद्ध को पीपल की छाया में बैठकर ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। कवि ने लोहे के सीखचों के पार से झाँकती नीम की दो टहनियों का उल्लेख एक कविता में किया है क्योंकि इसकी ताजगी रोम-रोम की प्यास बुझा देगी। वे लिखते हैं–

"नीम की दो टहनियाँ / झाँकती है सीखचों के पार / यह कपूरी धूप

शिशिर की यह दुपहरी, यह प्रकृति का उल्लास रोम रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास"[4]

पहाड़ों पर सुन्दर देवदार के वृक्षों को जब कभी कवि देखता है तो उसे बड़ा अच्छा लगता है। वे उसे 'हिमालय के लाल' सम्बोधित करते हैं–

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-78*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-112*
3. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-24*
4. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-35*

"कर रहे छविमान / कौन-सा रसपान / जरा से तुम दूर / कांति से भरपूर
चिर कुमार किशोर / जगत के चितचोर / हिमालय के लाल / देवदास विशाल"[1]

ओला-पाला, धूप-घाम में निर्भय अक्षत खड़े रहने वाले देवदार के पेड़ कवि को प्रिय हैं, ये संधर्ष चेतना के प्रतीक भी हैं इसलिए कवि इनकी प्रशंसा में कविता लिखते हैं–

"घन निवड़ शाखाल / देवदार विशाल / शिशिर हो गया ग्रीष्म
रूद्र हो या भीष्म / तुम न होते भीत / तुम न होते पीत
कड़ी सर्दी घाम / तुम सदैव ललाम / सुई जैसे पत्र
बने रहे है छत्र / हिमानी का प्यार / सृष्टि का श्रृंगार
सरल सीधी डाल / सतत उन्नत भाल / शिखा नभ की ओर
सहज स्नेह विभोर / खड़े तीनों काल / देवदार विशाल"[2]

दूसरी कविता में कवि ने देवदार को पहाड़ी पेड़ों में दामाद जैसा कहा है–

"सजीले, प्रिय देवदार! / कौन भला, तुमको-
यहाँ पर लाया उतार? / तुम्हारी निवास भूमि
जलधि तल से / ऊपर, अति ऊपर / फुट जहाँ सात-आठ नौ-हजार
ओ, हे तुम / पहाड़ी तरुओं में, पाहुन उदार / सजीले प्रिय 'देवदार'"[3]

कवि ने बड़े प्यार और अपनेपन से देवदार के पेड़ को याद किया है पहाड़ी पेड़ों में चिनार के पेड़ अपनी लम्बी उम्र के लिए विख्यात है, कवि ने इस विषय पर एक कविता लिखी है–'इत्ती निर्लिप्तता नहीं चाहिए'। जब हिमा ने बताया कि ये चिनार के पेड़ हजार साल पुराने हैं तो कवि चौंक उठते हैं, लिखते हैं–

"लेकिन मैं तो दंग था / उन महा-महा बुजुर्गो की / कालातीत निर्लिप्तता से!
माता खीर-भवानी के उस विशाल प्रांगण में
कम-से-कम बीस पच्चीस चिरजीवी चिनार तो होंगे ही
इतनी ज्यादा तादाद में / इतने अधिक वृद्धातिवृद्ध वनस्पति
मैंने कहाँ देखे थे भला / कब देखे थे / बिलकुल नहीं देखे थे!!"[4]

700 से लेकर 1100 वर्षों के चिनार वृक्ष को कवि बड़े कौतुहल से देखता है। प्रकृति के इस अक्षय स्वभाव के प्रति कवि के मन में सम्मान का भाव है। क्षणभंगुर जीवन और सतत परिवर्तनशील प्रकृति के बीच कैसे ये चिनार इतने वर्षों से बचे हुए सुरक्षित हैं, यह सुखद आश्चर्य उन्होंनें कविता में व्यक्त किया है। 'बच्चा चिनार' कविता में चुहल का भाव है।

कवि ने जहरीखाल के एक नाशपाती के वृक्ष को भी कविता में चित्रित किया है। पिछले साल की तुलना में इस वर्ष उसका रूप इस कदर बदल गया है कि कवि को विश्वास नहीं होता, कवि का उस पेड़ से पुराना रिश्ता हो गया है तभी तो उससे बतियाते हुए पूछता है-

"यह तो वो नहीं है! / क्या मैं रोज यहीं बैठता था?
क्या नाशपाती का वही पेड़ है यह? / मैं ऐसे भला क्यों मान लूँ!
क्या हम इसी की छाँह में / विगत ग्रीष्म के / मध्याह्न गुजारते थे–
* * * * * * * * * *

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-101-102*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-101*
3. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-49*
4. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-69*

फलों वाली प्रजाति का यह तरुण तरु / आज मुझे बिल्कुल नया-नया लगता है।
ताम्रवर्णी पत्तियों वाली टहनियाँ / चाँदी के फूलों से ढक गयी हैं
इससे विदाई ली थी / यह हजार-हजार फलों से लद रहा था
रसीले-खट-मिट्ठे फलों से! / अभी तो पट्ठा
सफेद फूलों से पटा पड़ा है, / लगता ही नहीं कि वही है"[1]

एक पेड़ के प्रति कवि का यह लगाव ही कविता की मार्मिकता है, यह मानवीय सम्बन्ध कम कवियों में है। इतनी अनौपचारिक भावुकता तो नागार्जुन में ही दिखाई पड़ती है।

प्रकृति का हरा रूप देखने वाली निगाहें जब पतझड़ देखती हैं तो उन्हें बड़ी बेचैनी होती है, जेल के एकांत सेल से पेड़ों का नंगापन कवि को व्यथित करता है, कवि ने इस संदर्भ में एक कविता लिखी है -

"नंगे तरु हैं, नंगी डालें
इन्हें कौन-से हाथ सँभालें / खीझ भड़कती, घुटती आहें
झेल न पातीं इन्हें निगाहें / कैदी की लँगड़ी मनुहारें
कैसे इनकी सनक उतारें / मौसम के जादू मचलेंगे
कब इनमें टूसे निकलेंगे / हरियाली का छाजन होगा
आसमान कब साजन होगा
अब भी तो पतझर थक जाए / नग्न नृत्य अब भी रुक जाए
इनका नंगापन ढक जाए / हरियाली पर झुक आए।
नंगे तरु हैं, नंगी डाले.... / इन्हें कौन-से हाथ सँभालें।"[2]

ज. पत्ते

कवि की दृष्टि पेड़ों तक ही सीमित नहीं रहती पत्तों की शिराओं तक भी जाती है। 2-3 कविताओं में उन्होंने पत्तों को केन्द्र में रखा है। वर्षा में धुलकर जब वृक्षों के पत्ते नए लगने लगते हैं तब दृश्य बड़ा सुन्दर हो उठता है, कवि ने लिखा है–

"वर्षा में अनावृत धुले पात / फीके थे कल, आज खुले पात
धूप के जादू में खिले पात / मस्तानी हवा में हिले पात
जादुई साँचे में ढले पात / भूल गये यह-दिन भले पात"[3]

'पाकड़ा' के पेड़ जब नए पत्तों से लद जाते हैं तब कवि का मन झूम उठता है और वे कविता में उसे चित्रित करने को आतुर हो उठते हैं–

"हरे हरे नये पात / ढक लिये अपने सब गात
पकड़ी का सयाना वो पेड़ / कर रहा गुप-चुप ही बात
ढक लिए अपने सब गात / चमक रहे / दमक रहे
हिल-रही-डुल रही खिल रही-खुल रही / पूनम की फागुनी रात
पकड़ी ने ढक लिए अपने सब गात"[4]

फागुन महीने की पूर्णिमा में पाकड़ के पेड़ और उसके पत्तों के सौन्दर्य पर कवि मुग्ध हो जाता है। इससे यह पता चलता है कि कवि के लिए प्रकृति का हर अंग बराबर है, सिर्फ कमल, अमलतास और देवदार

---

1. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-25
2. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-82
3. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-89
4. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-81

पर ही उसकी दृष्टि नहीं रुकती, वह पाकड़ के पेड़ तक भी जाती है। छूटे हुए पेड़ को भी साहित्य में जो स्थान नागार्जुन ने दिया है, वह महत्त्वपूर्ण है। पीपल के सुन्दर पत्तों पर एक मधुर कविता कवि ने लिखी है; पुराने पत्तों के झड़ने और नए पत्ते के आने का जिक्र करते हुए वे लिखते हैं–

"लाल गुलाबी पत्ते कैसे / लह लह लह लह लहा रहे हैं
कैसी सुन्दर रात, चाँदी की / किरनों में ये नहा रहे हैं
छलका रहा इनमें जीवनरस / दौड़ रही है इन पर लाली
बुनने लगे आँख खुलते ही / ये स्वर्णिम सपनों की जाली
यह इनका युग, ये इनके दिन / रहे अंत की घड़ियाँ तुम गिन
हट जाओ, इनको अवसर दो / छोटे हैं, बढ़ने का वर दो
पूर्ण हो रही आयु तुम्हारी / तुम हलके, इनका दिल भारी
राह रोककर खड़े न होना / झूठ-मूठ के बड़े न होना
सारा श्रेय तुम्हें ही देंगे। अपने पूर्वज की उदारता
जीवन-भर ये याद रखेंगे / ओ पीपल के पीले पत्ते!"[1]

पुराने पत्तों को उदार होने की सीख कवि बड़ी आत्मीयता से देते हैं जैसे वे उनके परिचित हों। इसके माध्यम से कवि ने पुरानी पीढ़ी को भी सबक सिखाया है जो अनावश्यक टाँग अड़ाकर नई पीढ़ी की राह रोकते हैं। शुद्ध प्राकृतिक कविता होते हुए भी अर्थ के स्तर पर यह एक प्रतीक कविता बन जाती है–

झ. फूल

फूल तो प्रकृति के श्रृंगार हैं, सबसे सुन्दर, सबसे प्यारे। कवि ने भी कई तरह के फूलों का जिक्र कई कविताओं में किया है परन्तु दो कविताएँ पूर्णतः पुष्प केन्द्रित हैं। पहली कविता है 'रजनीगंधा'। जेल के अन्दर की घुटन से त्रस्त कवि को जब 'रंजनीगंधा' की सुवास मिलती है तो वह सारे अभाव भूल जाता है। प्रकृति मनुष्य के मन को विकसित करने वाली उपादान है, फूलों का इतना अच्छा असर कवि ने इस कविता में चित्रित किया है, जो अनुभव जन्य है–

"तुम खिलो रात की रानी! / हो म्लान भले यह जीवन और जवानी
तुम खिलों रात की रानी! / प्रहरी-परिवेष्टित इस बंदीशाला में
मैं सड़ू सही पर ताजी रहे कहानी / तुम खिलो रात की रानी!
यह प्रहरी के बूटों की कर्कश टापें / रह-रहकर बहुधा नींद तोड़ जाती हैं
आँखें खुलतीं तो बस झुँझला उठता हूँ.... / ये हृदयहीन! ये नर-पिशाच! ये कुत्ते
इतने में अनुपम सुवास से सुरभित / शीतल समीर का हल्का झोंका आता
सारे अभाव-अभियोग भूल जाता हूँ / यह आकुल मन इतना प्रमुदित हो जाता
जय हो जय हो कल्याणी!"[2]

बंदी जीवन में भी कवि की सहृदयता और प्रकृति प्रेम बरकरार है क्योंकि तन बन्दी अवश्य है पर आत्मा स्वतंत्र है और पुष्प की सुरभि ग्रहण करने योग्य भी।

दूसरी कविता कदंब के फूलों पर है। कदंब के फूल गोल-गोल सुन्दर होते हैं, कवि ने उनको छू लेने की लालसा से लिखा है–

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-104*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-110*

"फूले कदंब / टहनी-टहनी में कन्दुक नहीं झूले कदंब / फूले कदंब
सावन बीता / बादल का कोप नहीं रीता / जाने कब से वो बरस रहा
ललचाई आँखों से नाहक / जाने कब से तू तरस रहा
मन कहता है, छू ले कदंब / फूले कदंब / झूले कदंब"[1]

फूलों को खिले देखकर कवि का मन बच्चों जैसा हो जाता है और वे उसे छूने को मचल उठते हैं। प्रकृति से यही मनुष्य का सनातन रिश्ता है। मन की छोटी सी लालसा कविता का प्राण है।

प्रकृति और मौसम से जुड़ा है फूलों का खिलना। हर मौसम में अलग-अलग फूल की बहार प्रकृति का अभिवादन और श्रृंगार करती है। जेठ मास में अमलतास के पीले-पीले फूलों की फुलझड़ियाँ कितनी सुन्दर लगती हैं यह वही बता सकता है जिसने इसे देखा हो। पंक्तिबद्ध पेड़ों पर पीले-पीले फूलों का लद जाना इतना मनोरम, इतना आकर्षक लगता है कि ग्रीष्म की संध्या अपने पूरे सौन्दर्य के साथ प्रकट हो जाती है। कवि ने इस दृश्य का बड़ा मनोहारी ओर यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है–

"गुजर गया आधे से अधिक जेठ मास / पंक्तिबद्ध पुष्पित खड़े है अमलतास
दूर से तो दिखते हैं पीले-पीले उदास / छिपाये नहीं छिपता अन्दर का हुलास
फूल होंगे सौ हजार, पत्ते, ओफ्फो, सौ-पचास
गुजर गया आधे से अधिक जेठ मास"[2]

ञ. पक्षी

प्रकृति के सजीव अंग हैं–पक्षी, जो प्रकृति के सहचर हैं। विभिन्न कविताओं में कवि ने इनका भी चित्र पर्याप्त मात्रा में उकेरा है। कुछ कविताओं में तो प्रतिपाद्य ही है-'पक्षी'। 'चातकी' कविता में कवि ने आत्मकथात्मक शैली में चातकी को प्रस्तुत किया है जिसे स्वाति नक्षत्र के जल का इंतजार है–

"प्रतीक्षा थी, आस थी, विश्वास था
और प्रियतम! जले हिय पर लदा
वेदनाओं का विकट इतिहास था!
*** * * * ***
सुहाई मुझको न काली घन-घटा
सुहाई मुझको न पावस की छटा
*** * * * ***
टुकड़ियों में बँटे औ बिखरे हुए
धन्य! स्वाती के जल्द तुम धन्य हो
विकल थी चिर प्यास से यह चातकी
आ गए तुम, अब कभी किस बात की
आ गई है जान में अब जान रे
कर लिया मैंने अमृत का पान रे"[3]

चातकी के बारे में 'कवि-समय' का लाभ उठाते हुए कवि ने यह कविता लिखी है। कोयल की बोली किसे अच्छी नहीं लगती लेकिन जब मौसम अपने सबाब पर हो और कोयल मौन रहे तो कवि को चिन्ता

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-86*
2. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-57*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-43*

होने लगती है। बहुत इन्तजार के बाद जब कोयल बोलती है तब कवि चहक उठता है, बड़ी अदा के साथ वह उसकी बोली को कविता का श्रृंगार बनाता है–

"अब के इस मौसम में / कोयल आज बोली है / पहली बार!
टूसों को उमगे कई दिन हो गए / टेसू को सुलगे कई दिन हो गए
अलसी को फूले कई दिन हो गए / बौरों को महके कई दिन हो गए
*** * * * * * * * ***
चुपचाप कलमुही / भर गया जी / जोरों से कूक पड़ी
अबके इस मौसम में / कोयल आज कूकी है / पहली बार!"[1]

इसी कविता पर टिप्पणी करते हुए डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है कि "नागार्जुन टेसू, अलसी और बौरों के बारे में ऐसे लिखते हैं जैसे वे इनके सगे सम्बन्धी हों। अद्‌भुत आत्मीयता है नागार्जुन का ऐसी कविताओं में।"[2] अन्यत्र भी उनकी इस आत्मीयता को सहज ही देखा जा सकता है। आकाश में बगुलों का सामूहिक रूप से विचरण करना अपने आप में बेजोड़ दृश्य होता है, कवि ने 'वलाका' कविता में इस सुन्दर दृश्य को प्रस्तुत किया है–

"उड़ी जा रही नील गगन में / पवन-पंख पर विमल वलाका
मानों विस्तृत कालिंदी के / श्याम सलिल में अविरल गति से
बहती चली जा रही कोई / श्वेत सहस्त्र पद-पद्‌मों की
बनी-बनायी लम्बी माला / पावस की आगमन सूचना
देने आयी प्रकृति सुन्दरी / फहरा-फहरा कर धवल पताका
उड़ी जा रही नील गगन में / पवन पंख पर विमल वलाका!"[3]

बगुलों के इस सुन्दर 'अभियान' पर कौन नहीं मुग्ध होगा। काली यमुना में सफेद कमलों के बहने जैसा सौन्दर्य, सचमुच मनमोहक है।

ट. कीचड़

जिन चीजों से लोगों को वितृष्णा होती है उसपर नार्गाजुन ही कविता लिख सकते हैं, कीचड़ शायद ही किसी को पसन्द आए परन्तु धरती के इस रूप की भी कवि ने जय-जयकार की है–

"टाँगें गल जायेंगी / सरिता की कछार में / पंक ही पंक है
धँसना तो पड़ेगा ही / कर्दम का तुहिनमय स्पर्श.... / कम्पन की पराकाष्ठा...
जड़िमा में डूब गया स्पर्श-बोध.... / रगों में प्रवहमान रक्त
जम गया मानो! / जय हे कीचड़, जय हे पंक!"[4]

यही प्रवृत्ति नागार्जुन की शक्ति है। अकवित्वमय लगने वाले तत्त्वों में भी पहली बार नागार्जुन ने ही कवित्व का बोध करवाया। उन्होंने कविता की परिधि को बढ़ाया है।

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-45-46*
2. *रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. सं.-161*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-99*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-109*

छठा अध्याय

नागार्जुन की हिन्दी कविता का रूप-शिल्प

(1) नागार्जुन की हिन्दी कविताओं का स्थापत्य

(क) खण्ड काव्य (ख) लम्बी कविताएँ
(ग) मझोली कविताएँ (घ) छोटी कविताएँ

(2) विविध शैलियाँः बदलती संवेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति

(क) मंत्र शैली (ख) वंदना शैली (ग) भजन शैली
(घ) जय जयकार शैली (ङ) अभिनन्दन शैली (च) प्रशंसा शैली
(छ) एकालाप शैली (ज) वक्तव्य शैली (झ) सम्बोधन शैली
(ञ) संवाद शैली (ट) पहेली या बुझौवल शैली (ठ) उलटबाँसी शैली
(ड) प्रश्न शैली (ढ) सहज शैली (ण) कथा शैली
(त) नाटकीय शैली (थ) स्केच शैली (द) लोकगीत शैली
(ध) चनाजोर गरम शैली (न) 'मैं' शैली (प) शिकायत शैली
(फ) सहानुभूति शैली (ब) विलाप शैली (भ) हरगंगे शैली
(म) मुकरी शैली

(3) भाषा का विराट उत्सव

(क) शब्द प्रयोग (ख) मुहावरे (ग) कहावत
(घ) अलंकार (ङ) कथन-भंगिमा (च) सम्प्रेषणीयता
(छ) संगीतात्मकता- छंद, तुक, टेक, ध्वनि, लय, धुन, गीत-संगीत।

(4) अन्य भाषिक उपकरण

(क) बिम्ब (ख) प्रतीक (ग) मिथक

1. नागार्जुन की हिन्दी कविता का स्थापत्य

किसी बात को व्यक्त करने की कला होती है, उसमें भी सौन्दर्य छुपा होता है। कविता में जब कोई बात कही जाती है तब उसमें दो चीजें महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं–

(i) रूप शिल्प (ii) काव्य भाषा।

कथ्य या तथ्य चुनने के बाद यह समस्या आती है कि उसे किस रूप में व्यक्त किया जाए और उसकी भाषा कैसी हो। यह पूर्णतः समय, समाज और कवि पर निर्भर है कि वह कौन से रूप में अपनी बात, कैसी भाषा में अभिव्यक्त करे कि उसके भाव और विचार सही-सही जनता तक पहुँच जाएँ। यह प्रक्रिया खाना बनाने एवं मूर्ति गढ़ने जैसी कठिन है। यह पूरी तरह कवि की प्रतिभा और विलक्षण मेधा शक्ति पर निर्भर है। एक ही विषय पर लिखी गई अलग-अलग कवि की रचना में ज़मीन-आसमान का फ़र्क आ जाता है कारण कवि की प्रतिभा, दृष्टि, विवेक और उसकी मेधा शक्ति का अंतर है। रूप शिल्प की रोचकता, मजबूती और विविधता कविता को कालजयी बना देती है और भाषा की बहुस्तरीयता, सौन्दर्य भंगिमा उसे लोकप्रिय बनाती है। सिर्फ प्रतिभा से ही अच्छी कविता नहीं लिखी जा सकती उसके लिए प्रयास और अभ्यास भी आवश्यक है। दोनों दृष्टि से नागार्जुन विलक्षण कवि हैं। उनके काव्य में रूप-शिल्प की विविधता और भाषा की बहुस्तरीयता देखते बनती है। स्वयं **नागार्जुन** ने स्वीकार किया है-**"यह सही है कि कविता में कथ्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता है, परंतु कहने का ढ़ंग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। मैं आज भी अपनी कविताओं के लिए नए फार्म तलाशता रहता हूँ।"**[1] अधिकांश कविताओं का रूप शिल्प भावाभिव्यक्ति में सहायक है और मजबूती भी। उसी तरह उनकी कविताओं का भाषिक स्तर विविधतापूर्ण है। उनके रूप शिल्प और भाषिक उपलब्धि पर **डॉ. नामवर सिंह** ने ठीक ही लिखा है कि–**"नागार्जुन की गिनती न तो प्रयोगशील कवियों के संदर्भ में होती है, न नई कविता के प्रसंग में, फिर भी कविता में रूप सम्बन्धी जितने प्रयोग अकेले नागार्जुन ने किए हैं उतने शायद ही किसी ने किए हों। कविता की उठान तो कोई नागार्जुन से सीखे और नाटकीयता में तो वे जैसे लाजवाब ही हैं। जैसी सिद्धि छंदों में वैसा ही अधिकार बेछंद या मुक्तछंद की कविता पर। उनके बात करने के हजार ढंग हैं, और भाषा में भी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृत की संस्कारी पदावली तक इतने स्तर हैं कि कोई भी अभिभूत हो सकता है। तुलसीदास और निराला के बाद कविता में हिन्दी भाषा की विविधता और समृद्धि का ऐसा सर्जनात्मक संयोग नागार्जुन में ही दिखाई पड़ता है।"**[2]

कवि शब्दों का कारीगर होता है। शब्दों को उचित शिल्प में ढाल कर कविता गढ़ता है। जिस कवि के पास मजबूत ढाँचा होता है वही कवि कालजयी होता है। सिर्फ शब्द और भाव ही कविता के लिए पर्याप्त नहीं होते। जैसे मनुष्य के सुन्दर व्यक्तित्व के लिए कसरती शरीर एक वरदान है वैसे ही कविता का ढाँचा होता है। महाकाव्य, प्रबंध काव्य और मुक्तक का ढाँचा अपने-अपने भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होती हैं। जो कथा पर आधारित काव्य है उनके लिए महाकाव्य, खण्डकाव्य और प्रबंधकाव्य का ढाँचा अधिक उपयुक्त है जबकि उद्वेग, भावोन्मेष, व्यंग्य, टिप्पणी जैसी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए मुक्तक का कलेवर अधिक उपयोगी होता है।

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-42-43

2. नामवर सिंह (सम्पादक), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-9

नागार्जुन ने तथ्य एवं कथ्य के अनुकूल ढाँचा चुना है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि- **"इसलिए मेरी कविता में भी फार्म के धरातल पर आपको वैविध्य मिलेगा।"**[1]

वे पूरी तरह जागरुक होकर शिल्प तलाशते हैं एक जगह उन्होंने इसके महत्त्व को इस तरह उजागर किया है—**"भारतेन्दु के बाद हिन्दी कविता को जनता के बीच खड़ी करने की कोशिश मैंने की। अगले पचास वर्षों बाद हिन्दी कविता की जीवंतता के प्रमाण खोजे जाएँगे तो हमारी वे पंक्तियाँ उद्धृत की जाएँगी जो चलताऊ ढंग से आन्दोलनों को लक्ष्य करके लिखी गई हैं। तुलसीदास से मैंने बराबर फार्म के प्रति जागरूकता सीखी है। और यह जैसे-तैसे नहीं आ जाता। कवि को अपनी सनक के बल पर कविता के साथ सलूक नहीं करना चाहिए। मैं तो हमेशा फार्म तलाशता रहता हूँ।"**[2] इसलिए 'भस्मांकुर' और 'भूमिजा' का ढाँचा प्रबंधात्मक है एवं अन्य कविताओं का मुक्तक। ये कविताएँ भी जरुरत के मुताबिक लम्बी, मध्यम (मझोली) एवं छोटे आकार की हैं। कुछ कविताएँ छंदों में बंधी हुई हैं, कुछ मुक्त छंद में हैं। यह कवि के स्व-विवेक पर निर्भर है कि वह किस बात को किस ढाँचे में प्रस्तुत करता है।

नागार्जुन संस्कृत के अध्येता रहे और आधुनिक युग के कवि। उन्हें प्राचीन साहित्यिक धरोहर से भी उतना ही प्यार है जितना आधुनिक प्रगतिशीलता से। साहित्य का पुराना ढाँचा लेकर उन्होंने दो खण्डकाव्यों की रचना की—(i) भस्मांकुर - 1971, (ii) भूमिजा -1993।

(क) खण्डकाव्य

भस्मांकुर '854' पंक्तियों की कविता है जिसे खण्डकाव्य ही कहना चाहिए क्योंकि उसमें कामदेव के पुनर्जीवित होने की कथा है, शिव और पार्वती के शादी का प्रसंग वर्णित है। बरवै छंद में कवि ने कथा को सुन्दर ढंग से बाँधा है। भावों और भाषा का संतुलन ढाँचे के सटीक बंधन में इतना सुन्दर बन पड़ा है कि लगता है, काश! नागार्जुन और खण्डकाव्यों की रचना कर पाते। 1950 के बाद के हिन्दी साहित्य में कम ही ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने प्राचीन काव्यरूपों को इस तरह प्रयोग में लाया है और वह भी प्राचीन छंद में। परम्परा का इतना अच्छा पोषण और किसके सामर्थ्य की बात है। निराला के बाद नागार्जुन ही ऐसे कवि हैं।

भूमिजा भी '44' पृष्ठों में रचित लघु-काव्य है जिसे खण्डकाव्य कहना चाहिए, मात्रिक छंद में रचित यह काव्य सीता के अन्तिम दिनों का दर्पण बन गया है। अपमानित, प्रताड़ित सीता के माध्यम से कवि ने एक मार्मिक रचना प्रस्तुत की है और खण्डकाव्य के कलेवर को नया जीवन दिया है। प्रबंध काव्य की विशेषताओं से लैस ये काव्य नागार्जुन की कवि प्रतिभा के प्रमाण हैं। नागार्जुन अधैर्य, असंयम के लिए जाने जाते हैं किन्तु इन काव्यों को देखने पर पता चलता है कि उनमें कितना धैर्य, कितना संयम है। शिल्पगत ढाँचे के प्रति वे कितने जागरुक हैं और अपनी साहित्यिक परम्परा से उनका कितना गहरा लगाव है। प्राचीन कथाओं के मार्मिक प्रसंग को नई भाषा में लिखकर उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि आज भी विषय वस्तु का टोटा नहीं है जरुरत है प्रतिभा की। उन्होंने अपनी प्रतिभा के स्पर्श से साहित्य की पुरानी कथा को भी नया रूप दिया है। यह सीता नए युग की सीता लगती है जो और अपमानित होने के लिए तैयार नहीं। आधुनिक युग की चेतना उसमें व्याप्त है। सीता की मनोव्यथा को कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से काव्य में प्रस्तुत किया है।

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-119

2. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-119

'रत्नगर्भ' काव्य संग्रह की कविताएँ खण्डकाव्य धर्मी कविताएँ हैं। ये खण्डकाव्य जैसी लगती हैं किन्तु खण्डकाव्य हैं नहीं। पुरानी कथाओं का आधार लेकर लिखी गई लम्बी कविताएँ हैं। भाषा संस्कृतनिष्ठ, छन्दोबद्‌ध एवं मुक्तछंद दोनों में हैं। इस संग्रह में 8 कविताएँ हैं जो पहले भी कई संग्रहों में प्रकाशित हैं। कथा की एक घटना के आधार पर कवि ने कविता को बुना है इसलिए नाटकीयता से इसे रोचक बनाते हुए चलते हैं। इन कविताओं में औरतों के शोषण एवं दुख-दर्द को मार्मिक ढंग से उठाया गया है। पहली कविता गौतम बुद्‌ध के गृह त्याग प्रसंग पर है। लेकिन बुद्‌ध के सोचने का तरीका आधुनिक है, प्रगतिशील है। 'समता' के मंत्र को जपता हुआ कवि बुद्‌ध के गृह त्याग के लिए उनके ज्ञान की सतत चाह को प्रकट किया है।

'चंदना में चंदना एक शोषित लड़की की कहानी है जो लुटेरों के चंगुल में फँस जाती है, गुलामी का दंश झेलती है और सेठानी की ईर्ष्या की शिकार होती है। महावीर स्वामी उनके हाथ से दान लेकर उसे कृतार्थ करते हैं। सेठ उसे सम्मान सहित मुक्त कर देते हैं किन्तु उसका अंततः संन्यासिनी बनना अजीब लगता है। कथा मजबूत स्थापत्य पर खड़ी है।

युद्‌ध की समस्या पर 'युद्‌ध का अन्त' कविता नागार्जुन ने लिखी है, जो विषय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है किन्तु संस्कृतनिष्ठ भाषा होने के कारण संवेदनहीन हो गई है। बड़े ठण्ढे अंदाज में कवि ने इस कविता को लिखा है।यह कविता मुक्त छन्द में है।

'कपिलवस्तु में' कविता बुद्‌ध के लौट आने के प्रसंग पर है इसमें यशोधरा के करुण चित्रण में कवि ने पाठकों को झकझोर दिया है। निश्चय ही कवि यशोधरा के पक्ष में है जो एक पुरुष के त्याग देने पर दयनीय स्थिति में पहुँच जाती है। इसी तरह 'भिक्षुणी' कविता में भिक्षुणी एक ऐसी संन्यासिनी है जिसे सहज जीवन पसंद है। एक सामान्य नारी की इच्छा यहाँ इतनी बलवती हो गई है कि कवि ने बुद्‌ध पर भी व्यंग्य किया है। स्त्री का जीवन प्रेम का अभिलाषी होता है, उसे पति के प्यार और शिशु के वात्सल्य की आवश्यकता होती है, वही उसका स्वाभाविक जीवन है क्योंकि ईश्वर ने उसे सृष्टि का मूल बनाया है। संन्यास उसकी प्रकृति के विरूद्‌ध है, कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से इस प्रश्न को स्त्री के माध्यम से ही उठाया है। बात-चीत शैली में कथा के मजबूत ढाँचे के साथ कविता अच्छी बन पड़ी है।

'राम और लक्ष्मण' कविता किसी कविता की टूटी कड़ी लगती है राम के द्‌वारा कवि ने देश भक्ति को दिखाया है। जननी और जन्मभूमि ऐसे ही प्रवास में याद आती हैं। जन्मस्थान के प्रति इस प्यार को कवि ने सुन्दर ढंग से इस कविता में रखा है। यह कविता भी छंद में बंधी है और स्थापत्य इसका मजबूत है।

कवि शोषण का विरोधी है, प्राचीन काल में नारियों पर हुए शोषण को कवि कथा के माध्यम से उठा कर कविता रचता है और जहाँ तक संभव होता है उसका विरोध करता है। 'पाषाणी' ऐसी ही कविता है। अहल्या के शापग्रस्त होने की कथा काफी विख्यात है उसी प्रसंग को अत्यंत मार्मिक ढंग से कवि ने इस कविता में उठाया है। अहल्या और राम का संवाद बड़ा महत्त्वपूर्ण है जहाँ वह राम से कहती है कि कभी स्त्री पर अत्याचार न करना और मुझे भूल न जाना तब राम शपथ खाते हैं। राम ने बहुत जगहों पर मर्यादा का पालन किया, अपना पुरुषोत्तम रूप प्रस्तुत किया किन्तु क्या उन्होंने भी सीता का त्याग नहीं किया? लेकिन कवि कथा को इतनी दूर नहीं खींचता है, वह अहल्या प्रसंग में राम की सरहानीय भूमिका को प्रस्तुत कर कविता समाप्त कर देता है। कवि को राम का यही रूप पसंद है।

इस संग्रह की अन्तिम कविता 'रत्नगर्भ' है जो बख्तियार खिलजी के नालन्दा पर आक्रमण की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। इतना सुन्दर और प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिया गया और उसका विरोध भी नहीं हुआ। यह हमारे लिए बड़े शर्म की बात है। भारत के लोग अपने प्रतिष्ठित प्रतिष्ठानों की रक्षा में भी सक्षम नहीं थे, उन्होंने अपनी जान बचाने के लिए इतने बड़े विश्वविद्यालय का साथ नहीं दिया और उसे छोड़ कर भाग खड़े हुए, ऐसे नपुंसक लोगों को कवि धिक्कारते हैं। जिस कौम में आत्मरक्षा का भाव नहीं होता वह नष्ट हो जाती है। बिहार ही नहीं भारत के इस ज्ञान के धरोहर का हम आज तक जीर्णोद्धार नहीं कर सके, यह हमारे पराजय का प्रमाण है। कवि ने कहा कुछ नहीं लेकिन जिस अंदाज में कथा को प्रस्तुत किया है वह बहुत कुछ कहती है। नागार्जुन की कम कविताएँ ऐसी हैं जहाँ संकेत है। स्थापत्य की दृष्टि से ये कविताएँ अपना प्रतिमान स्वयं हैं।

नागार्जुन हर तरह की कविता लिखते रहे। दो-चार पंक्तियों से लेकर लम्बी कविताओं तक की रचना उन्होंने बड़ी सहजता से की है। मन में कोई आवेग उठा उसे शब्दों में कैद कर लिया, कोई बात लम्बी है तो लम्बी कविता बनी, कोई लघु है तो लघु कविता बनी। उनकी अधिकांश कविताएँ 1, 2, 3, पृष्ठों तक सीमित हैं किन्तु कुछ कविताएँ लम्बी भी हैं जो 6 से 10 पृष्ठों तक फैली हैं।

(ख) लम्बी कविताएँ

लम्बी कविताओं का ढाँचा छंदोबद्ध भी है और मुक्तछंद का भी। 'पाषाणी', 'चंदना' और 'भूमिजा' छंदोबद्ध कविताएँ हैं जबकि 'जयति जयति जय सर्वमंगला' एवं 'नेवला' मुक्तछंद में है। 'हरिजन गाथा' कहीं-कहीं मुक्तछंद में है कहीं-कहीं छंदोबद्ध। यह इसलिए कि नागार्जुन ने इसे कई दिनों में लिखा है। लम्बी कविताएँ वे कम लिखते हैं किन्तु जितनी लम्बी कविताएँ हैं वे महत्त्वपूर्ण हैं। उसमें कवि ने किसी न किसी बड़े मुद्दे को उठाया हैं सिर्फ 'नेवला' अपवाद है। किन्तु 'नेवला' अभिधा में उत्तम काव्य का अच्छा उदाहरण है। इससे यह पता चलता है कि केवल वर्णननात्मकता में भी इतनी सुन्दर कविता लिखी जा सकती है, वह भी 'नेवला' जैसे जीव पर। नेवला की सजीव क्रीड़ा के चित्रण में कवि ने जिस वात्सल्य और आत्मीयता का पुट डाला है, वही वर्णन को सशक्त बनाता है। यह दुनिया कितनी रस भरी है, रंजक है, आनन्ददायी है यह कवि के इस वर्णन से ज्ञात होता है। कवि की प्रतिभा ने इस कविता में जो 'रनिंग कमेंट्री' जैसी जिज्ञासा को जन्म दिया है, वह अद्भुत है।

'जाति गौरव गंगादत्त' लम्बी कविता है। इसमें तुक का ख्याल कवि ने सदैव रखा है। वाक्य छोटे-छोटे हैं किन्तु कथा के कारण कविता लम्बी हो गई है। 'जयति जयति जय सर्वमंगला' कविता मुक्त छंद में लिखी गई है। कवि के मन में, जीवन में जो कुछ है वह उसमें उतरा है, कहीं अपना संघर्ष है कहीं पूरे देश एवं गरीब लोगों की चिन्ता। बीच-बीच में तुक मिलाया गया है लेकिन सर्वत्र नहीं। कवि सीधे-सीधे भी बहुत सी बात कविता में कह गया है। नागार्जुन की इस कविता को देखकर लगता है कि उन्हें शिल्प की कोई चिन्ता नहीं जो कुछ वे कहना चाहते हैं बिना आडम्बर और आवरण के कह जाते हैं। या कह सकते हैं कि जीवन के कटु अनुभव बेपर्द होकर नग्न रूप में यहाँ आ गए हैं कवि ने उसे सँवारने के लिए कुछ नहीं किया। इस कविता का स्थापत्य एकदम सपाट, यथार्थमय और वक्तव्यपूर्ण है। हाँ! इसमें नाटकीयता

अवश्य है। सहज व्यक्तित्व की तरह ही ये कविताएँ स्पष्ट हैं।

'नदियाँ बदला-ले ही लेंगी' कविता भी लम्बी कविता है किन्तु इसका स्थापत्य मजबूत है। यह छंदों में अच्छी तरह बांधी गई है। कवि ने बड़ी कुशलता से, संयम से इसे भावों के साथ बुना है। राजनीति पर लिखी गई इस कविता में इंदिरा गाँधी पर टिप्पणी की गई है। लय-ताल-तुक की दृष्टि से भी यह कविता सुगठित है।

'फूलन कथा' शीर्षक से एक कविता है मुक्तछंद में। कवि ने बड़े सहज ढंग से फूलन देवी के जीवन के एक प्रसंग को कविता का विषय बनाया है। नई कविता की सहज सम्प्रेषणीयता इस कविता में है। साधारण होते हुए भी यह कविता संवेदना के स्तर पर अच्छी बन पड़ी है। इसमें 'घटना' एवं 'वर्णन' का अच्छा प्रस्तुतिकरण हुआ है।

(ग) मझोली कविताएँ

नागार्जुन की अधिकांश कविताएँ मध्यम आकार की हैं अर्थात् एक पृष्ठ से लेकर तीन-चार पृष्ठों तक की। ये छंदोबद्‌ध भी हैं और मुक्त छंद में भी। कवि ने कथ्य और तथ्य के अनुरूप इसे शिल्प में ढाला है। ये कविताएँ अच्छी भी हैं और साधारण भी।

(घ) छोटी कविताएँ

कुछ कविताएँ छोटी हैं। ये कविताएँ 4-6 पंक्तियों से 8-10, 10-12 पंक्तियों तक हैं। अपनी अनुभूतियों, विचारों, भावों को कवि ने इन लधु कविताओं में बखूबी अभिव्यक्त किया है। इन कविताओं को देख कर लगता है कि कवि को बात कहने की हड़बड़ी नहीं है। वह कम से कम शब्दों में अपनी बात पूरी कर लेता है और सशक्त रूप में लिखना उसे पसन्द है। अनावश्यक बात को लम्बा करना कवि को अच्छा नहीं लगता। उनकी कई सशक्त कविताएँ इसी स्थापत्य में लिखी गई हैं, ये छन्दोबद्‌ध भी हैं और मुक्तछन्द में भी! 'अकाल और उसके बाद' जैसी लधु कविता कवि की प्रतिभा का प्रमाण ही है। इतनी छोटी किन्तु इतनी महत्त्वपूर्ण कविता हिन्दी साहित्य में कम है। छोटी कविताएँ आकार में ही छोटी हैं न वे किसी तरह से कमजोर हैं और न किसी तरह से महत्त्वहीन।

डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्‌ट के शब्दों में कहें तो—**"नागार्जुन शिल्पवादी कवि नहीं हैं, किन्तु उनका शिल्प-विधान ठोस है।"**[1]

---

1. डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्‌ट, नागार्जुन : जीवन और साहित्य, पृ. सं.-114

कुछ महत्त्वपूर्ण कविताओं का स्थापत्य

पृष्ठ संख्या	कविताओं की संख्या	छंदोबद्ध	मुक्त छंद	मिश्रित/तुकबंदी
3	12	(i) बादल को धिरते देखा है।	(i) मनुष्य हूँ (ii) ओ जन-मन के सजग चितरे (iii) अच्छा, अब अगर आप.. (iv) एक क्रांतिकारी (v) इतना भी क्या कम है प्यारे (vi) हमारा पगलवा (vii) चंदन (viii) अनिरुद्ध बोलता है (ix) और फिर दिखाई नहीं दी (x) मेरी बहन हो न आप	(i) चना जोर गरम..
4	09	(i) अब तो बंद करो हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन! (ii) कब होगी इनकी दीवाली	(i) तालाब की मछलियाँ (ii) वह कौन था ? (iii) अमलेन्दु एम.एल.ए. (iv) दरख्तों की सघन बगीची में (v) बड़ी फिकर है हमें तुम्हारी (vi) शपथ	(i) विजयी के वंशधर
5	12	(i) भारतेंदु (ii) सात नवम्बर (iii) दोन-वोल्गा, जमुना-गंगा आज (iv) पुरानी जूतियो का कोरस (v) अन्न पचीसी (vi) देवी, तुम तो काले धन की बैसाखी पर टिकी हुई हो।	(i) रत्नगर्भ (ii) युद्ध का अंत (iii) बंधु डॉ. जगन्नाथन् (iv) छोटी मछली..बड़ी मछली (v) मध्य रात्रि में	(i) बाढ़: '67- पटना
6	02		(i) राम और लक्ष्मण (ii) फूलन-कथा	
7	02	(i) नदियाँ बदला ले ही लेंगी	(i) पाषाणी	
8	02		(i) जाति गौरव गंगदत्त (ii) नेवला	
9	01		(i) जयति जयति जय सर्वमंगला	
10	03		(i) चंदना	(i) हरिजन गाथा (ii) भूमिजा

2. विविध शैलियाँ : बदलती संवेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति

नागार्जुन की कविताओं की शैली कथ्य, तथ्य और संवेदना के अनुरूप बदलती रही है। एक ही विषय पर लिखी गई कविता भी शैली के बदलाव के कारण नई लगती है। इसमें कवि की कथन भंगिमा और शब्दों की कारीगरी बदली होती है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ पाठकों की रुचि हमेशा बनाए रखती हैं।

नागार्जुन ने विविध शैलियों में कविताएँ लिखी हैं। जहाँ वे पुरानी शैलियों का अपने ढंग से उपयोग करते हैं, वहीं नई शैलियों को जन्म भी देते हैं। इस मामले में वे परम्परा का पोषण भी करते हैं और उसका विकास भी। कबीर दास की प्रश्न शैली, अमीर खुसरो की मुकरी शैली, नजीर अकबराबादी की सहज शैली, भारतेन्दु की लोक शैली एवं निराला की व्यंग्य शैली का सम्मिश्रण नागार्जुन में एक साथ देखा जा सकता है लेकिन नागार्जुन उनकी नकल नहीं करते उसका कलात्मक सृजन करते हैं, उनमें नागार्जुन का व्यक्तित्व भी कहीं न कहीं रहता है।

लोक में प्रचलित शैलियों का सर्जनात्मक उपयोग नागार्जुन अच्छी तरह करते हैं। वे चनाजोर गरमवाली शैली, भजन शैली, मंत्र शैली, वंदना शैली, बुझौवल शैली एवं गीत-कोरस शैली का उपयोग भी साहित्यक ढंग से करते हैं और आम जनता में कविता को लोकप्रिय बनाने का प्रयास करते हैं। कविता आत्मकेन्द्रित एकान्त साहित्यक कर्म न होकर सामाजिक कर्म बन जाती है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में नागार्जुन को छोड़कर शायद ही कोई ऐसा कवि हो जो सीधे जनता से जुड़कर काव्य-कर्म करता हो और हज़ारों-लाखों लोगों के सामने काव्य-पाठ करता हो। ये शैलियाँ लोक में प्रचलित भी हैं जिसका काव्य में पुनर्सृजन कर कवि उस लोकप्रियता का फायदा उठाया है।

यहाँ हम उनकी कविताओं की विविध शैलियों का संक्षेप में विवेचन करेंगे जो इस प्रकार हैं–

(क)	मंत्र शैली	(ख)	वंदना शैली	(ग)	भजन शैली
(घ)	जय जयकार शैली	(ङ)	अभिनन्दन शैली	(च)	प्रशंसा शैली
(छ)	एकालाप शैली	(ज)	वक्तव्य शैली	(झ)	सम्बोधन शैली
(ञ)	संवाद शैली	(ट)	पहेली या बुझौवल शैली	(ठ)	उलटबाँसी शैली
(ड)	प्रश्न शैली	(ढ)	सहज शैली	(ण)	कथा शैली
(त)	नाटकीय शैली	(थ)	स्केच शैली	(द)	लोकगीत शैली
(ध)	चनाजोर गरम शैली	(न)	'मैं' शैली	(प)	शिकायत शैली
(फ)	सहानुभूति शैली	(ब)	विलाप शैली	(भ)	हरगंगे शैली
(म)	मुकरी शैली				

(क) मंत्र शैली

मंत्र प्राचीन भारत का साहित्यिक-सांस्कृतिक-धार्मिक भावाभिव्यक्ति का काव्य-रूप है। किसी भी देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए संस्कृत के विद्वानों ने मंत्रों को बनाया। मंत्रों के शुद्ध जाप से देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का बड़ा महत्त्व था आज भी यह हिंदू धर्म की आराधना पद्धति का अभिन्न अंग है।

इसका सर्जनात्मक उपयोग कवि नागार्जुन ने 'मंत्र कविता' में किया है। इस काव्य रूप के माध्यम से एक ओर कवि ने भारतीय मानस को झकझोरने का कार्य किया है तो दूसरी ओर बहुत सी चीजों को बेतरतीब ढंग से एक कविता में प्रस्तुत करने की छूट भी ली है। कविता एक निश्चित क्रम में नहीं है वह कुछ-कुछ पंक्तियों में एक -एक भाव को, व्यंग्य को, विचार को वहन करती है और फिर दूसरी ओर बढ़ जाती है, जैसे विभिन्न चीजों को छूती हुई कोई एक चीज हो । हाँ उनमें जिन चीजों को छूआ गया है उसके चयन में राजनीति, भ्रष्टाचार और हिंसा की तस्वीर अधिक स्पष्ट है और उनके बीच एक तारतम्यता भी है। बीच-बीच से कुछ पंक्तियों को दे रहा हूँ जो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं–

"ओं नारे और नारे और नारे और नारे
*** * * * * ***

ओं क्रांतिः क्रांतिः क्रांतिः सर्वग्य क्रांतिः
*** * * * * ***

ओं दलों में एक दल अपना दल, ओं
*** * * * * ***

ओं गद्दी पर आजन्म बज्रासन
*** * * * ***

ओ अपोजिशन के मुंड बनें तेरे गले का हार
*** * * * * ***

ओं हम चबाएँगे तिलक और गाँधी की टांग
*** * * * * ***

ओं हमेशा हमेशा हमेशा करेगा राज मेरा पोता
*** * * * * ***

ओं बंदूक का टोटा, पिस्तौल की नली
*** * * * * ***

ओं इसी पेट के अंदर समा जाए सर्वहारा "[1]

(ख) वंदना शैली

वंदना करने की परम्परा भारत में काफी पुरानी है। कवि ने इस शैली का आधुनिक ढंग से उपयोग किया है। उन्होंने ईश्वर वन्दना शैली को 'जन-वन्दना' और 'देश-वन्दना' के लिए प्रयोग किया । यह परम्परा का आधुनिक प्रयोग हुआ। उनकी 'युगधारा' की पहली कविता इसी तरह की है-जहाँ कवि जनता की वन्दना कर रहा है-

"हे कोटिशीर्ष हे काटिबाहु हे कोटिचरण।
युग की लक्ष्मी भव की विभूति कर रहीं तुम्हारा स्वयं वरण
तुम महिमामंडित परंपराओं के वाहन / तुम साधरण, तुम निर्विशेष

---

1. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-153-155*

निज जटा जाल में विद्युत की गतिविधि समेट
तुम सर्वग्रासी हिरण्यकशिपु का फाड़-फाड़ कर विकट पेट
विज्ञान-कला-संस्कृति के शिशु प्रह्लादों को / दे रहे निरन्तर अभयदान !!"[1]

इसी तरह की एक और कविता है-'भारत माता'। कवि ने अपने देश की जय जयकार कर उसकी वन्दना की है–

"जय जय जय हे भारतमाता ! / नभनिवासिनी जलनिवासिनी
हरित-भरित भूतल निवासिनी / गिरि मरु-पारावारवासिनी
नील-निविड़कांतारवासिनी / नगरवासिनी ग्रामवासिनी
अमल-धवल हिमधामवासिनी / जय जय जय हे भारतमाता!"[2]

इस तरह की और भी कविताएँ हैं जिनकी फेहरिस्त देना बात को अनावश्यक बढ़ाना होगा। संक्षेप में इतना ही कहना उचित है कि कवि ने अपनी कई कविताओं में इस शैली का सर्जनात्मक उपयोग किया है और सफल हुए हैं।

(ग)भजन शैली

नागार्जुन कथ्य को कलात्मक रूप देने में माहिर हैं। भजन की पैरोडी लिखकर एक ओर जहाँ उन्होंने इस शैली का उपयोग किया है वहीं इस शैली के परम्परागत रूप को भी तोड़ा है। भजन को व्यंग्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। गाँधी जी का प्रिय भजन- 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे' की पैरोडी कवि ने लिखी- 'कांग्रेस जन तो तेणें कहिए...'। युग बदलने के साथ जब मूल्यों का पतन होता है तो कवि को पुराने हथियार का नया प्रयोग करना पड़ता है वही कवि ने यहाँ किया है, व्यंग्य लाजवाब है–

"कांग्रेस जन तो तेणें कहिए जे पीर आपनी जाणे रे
पर दुःख में अपना सुख साधे, दया भाव न आणे रे
तीन भुवन मां ठगे सभी को, शरम ना राखे केनी रे
टोपी-कुर्ता-धोती खद्दर, धन-धन जननी तेनी रे
*** * * * * * ***
जैसे तैसे वोट बटोरे, पिछली कीर्ति बखाणै रे ?
बड़े-बड़े सेठन के हितमाँ, अपणा हित पहचाणे रे
भूखे रखि-रखि लाख जनन को, हौले-हौले मारे रे
कांग्रेस जन तो तेणे कहिए... "[3]

एक-एक पंक्ति में सत्य का जो व्यंग्य उभरा है वह बेजोड़ है। 1951 ई. में लिखी यह पैरोडी नकल में भी असल और शब्दों की कारीगरी का अच्छा उदाहरण है। कांग्रेसी चरित्र को जैसे इतने स्पष्ट रूप से इसमें दिखाया गया है वह अद्‌भुत है। सच बोलने का साहस जिस कवि में होगा वही ऐसी खरी-खरी सुना सकता है।

(घ) जय जयकार शैली

कभी-कभी प्रशंसा का स्तर इतना ऊँचा उठ जाता है कि जय-जयकार तक पहुँच जाता है, लगता है, कवि जय हो, जय हो, कह रहे हैं।

---

1. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-09
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-70
3. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-64

इस शैली में कवि ने व्यंग्य भी किया है। इन्दिरा गाँधी पर व्यंग्य करते हुए कवि ने एक कविता लिखी है–'इसके लेखे संसद-फंसद सब फिजूल है।' इस कविता में वे अंत में जयजयकार करते हुए व्यंग्य करते हैं–

"जय हो, जय हो, हिटलर की नानी की जय हो !
जय हो, जय हो, बाघों की रानी की जय हो !
जय हो, जय हो, हिटलर की नानी की जय हो !"[1]

(ङ)अभिनन्दन शैली

नागार्जुन ने कुछ कविताएँ अभिनन्दन शैली में भी लिखी हैं। 'चौधरी राजकमल' कविता में वे अभिनन्दन वाली भाषा-शैली का प्रयोग करते हुए राजकमल चौधरी का गुण-गान करते हैं। कवि लिखते हैं–

''बाहर छलनामय, भीतर-भीतर थे निश्छल
तुम तो थे अद्‌भुत व्यक्ति, चौधरी राजकमल।
इस-उस पीढ़ी के लिए विरोधाभास प्रबल
तुम चर्चाओं के केन्द्र बिन्दु, तुम नित्य नवल''[2]

(च) प्रशंसा शैली

नागार्जुन सिर्फ व्यंग्य करने में ही उस्ताद नहीं हैं, वे मुक्त कंठ से प्रशंसा भी करना जानते हैं। भारतेन्दु, प्रेमचन्द और निराला का प्रसंग आते ही वे तारीफ करने लगते हैं। 'आए कोई तुमसे सीखे.....' कविता प्रशंसा शैली का अच्छा उदाहरण है जिसमें निराला के बारे में कवि ने लिखा है–

''तुम कड़ी साधना में दधीचि को जीत चुके
कोई आए तुमसे सीखे
वह द्वापर वाली शरशय्या की चुभन आज
आए कोई तुमसे सीखे
युग-युग का हालाहल पीना
आए कोई तुमसे सीखे, यह रक्तदान
आए कोई तुमसे सीखे यह स्वाभिमान ।"[3]

कई कविताओं में उनकी इस शैली को देखा जा सकता है। जनता की वन्दना करने के क्रम में उन्होंने जनता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है **'जन-वन्दना'** (युगधारा, पृ. सं. 9-11) कविता में। ऐसी और भी कविताएँ है उनका विवेचन अनावश्यक विस्तार ही होगा।

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-26*
2. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-142*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें - पृ. सं.-09*

(छ) एकालाप शैली

एक कविता में नागार्जुन एकालाप करते जान पड़ते हैं क्योंकि वहाँ वार्तालाप का अभाव है। सुनने वाला वहाँ मौन धारण किए हुए है, कवि का स्वगत कथन एक तरफा है–

"मैंने तुम्हें / इत्ता-इत्ता सा पूछा / अब एक आध बात
तुम भी तो पूछ लो / मैंने तुम से / ढेर-ढेर सा जानना चाहा
अब एक-आध बात / तुम भी तो मुझसे जानना चाहो"[1]

(ज) वक्तव्य शैली

नागार्जुन ने कुछ कविताएँ इस शैली में लिखी हैं, वे विश्वास और प्रतिबद्धता के साथ अपनी पक्षधरता घोषित करते हैं। 'प्रतिबद्ध हूँ' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-57-11) एंव 'प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है' (हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-11) कविता इसी तरह की है। प्रतिबद्ध हूँ तो मशहूर कविता है, पहले भी उद्धृत किया गया है अतः दूसरी कविता उद्धृत कर रहा हूँ –

"सभी रसों को गला-गलाकर / अभिनव द्रव तैयार करूँगा
महासिद्ध मैं, मैं नागार्जुन / अष्ट धातुओं के चूरे की छाई में मैं फूँक भरूँगा
देखोगे, सौ बार मरुँगा / देखोगे, सौ बार जियूँगा
हिंसा मुझसे थर्राएगी / मैं तो उसका खून पियूँगा
प्रतिहिंसा ही स्थायिभाव है मेरे रवि का
जन-जन में जो ऊर्जा भर दे, मैं उद्गाता हूँ उस रवि का"[2]

(झ) सम्बोधन शैली

कुछ कविताएँ नागार्जुन ने किसी को सम्बोधित करके लिखी हैं, उसमें इस शैली को सहज ही देखा जा सकता है! युवा पीढ़ी को सम्बोधित करते हुए कवि ने एक कविता लिखी है–

"तुम किशोर / तुम तरुण / तुम्हारी अगवानी में
खुरच रहे हम राजपथों की काई फिसलन
खोद रहे जहरीली घासें / पगडंडियाँ निकाल रहे हैं
*** * * * * * ***
आओ, आगे आओ, अपना दाय भाग लो
अपने स्वप्नों को पूरा करने की खातिर तुम्हें नहीं तो और किसे हम देखें बोलो!"[3]
और भी कई कविताओं में कवि ने सम्बोधन शैली का अच्छा उपयोग किया है।

(ञ) संवाद शैली

नागार्जुन की अधिकांश कविताएँ संवादधर्मी हैं। वह पाठकों से संवाद करती हैं हालाँकि यह सिर्फ कला के स्तर पर है। उनकी भाषा में दो पात्रों के बीच संवाद मौजूद है। यदि पात्र नहीं है तो कवि और

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-22*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-11*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-29-30*

पाठक है। नागार्जुन ने स्वीकार भी किया है- **"कविता एक सार्थक संवाद है।"**[1]

इस तरह की कई कविताओं के नाम दिए जा सकते हैं परन्तु कुछ का ही नाम देना उचित है–

(1) रवि-ठाकुर - युगधारा, पृ. सं.-12
(2) पक्षधर - युगधारा, पृ. सं.-73
(3) प्रेत का बयान - युगधारा, पृ. सं.-87
(4) करने आए हैं चहलकदमी - प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-48
(5) बाल-बाल बचा हूँ मैं तो - खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.- 95
(6) तुमने कहा था - तुमने कहा था, पृ. सं.-11

नागार्जुन अमूर्त में कविता नहीं लिखते। उनके सामने कोई न कोई अवश्य होता है इसलिए उनकी भाषा स्पष्ट और सीधी होती है। वे सीधे-सीधे अपनी बात सम्प्रेषित करते हैं। 'पक्षधर' कविता को देखा जा सकता है पंत जी से सीधे कवि का संवाद कितना स्पष्ट और खरा है–

"चाहते हो - / अगर तुम निर्विघ्न होकर / शान्ति पूर्वक
शिल्प -संस्कृति कला का, साहित्य का निर्माण करना
*** * * * * * ***

तो उठो / मन और तन की समूची ताकत लगा कर
विघ्न-बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, ढाह दो।
*** * * * * * * ***

अजी आओ - / इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत,
कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो ....
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा ....
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो
शीर्ण संस्कृति को अगर सप्राण करना चाहते हो ।"[2]

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने उनकी इस प्रवृत्ति का ठीक ही उल्लेख किया है -**"नागार्जुन की टिप्पणी तीसरे दर्जे में सफर कर रहे अशिक्षित ग्रामीणों के तेवर में होती है। जो दिखायी पड़ रहा है और हमें-जैसा दिखाई पड़ रहा है उसे अपनी भाषा के मुहावरे में बोलना। इसलिए नागार्जुन की कविताओं में वक्तृता का अनवरूद्ध प्रवाह नहीं दार्तालाप का आरोह-अवरोह, फैलाव-संकोचन मिलता है।"**[3]

(ट) पहेली या बुझौवल शैली

अमीर खुसरो हिन्दी साहित्य में पहेली लिखने के लिए विख्यात हैं, यह लोक अभिव्यक्ति शिल्प है। आज भी बच्चे एक-दूसरे के ज्ञान की जाँच के लिए बुझौवल पूछते हैं। नागार्जुन ने इसी शैली में कविताएँ लिखीं हैं लेकिन यह मुक्तछंद में होने के कारण सिर्फ प्रयोग तक ही सीमित रह गयी लोकप्रिय नहीं हो सकी। अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन कश्मीर समस्या के कारण भारत-पाकिस्तान की दौड़ लगाते रहे जिस पर व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी करते हुए कवि ने पहेली के माध्यम से लिखा है–

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-144*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-73-74*
3. *नामवर सिंह (सम्पादक), आलोचना, जुलाई सितम्बर-1987,वर्ष-36, अंक-82, पृ. सं.-74*

"दौड़ रहा भगत / तमाशा देख रहा टुकुर-टुकुर जगत
दौड़ रहा भगत / मन्दिर से मस्जिद / मस्जिद से मन्दिर
पुनः पुनः, फिर-फिर / मन्दिर से मस्जिद, मस्जिद से मन्दिर
आ रहा, जा रहा, दौड़ लगा रहा भगत
तमाशा देख रहा सारा ही जगत / बता दूँ नाम?
नहीं तुम ही बताओ ? / विकट नहीं, बिल्कुल सरल है पहेली
एक ही शाह मगर दो ठो हवेली / बताओ तो जानूँ!"[1]

(ठ) उलटबाँसी शैली

कुछ कविताएँ कवि ने उलटबाँसी अंदाज में लिखी हैं। पूरी कविता नहीं किन्तु कविता का एक भाग इस शैली में लिखा हुआ है जिसमें अपनी बात को उल्टे ढंग से रखा गया है, वहाँ प्रश्न इस ढंग से किया गया है कि कविता का व्यंग्य और कथ्य सामने प्रकट होता है। यहाँ कवि कबीर के अंदाज में दिखाई पड़ते हैं हालाँकि उनका अपना व्यक्तित्व सर्वत्र अपने मूल रूप में मौजूद है। 'युगधारा' काव्य-संग्रह में 'प्रेत का बयान' कविता में प्राइमरी स्कूल का मास्टर वेतन पाए बिना भूखमरी से मर गया, यमराज के सामने उसका बयान उलटबाँसी शैली का ही नमूना है–

"प्रेत फिर बोला-/ अचरज की बात है / यकीन नहीं करते आप क्यों मेरा
कीजिए, न कीजिए आप चाहे विश्वास / साक्षी है धरती, साक्षी है आकाश
और और और और और भले / नाना प्रकार की व्यधियाँ हों भारत में
किन्तु-" / उठाकर दोनों बाँह / किट-किट करने लगा जोरों से प्रेत / "-किन्तु
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका / ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज / नाम नहीं लीजिएगा / हमारे समक्ष फिर कभी भूख का"[2]

यह उलटबाँसी कहने की भी यह एक शैली है। भाव के अनुरूप यहाँ शैली का चुनाव करके कवि ने करुणा और व्यंग्य को एक साथ रूपायित किया है।

(ड) प्रश्न शैली

प्रश्न शैली के माध्यम से नागार्जुन ने कई कविताएँ लिखी हैं। कई तरह से कवि प्रश्न पूछता है और पूछने के अंदाज में ही कथ्य की अभिव्यक्ति है। कही व्यंग्य है, कहीं आत्मकथन। हर तरह की भावाभिव्यक्ति के लिए पूछने का अंदाज अलग- अलग है। कुछ कविताएँ हैं

(1) यह कैसे होगा? – सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-14-15
(2) ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा? – सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-58-59
(3) वह कौन था? – तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-1८
(4) देवी लिबर्टी – तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-147
(5) इन्दु जी क्या हुआ आपको – खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-10

इस शैली की बहुत सी कविताएँ हैं उदाहरण के लिए सिर्फ पाँच कविताओं के नाम दिए गए हैं। ये भी अलग-अलग भाव भूमि पर स्थित हैं और अपनी जगह सभी महत्त्वपूर्ण हैं।

'यह कैसे होगा?' कविता में कवि ने अपने आप से प्रश्न किया है कि जब लोग इस दुनिया को बदलने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं तो मैं चुपचाप एक किनारे में कैसे पड़ा रहूँगा। कवि स्वंय से प्रश्न

---

1. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-65*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-88-89*

करता है–

"नई-नई सृष्टि रचने को तत्पर / कोटि-कोटि कर-चरण
देते रहें अहरह स्निग्ध इंगित / और मैं अलस-अकर्मा
पड़ा रहूँ चुपचाप ! / यह कैसे होगा?
यह क्योंकर होगा?"[1]

एक अन्य कविता हम विवेचन के लिए चुनते हैं- 'इन्दु जी क्या हुआ आपको' इसको पढ़कर लगता है कि कबीर की व्यंग्य-पूर्ण प्रश्न-शैली नागार्जुन ने अपना ली है। यह चिढ़ाने वाली शैली है, कबीर ने कहा था–

"पांडे कौन कुमति तोहि लागी ।
तू राम न जपहि अभागी ।।
वेद पुरान पढ़त अस पांढ़े, खर चंदन जैसे भारा।
राम नाम तत समझत नाहीं, अंति पड़ै मुखि छारा ।।"[2]

ठीक इसी अंदाज में और तीखे ढंग से नागार्जुन इन्दिरा गाँधी पर व्यंग्य करते हैं-

"क्या हुआ आपको ? / क्या हुआ आपको? / सत्ता की मस्ती में
भूल गईं बाप को ? / इन्दु जी, इन्दु जी, क्या हुआ आपको ?
बेटे को तार दिया, बोर दिया बाप को!
क्या हुआ आपको ? / क्या हुआ आपको? "[3]

(ढ) सहज शैली

कुछ कविताओं में कवि ने सहज ढंग से कविता को प्रस्तुत किया है। गद्यात्मक अंदाज में ये कविताएँ हैं अपनी सहजता के कारण सुन्दर बन पड़ी हैं। उनमें से एक है– 'हमारे दिल में'। वल्लतोल मलयालम के बड़े कवि थे, उनपर लिखा है–

"व्ल्लतोल हमारे दिल में / विश्वशांति औ' नवरचना के
शुभ-संकल्प जगाते हैं। / गंगा जमुना के पुलिनों पर
अपने केरल के ओणम का / मेला यहाँ लगाते हैं।"[4]

सहजता अपने आप में सुन्दर होती है, वही उसकी कलात्मकता है।

(ण) कथा शैली

कथा आधारित कविताओं का शिल्प उसी तरह का है। कवि काव्य भाषा में कथा कह रहा है, लगता है वे बातचीत कर रहे हैं। डॉ. **विश्वनाथ त्रिपाठी** ने इसे अपने ढंग से लिखा है- **"लेकिन लगता है वह काव्यपाठ नहीं कर रहे हैं, बोल रहे हैं। यह कथ्य की वाचन प्रस्तुति हुई।"[5]**

वर्णन प्रधान होते हुए भी कविता अच्छी है। 'चंन्दना' (युगधारा, पृ. सं.-20-31) इसी तरह की कविता है। लय और तुक के सहारे कविता काव्य होने का प्रमाण देती है, कथा का प्रवाह सर्वत्र है–

"सेठ गया बाहर हो / क्रोधित सेठानी ने / नाई को बुलवा कर
चन्दना के सुन्दर बाल कटवा दिये। / कर दिया बेहोश कोड़े से पीट-पीट

---

1. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-14*
2. *डॉ. माता प्रसाद गुप्त (सम्पादक), कबीर ग्रन्थावली, पृ. सं.-169*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-10*
4. *शोभाकान्त (सम्पादक), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-198*
5. *नामवर सिंह (सम्पादक), आलोचना, जुलाई-सितम्बर-1987, वर्ष-36, अंक-82, पृ. सं.-72*

डाल दिया तलघर में साँकल चढ़ा कर / मना किया दासियों को
लाख पूछने पर कहना न सेठ से / बुरा होगा उसका हाल
खींच लूँगी कच्ची खाल
जिस किसी के मुँह से निकलेगी बात यह खबरदार! "[1]

कथा की नाटकीयता, संवाद योजना एवं पात्रों के कथन से कविता में गति आती है। इस तरह की और कई कविताएँ हैं छोटी-बड़ी, कवि कहानी के अनुसार उसे प्रस्तुत करते हैं कथा वर्णन करने की उनकी कला महत्त्वपूर्ण है जिसपर टिप्पणी करते हुए **डॉ. केदारनाथ सिंह** ने लिखा है—**"मैं वर्णन शब्द पर जोर देना चाहता हूँ, क्योंकि नागार्जुन आमतौर पर अपनी कविता में 'चित्रण' नहीं करते । वे सिर्फ वर्णन करते हैं और वर्णन करने की जो ठेठ भारतीय क्लासिकी परम्परा है-पुराने काव्य, पुराकथाओं या लोक साहित्य में उनका भरपूर इस्तेमाल करते हैं। शिल्प के स्तर पर यह पहला बिन्दु है, जहाँ वे नयी कविता या आधुनिकतावादी कविता या एक हद तक पूरी समकालीन कविता से अलग होते हैं।"[2]**

(त) नाटकीय शैली

नागार्जुन की कुछ कविताएँ अतिनाटकीय शैली में लिखी गई हैं। तालाब की मछलियाँ (तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-41-47) एवं 'नेवला' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-46) इसी तरह की कविताएँ हैं। 'तालाब की मछलियाँ' कविता में मछली एकाएक शोषण के विरुद्ध आवाज उठानेवाली एक पात्र बन जाती है, कविता एकाएक नाटकीय हो उठती है। स्त्री शोषण को व्यक्त करने के लिए कवि ने इस शिल्प को चुना है। दूसरी कविता 'नेवला' है जिसमें वर्णनात्मकता के साथ नाटकीयता मौजूद है। पूरी कविता को कवि ने नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है क्योंकि नाटक की तरह पाठकों को 'आगे क्या होगा?' की उत्सुकता बनी रहती है। कवि का वर्णन इतना जीवंत है कि नेवला का बिम्ब बराबर आँखों के सामने धूमता रहता है- अंत की कुछ पंक्तियाँ इस तरह हैं—

"हमने मान लिया मोतिया थककर लस्त पस्त हो चुका है .....
अखलाक, इस पर रहम करो / अब बेचारे को ज्यादा न सताओ
गोश्त का टुकड़ा इसके हवाले कर दो
नहीं, नहीं अब यह खेल खत्म हुआ .....
फिर यक-ब-यक जमूरे ने ऊँची छलाँग लगा दी
'हाई जम्प' के अपने पिछले रिकार्ड तोड़ गया
मय सुतरी के, गोश्त का वो टुकड़ा उसने झटक लिया था
हमारे लाड़ले अखलाक बाबू सौ फीसदी धोखा खा गए थे
उस रोज उनका पालतू 'सुपुत्र' उनसे 20 निकला आखिर ।"[3]

इस तरह की कई कविताएँ हैं, कहीं-कहीं बीच में नाटकीय शैली का प्रयोग है। कहने का तात्पर्य है कि नागार्जुन ने कविता में नाटकीय शैली का अच्छा प्रयोग किया है।

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-24*
2. *केदारनाथ सिंह, मेरे समय के शब्द, पृ. सं.-55*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी-विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-54*

(थ) स्केच शैली

कुछ कविताएँ नागार्जुन की ऐसी हैं जिनमें उन्होंने रेखाचित्र शैली का उपयोग किया है । लगता है कि कवि गद्य लिख रहे हैं। निराला का स्केच खींचते हुए कवि ने लिखा है–

"बाल झबरे, दृष्टि पैनी, फटी लुंगी, नग्न तन
किन्तु अन्तर्दीप्त था आकाश सा उन्मुक्त मन
उसे मरने दिया हमने, रह गया घुटकर पवन
अब भले ही याद में करते रहें सौ-सौ हवन"[1]

अच्छे गद्यकार होने के कारण ही नागार्जुन इतना सधा हुआ रेखाचित्र खींच पाए हैं। निराला का रूप-रंग साकार कर दिया है। इसी शैली में यह कविता अच्छी लगती है। कवि जिन चित्रों को बिम्ब बनाकर हमारी चेतना में बिठाना चाहते हैं उसी का इतना सजीव स्केच खींचते हैं। एक कविता 'अपंग बुड्ढ़े' का रेखाचित्र बाँधते हुए है–'प्यासी पथराई आँखें' (प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-28)।

(द) लोकगीत शैली

नागार्जुन ने एक-दो कविताओं में लोक प्रचलित गीतों के शिल्प को भी अपनी कविता की शैली बनाया है। इससे मानस में पहले से बसे लोकछंद की अनुगूंज का फायदा मिलता है, कविता लोगों की जुबान पर चढ़ती है और चेतना को झकझोरती है। एक लोकछंद है जो बच्चे गाँव में गाते हैं–

जै कन्हैया लाल की मदना गोपाल की
लड़कन के हाथी-घोड़ा बुढ़वन के पालकी

इसी शैली में नागार्जुन ने एक बड़ी व्यंग्य कविता लिखी है–'आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी'। कविता इस तरह है–

"आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी / यही हुई है राय जवाहर लाल की
रफू करेंगे फटे पुराने जाल की / यही हुई है राय जवाहरलाल की"[2]

नागार्जुन न सिर्फ शास्त्र परम्परा का विकास करते हैं वरन लोक परम्परा का भी विकास करते हैं लेकिन अपने ढंग से, कलात्मक रूप में, सर्जनात्मकता के साथ।

(ध) चना जोर गरम शैली

इसी तरह चना बेचने वाली शैली का उपयोग उन्होंने व्यंग्य साधने में किया। भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' नाटक में 'घासीराम' के माध्यम से चना जोर गरम शैली का उपयोग चना बेचने के लिए किया है जबकि नागार्जुन ने कांग्रेसी लोगों पर व्यंग्य करने के लिए इसका उपयोग किया है, कविता इस तरह है–

"चना जोर गरम प्यारे / मैं लाया मजेदार चना जोर गरम
चना खाएँ कांग्रेसी लोग / कि जिनमें दुनिया भर के रोग
साधते सत्त-अहिंसा-योग / लगाते फिर भी सब कुछ भोग
पहनते हैं खद्दर का चोग / नहीं है देस-कोस का सोग
राज से न हो जाए वियोग / इसी से फैलाते हैं फोग
वोट पाने का है उद्योग / भिड़ाते हैं छल-बल का जोग
वतन को बना दिया बाजार / प्रजा को छोड़ दिया मझधार

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-10*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-57*

चना जोर गरम ....''[1]

भारतेन्दु ने हल्के-फुल्के अंदाज में 'चनाजोर गरम' लिखा है किन्तु नागार्जुन ने अपनी कविता में सोच-समझ कर व्यंग्य वाण छोड़े हैं । बजारू शैली में लिखी गई यह कविता शैली के कारण पठनीय हो गई है।

(न) 'मैं' शैली

नागार्जुन ने आत्मकथात्मक शैली में कई कविताएँ लिखी हैं इनमें कुछ कविताएँ व्यंग्यपूर्ण हैं कुछ अपने ऊपर हैं। 'रहा उनके बीच मैं' कविता 'मैं' शैली में लिखी आत्म अभिव्यक्ति है जिसमें निराला की तरह वे अपने आप को अभिव्यक्त करते दीखते हैं–

''रहा उनके बीच मैं ! / था पतित मैं, नीच मैं
दूर जाकर गिरा, बेबस उड़ा पतझड़ में / धँस गया आकंठ कीचड़ में
सड़ी लाशें मिलीं / उनके मध्य लेटा रहा आँखें मींच मैं
उठा भी तो झाड़ आया नुक्कड़ों पर स्पीच, मैं !
रहा उनके बीच मैं ! / था पतित मैं, नीच मैं!!''[2]

यह समग्र क्रांति में अपनी उपस्थिति के बाद कवि की आत्मस्वीकारोक्ति है, अन्य कविताओं में कवि ने 'विनोबा भावे' के मौन व्रत धारण कर लेने पर व्यंग्य करते हुए लिखा है–

''राजनीति के बारे में अब एक शब्द भी नहीं कहूँगा
तकली मेरे साथ रहेगी, मैं तकली के साथ रहूँगा''[3]

'वो अन्दर से बाँस करेंगे' कविता (तुमने कहा था, पृ. सं.-62) राजनारायण के अक्खड़ और बड़बोले चरित्र को उद्घाटित करता है जिससें स्वंय राजनारायण ('मैं' शैली में) अपनी गाली-गलौज शैली में अपना वक्तव्य देते हैं। यह भी अंततः एक व्यंग्य कविता है। इसमें उनका व्यंग्य रेखाचित्र कवि ने खींचा है।

(प) शिकायत शैली

अपने प्रियजन से ही व्यक्ति शिकायत करता है क्योंकि वह हमारी उम्मीदों के अनुरूप काम नहीं करता, हमारी इच्छा की कसौटी पर खरा नहीं उतरता इसलिए शिकायत मानवीय स्वाभाव है। नागार्जुन को जयप्रकाश नारायण से शिकायत है क्योंकि समग्र क्रांति के एक जनसभा को उन्होंने विद्रोह का कोई आदेश नहीं दिया था। कवि सोचता है कि लोकनायक को इस जन सैलाब का उपयोग क्रांति करने के लिए करना चाहिए लेकिन वह चूक गए। इससे दुखी होकर कवि ने लिखा है–

"दस लाख की भीड़ / उस दिन दिल्ली के माहौल को
कर रही थी कंपित उत्तप्त / .....
दस लाख की भीड़ उस वक्त / तुम्हारा स्पष्ट आदेश चाह रही थी
*** * * * * * * * ***
उस दिन मार्च की छठी तारीख थी / 'लोकनायक' उस रोज वो तुम कौन थे ?
तुम्हारा भोलापन / तुम्हारी 'लोकनीति'

---

1. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-76*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-99*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-73*

'सम्पूर्ण क्रांति' वाले तुम्हारे सोंधे ख्याल / व्यापक जन क्रांति की तुम्हारी अनिच्छा
'सर्वहारा' के प्रति परायेपन के तुम्हारे भाव / अभिनव महाप्रभुओं के प्रति शक्ति सन्तुलन का
तुम्हारा हवाई मूल्य बोध..... / तुम्हारी मसीहाई महत्त्वकांक्षाएँ...
काहिल, आराम पसन्द, संशयशील, डरपोक, कपटी, क्रूर
'भलमानसों' से दिन-रात तुम्हारा घिरा होना
वो सब क्या था आखिर? / समझ नहीं पाया कभी, समझ नहीं पाऊँगा
तरल आवेगों वाला, अति भावुक हृदय धर्मी मैं जनकवि''[1]

(फ) सहानुभूति शैली

भाव के अनुरूप नागार्जुन शैली भी चुनते हैं। लालू साहू अपनी पत्नी की चिता में कूद कर 'सती' हो गया। कवि उसकी भावुकता, उसके प्यार की कद्र करके उसको हार्दिक सहानुभूति देता है हालाँकि इस तरह के आत्मदाह की उन्हें निंदा करनी चाहिए थी किन्तु कवि कानून नहीं बघारता भावात्मक रूप से साथ देता है। भावुकता में कवि की यह कविता सहानुभूति शैली का अनूठा उदाहरण है, खास कर अंतिम कुछ पंक्तियाँ–

''पीछे- / पुलिस वालों ने लालू के अवशेषों को / अपने कब्जे में ले लिया ...
इस प्रकार एक पति उस रोज 'सती' हो गया / और दिवंगत पति (लालू साहू) के नाम
पुलिस वाले केस चलाएँगे... / क्या इस हमदर्द कवि को तथाकथित अभियुक्त के पक्ष में
भावात्मक साक्ष्य देना होगा बाहर जाकर ?''[2]

(ब) विलाप शैली

गाँधी जी की हत्या पर नागार्जुन की भावुकता सतह पर आ जाती है और वे विलाप करते नजर आते हैं। बड़ी सिद्दत के साथ कवि ने आँसू में डुबो कर विलाप करते हुए लिखा है–

''तीन-तीन गोलियाँ, बाप रे / मुँह से कितना खून बहा है
महामौन यह पिता तुम्हारा / रह रह मुझे कुरेद रहा है।
इसे न कोई कविता समझे / यह तो पितृ-वियोग-व्यथा है
श्राद्ध-समय में बहे न आँसू / यह तो बड़ी विचित्र प्रथा है
पर न आज रोके रुक पाती / आँखें मेरी भर-भर आतीं
रोता हूँ लिखता जाता हूँ / कवि को बेकाबू पाता हूँ।
कैसे इस कोरे कागज पर पूरी पीर उतार सकूँगा?''[3]

नागार्जुन की इस कविता को देखकर लगता है कविता आत्मा की सहज अभिव्यक्ति है, भावों का निष्कलुष प्रदर्शन है। इतनी शुद्ध कविता कम होगी जहाँ कवि अपनी पूरी व्यथा के साथ खड़ा है।

(भ) हरगंगे शैली

विनोबा भावे भूदान आंदोलन की विसंगतियों पर कवि ने 'हर गंगे' शैली में व्यंग्य किया है–

''बाँझ गाय बाभन को दान हरगंगे / मन ही मन खुश है जजमान हरगंगे
ऊसर बंजर और श्मशान हरगंगे / संत विनोबा पावैं दान हर गंगे''[4]

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-23-24*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-37*
3. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-46-47*
4. *शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ. सं.-227*

(म) मुकरी शैली

अमीर खुसरो और भारतेन्दु से प्रेरित होकर नागार्जुन ने मुकरियों की भी रचना की है। इन मुकरियों में उन्होंने नेता, वजीर, कांग्रेस, कंट्रोल, जवाहरलाल नेहरू एवं हड़ताली लोगों पर व्यंग्य किया है, सिर्फ 'रूस' की तारीफ की है। ये मुकरियाँ (नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ. सं.-209-210) कलात्मकता एवं प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

भाषा का विराट उत्सव

भाषा ही वह भूमि है। जिसपर साहित्य खड़ा होता है। साहित्यकार की सफलता भाषा के सटीक और अचूक प्रयोग पर ही निर्भर है। भाषा का कलात्मक प्रयोग ही साहित्य को साहित्य बनाता है वर्ना वह इतिहास बनकर रह जाएगा। तथ्य और कथ्य रहने पर भी भाषा की कमजोरी उसे साहित्य में आँगन में प्रवेश नहीं करा पाएगी। नागार्जुन ने भी स्वीकार किया है कि-**"भाषा में सौन्दर्य और व्यंजना तो होनी ही चाहिए।"**[1]

नागार्जुन बहुभाषाविद प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। हालाँकि वे अच्छा गद्य भी लिखते हैं किन्तु काव्य के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा अद्भुत है। शब्दों के सर्जनात्मक उपयोग की उनकी काव्य-प्रतिभा उनके व्यापक भाषा ज्ञान के कारण सोने पे सुहागा का काम करती है। भाषा का ज्ञान उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना भाषा का प्रयोग। राहुल जी भी बहुभाषाविद थे किन्तु कवि के रूप में हम उनको नहीं जानते । नागार्जुन यहीं महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं कि वे बहुभाषाविद भी हैं और कवि भी । कहना चाहिए वे कवि पहले हैं भाषाओं का ज्ञान तो बाद में प्राप्त किया। सबसे बड़ी बात है चार भाषाओं में कविता लिखना और हिन्दी एवं मैथिली का बड़ा कवि होना। आधुनिक हिन्दी साहित्य में नागार्जुन जैसा कवि दिखाई नहीं पड़ता । भाषा का विराट वैभव अपने पूरे सर्जनात्मक सौन्दर्य के साथ नागार्जुन के काव्य में देखा जा सकता है।

हिन्दी के महत्त्वपूर्ण कवि **अरुण कमल** जी की टिप्पणी नागार्जुन की काव्य भाषा के सन्दर्भ में पढ़ने योग्य है–**"फिर भाषा का विराट् उत्सव है। हिन्दी भाषा का विराट् उत्सव। नागार्जुन को पढ़ने का अर्थ है हिन्दी भाषा के वास्तविक जगत् में लौटना, हिन्दी के निजी स्वरूप और संस्कारों से परिचित होना। भाषा के इतने रूप, बोलियों के इतने 'मिक्सचर' उनकी कविताओं में मिलते हैं कि यदि उनके काव्य के अन्य प्रसंगों को छोड़ भी दें, तो सिर्फ अपनी भाषा के लिए वे हमेशा-हमेशा के लिए महत्त्वपूर्ण बने रहेंगे। शब्दों को वे इस तरह फेंटते हैं जैसे ताश के पत्ते। फेंटकर कहीं से काट लिया। उनकी अत्यन्त समसामयिक, क्षण भंगुर सी लगनेवाली कविताओं में भी शब्दों का अपना मज़ा है, रस है।"**[2]

नागार्जुन का भाषा पर असाधारण अधिकार था। वे भाषा के जादूगर थे। किसी तरह की भाषा लिखने में उन्हें कोई परेशानी नहीं होती है चाहे भाषा का शास्त्रीय सुसंस्कृत रूप हो या बोलचाल का भदेस रूप सबसें एक समान स्वाभाविक प्रवाह पाठकों को चमत्कृत कर देता है। इनके पहले सिर्फ तुलसीदास जी एवं निरालाजी की भाषा बहुस्तरीय दिखाई पड़ती है, लेकिन संस्कृत की तत्सम शब्दावली की कलात्मक योजना में नागार्जुन निराला जी से अधिक स्वभाविक जान पड़ते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' की शुरू की 18 पंक्तियों को ध्यान में रख कर 'बादल को घिरते देखा है' पढें तब दोनों की भाषा-साधना का पता चलता है। नागार्जुन अधिक सधे हुए नजर आते हैं। हो सकता है दोनों की विषयवस्तु, भावभूमि अलग-अलग होने के कारण भी यह अंतर हो किन्तु शब्दों का रचाव बसाव कहीं न कहीं कवि की प्रतिभा को प्रदर्शित तो करते ही हैं। शब्दों का सटीक प्रयोग भाषा के चमत्कार के लिए जरूरी है, नागार्जुन ने इस संदर्भ में कहा है **"अच्छी कविता में शब्दों की फिजूलखर्ची और न शब्दों का दो मुँहापन ही होना चाहिए।"**[3] नागार्जुन

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-44*
2. *अरुण कमल, कविता और समय, पृ. सं.-31*
3. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-144*

की काव्य भाषा की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करना आवश्यक है जिससे उनकी भाषिक उपलब्धि को रेखांकित किया जा सके।

(क) शब्द प्रयोग

नागार्जुन हर तरह की शब्दावली के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं; वे बोलचाल की सामान्य शब्दावली से संस्कृत की कठिन शब्दावली तक का उपयोग बड़े स्वाभाविक ढंग से करते हैं। भाव और अभिव्यक्ति के अनुकूल उनकी भाषा है जो सटीक शब्दावली के कारण प्रभावशाली और सम्प्रेषणीय बन गई है। नागार्जुन का काव्य शब्दों का बहुरंगी संसार है। उसमें अपनी भाषा का वैभव पूरे सर्जनात्मक उत्कर्ष के साथ देखा जा सकता है। यह भाषा परम्परा की ऊर्जा से उर्जस्वित और लोक-व्यवहार से परिपुष्ट है। शास्त्र और लोक का उसमें तेज है। डॉ नामवर सिंह ने नार्गार्जुन की काव्य भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—**"तुलसीदास और निराला के बाद कविता में हिन्दी भाषा की विविधता और समृद्धि का ऐसा सर्जनात्मक संयोग नागार्जुन में ही दिखाई पड़ता है।"**[1]

नागार्जुन की कम कविताएँ निर्जीव, निष्प्राण भाषा में हैं। इस भाषा में बोलचाल की भंगिमा मौजूद है कहीं आक्रोश है, कहीं जोश है कहीं व्यंग्य है, कहीं आक्रमण है। कहीं भी वह थकी, हारी, शिथिल और सुस्त नजर नहीं आती।

कवि तेरह भाषाओं के ज्ञाता हैं, और चार भाषाओं के रचनाकार किन्तु कहीं भी भाषा का पाखण्डपूर्ण प्रदर्शन उनका उद्देश्य नहीं है। उन्होंने अपनी भाषा की मूल प्रकृति को पहचान कर उसे और समृद्ध किया है। उनकी काव्य भाषा का व्यक्तित्व उनके व्यक्तित्व की तरह 'ठेठ हिंदुस्तानी' है। इसमें उनके मानस की बनावट को देखा जा सकता है स्वयं नागार्जुन ने इसे माना है- **"अजब संसार है काव्य और कविता का। कवि की काव्य-भाषा में कवि के अंतर्मन की, उसके मिजाज की पहचान हो जाती है।"**[2]

उनकी काव्यभाषा की अनेकरूपता पर डॉ मैनेजर पाण्डेय की टिप्पणी ठीक ही है-**"नागार्जुन की कविता में काव्य भाषा के भी अनेक रूप हैं।"**[3] भाषा के मामले में वे शुद्धतावादी नहीं हैं। संस्कृत की शास्त्रीय शब्दावली से लेकर भदेस भाषा की मिठास, उनकी भाषा को नया रूप देती है। उसमें स्थानीय शब्दों के साथ-साथ विदेशी शब्दों का सहज प्रयोग भी शामिल है। बोलचाल की हिन्दी का सम्पूर्ण स्वरूप नागार्जुन की कविता में सुरक्षित है। इस भाषा में शब्दों की कारीगरी के साथ-साथ बिम्ब, प्रतीक मिथक, अलंकार, मुहावरे, कहावतें तो हैं ही कहीं-कहीं अश्लील शब्द और गाली भी मौजूद है।

नागार्जुन की कई कविताएँ संस्कृत निष्ठ हैं जिनमें 'बादल को घिरते देखा है' और 'रत्नगर्भ' की सभी कविताएँ हैं। 'बादल को घिरते देखा है' कविता पढ़कर ही उनकी भाषा के सौन्दर्य को देखा जा सकता है। शब्द संस्कृत के अवश्य हैं परन्तु सम्प्रेषणीय और भावानुरूप हैं। जहाँ जरुरी है वहीं संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया गया है, अनावश्यक ठूँस-ठाँस नहीं की गई है। शब्द वाक्य में बड़ी सहजता से वह खप गए

---

1. नामवर सिंह (सम्पादक), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. सं.-9

2. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-144

3. डॉ. जयनारायण (सम्पादक), कल के लिए, नागार्जुन अंक -1, अक्टूबर-नवम्बर -1995, पृ. सं.-27

हैं और अपने अर्थ को अभिव्यक्त कर रहे हैं। काव्यभाषा के बारे में नागार्जुन का मत है—**"भाषा गहरी और सम्प्रेषणीय होने के साथ-साथ सजग होनी चाहिए।"**[1] कविता लिखते समय उन्होंने इस बात का पूरा-पूरा ख्याल रहा है। उदाहरण के लिए—

"अमल धवल गिरि के शिखरों पर / बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे / उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम / कमलों पर गिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है।"[2]

इस कविता को देखकर ही जाना जा सकता है कि कवि की प्रतिभा कितनी विलक्षण है। शब्दों को जनना बड़ी बात नहीं है, उसका अचूक और सटीक प्रयोग कर उसे कविता का रूप देना बड़ी बात है, इसी संदर्भ में कहा जा सकता है कि नागार्जुन के शब्दों का प्रयोग संस्कार उत्कृष्ट है। उन्हें शब्दों की तमीज़ है। वे अचूक व्यंग्यकार भी इसलिए बन सके क्योंकि अर्जुन की तरह वे शब्दों के तीर चलाने में सिद्धहस्त थे।

लेकिन 'रत्नगर्भ' संग्रह की संस्कृत निष्ठ भाषा बहुत जगहों पर संवेदनहीन लगती है। भाषा बहुत अधिक हमें झकझोरती नहीं क्योंकि वह पाठकों के हृदय को छूती नहीं। बोलचाल की भाषा अधिकांश कविताओं को मार्मिक बनाती है क्योंकि वह सीधे हृदय से निकलती है और पाठकों को छूती है।

कभी-कभी नागार्जुन कठिन संस्कृत के शब्दों को गढ़ते हैं और कविता में प्रयोग करते हैं, जैसे—

(i) अबालवृद्ध वनिता—जन वन्दना—युगधारा पृ. सं.- 9
(ii) पांडु रोगाक्रान्त-तुम जागी संसार जाये जाग!, युगधारा पृ. सं.-33
(iii) कृमिदष्ट-पाषाणी, युगधारा,पृ. सं. - 37
(iv) स्वेच्छाप्रणोदित-वह कौन था?, तालाब की मछलियाँ पृ. सं. - 03
(v) कुंभोदर-जयति जयति जय सर्वमंगला, तालाब की मछलियाँ पृ. सं.-163
(vi) कुवलयपीड़-अभी-अभी हटी है, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली,पृ. सं. - 184
(vii) विद्युत अभियंत्रित-सरकाऊ सीढ़ियाँ, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-97

लेकिन इस तरह के कई शब्द मिल जाएँगे जहाँ कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। शब्दों को गढ़कर नया रूप देने में नागार्जुन का जोड़ नहीं इस मामले में उन्होंने साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की है। जैसे—

(i) चतुर चचा चिन्तक-आत्मा की बाँसुरी, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली पृ. सं.-24
(ii) किताब 'कुंज' के कुंजीलाल-सौदा, हजार-हजार बाँहोंवाली पृ. सं.-57
(iii) घूम-घुमौआ चेअर-तिकड़म के ताऊ, हजार-हजार बाँहोंवाली पृ. सं.-74,
(iv) शोषित सिंह-स्वगत चिन्तन कांग्रेसी आला कमान का, पुरानी जूतियों का कोरस पृ. सं.-67
(v) अकाल 'सहाय'-जी अकाल सहाय, पुरानी जूतियों का कोरस पृ. सं. -70

नागार्जुन ने खुलकर ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग किया है। वे मिथिलांचल के रहनेवाले थे इसलिए

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं. - 44
2. नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-67

मैथिली भाषा के कई स्थानीय शब्द उनकी कविताओं में आ गए हैं। जिन्हें कवि ने ससम्मान स्थान दिया है, उसे हटाया नहीं। इससे उनका भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण सामने आता है कि जहाँ तक संभव है स्थानीय या क्षेत्रीय शब्दों को हिन्दी में स्थान दें और हिन्दी को समृद्ध करें। भारतीय संविधान ने इसी तरह हिन्दी को विकसित करने का विचार प्रकट किया था। नागार्जुन की कविताओं में आँचलिक शब्दों की भरमार है और वह जरूरी एवं सटीक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुई है उसे हटा कर दूसरे शब्द को नहीं रखा जा सकता क्योंकि इससे उसकी लय, तुक, अर्थ आदि पर प्रभाव पड़ सकता है। स्वयं नागार्जुन ने इस संदर्भ में जो वक्तव्य दिया है वह महत्त्वपूर्ण है। इससे उनकी भाषा नीति का खुलासा होता है—**"भाषा के पीछे जो आंचलिकता का माहौल रहता है, जिसे मैं धरती का माहौल कहता हूँ, इसका बहुत बड़ा महत्त्व होता है। हिन्दी में भी अगर किसानों के लिए, मजूदरों के लिए लिखते हैं तो भाषा को आसान करना पड़ता है, क्योंकि उनको समझाना है, अपनी बात को उन तक पहुँचाना है, उनकी ओर से कहना है। बौद्धिकों के लिए लिखते हैं तो कठिन और बघारी हुई भाषा की 'फ्रीडम' लेते हैं।"**[1]

आँचलिक शब्दों में से कुछ इस प्रकार हैं—

(i) छुच्छी-चन्दना-युगधारा, पृ. सं.-23
(ii) राँड़-चन्दना-युगधारा, पृ. सं.-24
(iii) भुरुगवातारा-तुम जागी संसार जाए जाग, युगधारा, पृ. सं.-33
(iv) खेढ़ी धान-संत विनोबा-युगधारा, पृ. सं.-51
(v) डीह, गाछी, चानी-संत विनोबा, युगधारा, पृ. सं.-51
(vi) जोहोगे-उद्‌बोधन-युगधारा, पृ. सं.-75
(vii) तीत-कवि-युगधारा, पृ. सं.-82
(viii) पन्हाई, कटिया, धरती—युगधारा, पृ. सं.-92
(ix) तीमन-स्वदेशी शासक, युगधारा, पृ. सं. -92
(x) कपच-बजट वार्त्तिक - युगधारा, पृ. सं. - 99
(xi) मछगिद्‌धा-जयति कोरिया देश, युगधारा, पृ. सं.-100
(xii) पूछापेखी-आओ प्रिय आओ, सतंरगे पंखोंवाली, पृ. सं.-16
(xiii) खोंटकर-आओ प्रिय आओ, सतरंगे पंखोंवाली,पृ. सं.-16
(xiv) भकुआ-द्याक्चो खोकोन ओइ जे गाँधी महत्ता, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-14,
(xv) चींथ-चींथ-लुमुम्बा, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-16
(xvi) जहन्नुम में जाए सुसुरी-चीखा आक्रोश अंध! प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं. -23
(xvii) बतकही—घिन तो नहीं आती है?, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-30
(xviii) छिनाल पुरबइया—झुक आए कजरारे मेघ, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-39
(xix) कलमुँही-अब के इस मौसम में, प्यासी पथराई आँखें पृ. सं.-45,
(xx) निगोड़ी -प्लीज़ एक्स्क्यूज मी..., प्यासी पथराई आँखे, पृ. सं. -51
(xxi) सिझा-जयति जयति जय सर्वमंगला, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं. -158
(xxii) टोका -जयति जयति जय सर्वमंगला, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं. -158
(xxiii) डायन-जाने तुम कैसी डायन हो, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं. -25

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-103

(xxiv) कपार - छोटी मछली शहीद हो गई- खिचड़ी विप्लव देख हमने, पृ. सं.-40
(xxv) मय सुतरी—नेवला, खिचड़ी विप्लव देख हमने, पृ. सं.-54
(xxvi) गाली-अच्छा किया उठ गए हो दुष्ट, तुमने कहा था, पृ. सं.-23
(xxvii) निर्लज्ज, बेहया, कठजीव, थेथर-अच्छा किया उठ गए हो दुष्ट, तुमने कहा था, पृ. सं.- 30
(xxviii) दईमारों - रूठ के चली गई बुआ, तुमने कहा था, पृ. सं.-45
(xxix) कातिक-पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं. -12
(xxx) दुद्धी-पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं. -12
(xxxi) बुक्का फाड़-फाड़कर, महाकवि निराला, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-26
(xxxii) मातबर-साथी स्टालिन, हज़ार हज़ार बाँहों वाली, पृ. सं.-37
(xxxiii) कनमा-पूरी आजादी का संकल्प आज दुहराते हैं, हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पृ. सं.-51
(xxxiv) लसका - सौदा, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-58
(xxxv) धेला-सौदा, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-58
(xxxvi) बुढ़ऊ - फिक्र में पड़ गये कामरेड!, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-151
(xxxvii) छुच्छा-डालर रोया बिलख-बिलख कर, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-162
(xxxviii) खटिया-संग तुम्हारे साथ तुम्हारे-आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ.सं. -13
(xxxix) ठीहा- हमारा पगलवा, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं. -54
(xxxx) घुच्ची-इन घुच्ची आँखों में, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं. 52
(xxxxi) गाम-चना जोर गरम, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं. -78

इस तरह के शब्दों की और लम्बी फेहरिस्त दी जा सकती है किन्तु कोई फायदा नहीं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने निःसंकोच ग्रामीण शब्दों को कविता में स्थान दिया। इससे उन्होंने हिन्दी कविता को किताबी शब्दावली से बाहर निकाला और गाँव तक पहुँचाने का काम किया। यह जनकवि होने के कारण भी हुआ और भाषा के प्रयोग का लोकतांत्रिक तरीका अपनाने के कारण भी। लेकिन स्थानीय शब्दों को लाने की भी एक मात्रा है, अधिक स्थानीय शब्दों को लाकर सामान्य पाठकों के लिए कविता को दुरूह बनाने का काम उन्होंने कभी नहीं किया। यहाँ तक कि स्थानीय या ग्रामीण शब्दों के अर्थ 'फुटनोट' में देकर पाठकों के लिए उसे सहज बनाने का प्रयास किया। नागार्जुन ने स्पष्टतः कहा है-"हाँ, भाषा के बारे में यह जरूर मानता हूँ कि हम उसमें अगर अत्यधिक स्थानीय रंग-भर दें तो यह पाठकों पर अत्याचार है। इससे बचना चाहिए। इससे अखिल भारतीय पाठक के लिए बोरियत पैदा हो सकती है।"[1] नागार्जुन की भाषा का यह भदेस शृंगार ही उसकी लोकप्रियता का राज है। उनकी काव्यभाषा में तद्भव और देशज शब्द तो हैं हीं ठेठ देहात में बोले जाने वाले शब्द भी हैं, कवि ने उसी रूप में उसे कविता का शृंगार बनाया है। कुछ शब्द इस तरह हैं—

(1) भभाकर-पूछते हैं विज्ञजन परस्पर, तुमने कहा था, पृ. सं.-73
(2) छछूनर-नोच रहे दहलीज खीझकर, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-33
(3) बमककर-देवी, तुम तो काले धन की वैशाखी पर टिकी हुई हो, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.सं0.-127
(4) बबुनी, चंडी—देवी, तुम तो काले धन की वैशाखी पर टिकी हुई हो, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-127-129
(5) थन-पैने दाँतों वाली-पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-130

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-107*

(6) मुसकी-रचो-रचो मधुर गीतम्, ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-33
(7) टहलने-बुलने-महादैत्य का दुःस्वप्न, इस गुब्बारे की छाया में,पृ. सं.-9
(8) ढुक-इस गुब्बारे की छाया में, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-12
(9) अकबकाकर-एक क्रांतिकारी, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-52

कवि न सिर्फ स्थानीय शब्दों का इस्तेमाल धड़ल्ले से करता है बल्कि विदेश के प्रचलित शब्दों का भी इस्तेमाल करता है, इसमें अंग्रेजी शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है। कवि को लगता है कि बहुत से भावों को अभिव्यक्त करने में ये शब्द सहायक हैं। ये शब्द साधारण जनता (थोड़ी पढ़ी-लिखी जनता) समझ लेती है इसलिए कवि ने इन्हें अपनी कविता में रखा है, जैसे—

1. ब्रेकफास्ट - बरफ पड़ी है, युगधारा, पृ. सं.-63
2. पैरासूट-कवि कोकिल, युगधारा, पृ. सं.-83
3. ओटोमोबाइल, स्विच, ड्राइव-कवि कोकिल, युगधारा, पृ. सं.-83
4. रिफ्यूजियों, मिडिल, बैलेंस - बजट वार्त्तिक-युगधारा, पृ. सं.-99
5. कविता के अधिकांश शब्द-खाली नहीं और खाली, युगधारा, पृ. सं.-104
6. नेल-पालिश, रिस्ट-वाच - जयति नखरंजनी, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-36-37
7. प्लीज एक्सक्यूज मी- प्यासी पथराई आँखें, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-51
8. कई शब्द-आओ रानी हम ढोएँगे पालकी, प्यासी पथराई आँखें,पृ. सं.-58
9. देवि लिबर्टी- देवि लिबर्टी, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-147
10. कई शब्द-बन्धु डॉ जगन्नाथम्, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं. 41-45
11 नेचर-नेवला, खिचड़ी विप्लव देखा, पृ. सं.-52
12. किचन-जी हाँ, सबकी चहेती है, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं-66
13. चुरुट / सिग्रेट-पुलिस आगे बढ़ी, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-118
14. कलक्टर, कमिश्नर, मिनिस्टर-बाढ़-67- पटना, तुमने कहा था, पृ. सं.-42
15. फोर-फिगर-जी हाँ लिख रहा हूँ, तुमने कहा था, पृ. सं.-65
16. माइ डियर - माई डियर दद्दू हमारे, तुमने कहा था, पृ. सं.- 67
17. पोस्ट ग्रेजुएट, डेविएशन-पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.- 14
18. कई शब्द - आत्मा की बाँसुरी, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.- 23
19. कई शब्द -दलबदलू बुजुर्ग, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-142
20. नर्सरी राइम- नर्सरी राइम, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-24-25

अन्य विदेशज शब्दों का भी उन्होंने बहुतेरा प्रयोग किया है। उर्दू, फारसी, अरबी, तुर्की के प्रचलित शब्द स्वभाविक रूप से उनके काव्य में मिल जाएँगे। भाषा की यह सामासिक संस्कृति नागार्जुन की रचनाओं को शक्तिशाली बनाता है। उनके लिए शुद्धतावादी रूप ही अप्रासंगिक है। ऐसी ही हिन्दी आम भारतीय की धरोहर है। कुछ विदेशज शब्द इस प्रकार हैं—

1. गुस्ताखी-कवि कोकिल-युगधारा, पृ. सं.-8
2. मासूम, आहिस्ते, संजीदा-सतरंगे पंखोवाली, पृ. सं.-12
3. तफसील-कछुए ने मारी हाँक गर्दन निकालकर, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-27
4. लिबास- घिन तो नहीं आती है, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-30

5. नफीस, जुकाम-बाढ़ : 67 पटना, तुमने कहा था, पृ. सं.-41
6. हुकूमत - बाढ़-: 67 पटना, तुमने कहा था, पृ.सं.-41
7. मर्जी-मुताबिक -जो जी में आए कहो, तुमने कहा था, पृ. सं.-68
8. मर्जी, माफ़िक - पूरी आजादी का संकल्प हम दुहराते हैं, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-52
9. गुदमा-हमारा पगलवा, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-56
10. आइए हुजूर, - आइए हुजूर, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं. 15

इस तरह के और भी विदेशज शब्द हैं। कहीं-कहीं नागार्जुन ने पाठकों की सुविधा के लिए शब्दों के अर्थ भी फुट नोट में दे दिए हैं। 'गुदमा' जैसे तिब्बती शब्द का उन्होंने नीचे अर्थ दे दिया है। इसी से पता चलता है कि वे पाठकों की सम्प्रेषणीयता का कितना ख्याल रखते हैं।

नागार्जुन कई बार ऐसे शब्दों का भी इस्तेमाल करते हैं जिनका प्रचलन नहीं के बराबर है। कहीं-कहीं पर ऐसे शब्दों का इस्तेमाल नाद सौन्दर्य के लिए करते हैं, ये शब्द हैं—

1. वोम्मारा! वोम्मारा-चीखा आक्रोश गंध, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-23
2. आखंडल-चौधरी राजकमल, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-143
3. पनिहा-वेतन भोगी टहलुआ नहीं हैं-खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-64
4. हाहुत्ती- बाढ़-67-पटना, तुमने कहा था, पृ. सं.-43
5. तुफैल-दिन लदे सिंहासन राय के, तुमने कहा था, पृ. सं.-49
6. पाधा-डिगा न पाया रोहिताश्व का मोह--हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-39
7. संसरणशील-सरकाऊ सीढ़ियाँ-पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-98
8. खरामा खरामा- आइए हुजूर, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-15
9. मेत्तोक् मेत्तोक - मेत्ताक् मेत्तोक्, मेत्तोक्, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.--59,

नागार्जुन नए-नए शब्द गढ़ने में उस्ताद हैं। जरूरत के मुताबिक शब्द गढ़ लेते हैं और उसका सही उपयोग करते हैं। कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

1. टेपित- आँ हाँ, इन्हें ना उतारो, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-52
2. पिकनिकीय यात्रा - उसने मुझसे पूछा-ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-53
3. बुद्धिहत्या- योगिराज अरविंद-हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.- 18

नागार्जुन ने हर तरह के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग किया है चाहे वह अश्लील हो या वर्जित, आम जनता इसका जैसा प्रयोग करती है उसी रूप में कवि ने इसे काव्य में स्थान दिया है—

(1) जूजी - नेवला, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-50
(2) चूतड़-कूल्हे - बाढ़-67, तुमने कहा था, पृ. सं.-43
(3) गू - तेरी खोपड़ी के अन्दर, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-17
(4) झाँट - स्वगतः अपने को संबोधित, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-11

(ख) मुहावरे

विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति में मुहावरों का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण होता है। भाषा को प्रभावशाली उसके मुहावरे बनाते हैं। हिन्दी मुहावरेदार भाषा है यहाँ बहुत सारे साहित्यिक एवं बोलचाल में प्रयुक्त होनेवाले मुहावरे हैं जबकि ग्रामीण मुहावरों का भण्डार भी काफी बड़ा है। नागार्जुन ने कविता में मुहावरों का अच्छा प्रयोग किया है इससे भाषा की पूरी शक्ति का तो प्रकाशन हुआ ही है कविता गद्य की गरिमा से भी अभिभूत हुई है। ये मुहावरे जनता के बीच से उठाए गए हैं। नागार्जुन ने स्वयं कहा है—"और

उसे पकड़ने के लिए हमें जनता के बीच जाना पड़ेगा। मुहावरे, बिम्ब सब लेने होंगे वहाँ से।"[1] कम कवियों ने मुहावरों का प्रयोग इस तरह किया है।

हिन्दी भाषा का सौन्दर्य मुहावरों के सटीक प्रयोग से बढ़ जाता है। नागार्जुन कम से कम शब्दों में सघन अभिव्यक्ति के लिए प्रचलित मुहावरों का बड़ा सुन्दर उपयोग करते हैं, कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं,

'पोल खुल जाना' मुहावरे का सटीक प्रयोग करते हुए उन्होंने लिखा है–

"पोल खुल गयी शासक दल के महामन्त्र की / जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतन्त्र की!"[2]

व्यंग्य को धारदार बनाने के लिए नागार्जुन ने वैसे ही मुहावरों का प्रयोग किया है। मुहावरों के अचूक प्रयोग से कथन और प्रभावशाली होकर उभरा है, इस क्रम में वे मुहावरे के शब्दों को अपने ढंग से सजा कर प्रस्तुत करते हैं। नेताओं के भ्रष्ट और तिकड़मी होने को वे इन मुहावरों में व्यक्त करते हैं–

"बच्चे होंगे मालामाल / खूब गलेगी उनकी दाल
औरों की टपकेगी राल / इनकी मगर तनेगी पाल
मत पूछो तुम इनका हाल / सर्वोदय के नटवर लाल"[3]

यह पूरी कविता (तीनों बंदर बापू के) मुहावरों के सटीक प्रयोग से अत्यंत व्यंजक हो गई है।

भावों को बिम्बों द्वारा मूर्त करने के लिए नागार्जुन उसी तरह के मुहावरों का उपयोग करते हैं। उन्हें संक्षेप में, मुहावरों में बातें करना अच्छा लगता है, कथन अपनी पूरी भाषिक क्षमता के साथ प्रकट होता है, जैसे डरने के बोध को साकार करने के लिए वे लिखते हैं–

"घिग्घी बँध गयी थी.... / साँप सूँघ गया था..... / ..... / अगली बार इसकी खबर लेंगे।"[4]

कुछ अन्य मुहावरों का जिक्र करना ही उचित होगा–

1. पुलाव क्या खाना ख्याली, मन!-और तू चक्कर लगा आया तमाम, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-55
2. पोल खुल गयी... -जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-15
3. बत्तिस-चौंसठ मनसूबे हैं आठ दलों के, हाय अलीगढ़, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-10.
4. (i) खूब गलेगी उनकी दाल-तीनों बंदर बापू के, तुमने कहा था, पृ. सं.- 18
   (ii) औरों की टपकेगी राल-तीनो बंदर बापू के, तुमने कहा था- पृ. सं. 18
5. हमें अँगूठा दिखा रहे हैं-तीनों बंदर बापू के, तुमने कहा था, पृ. सं.-19
6. राशन सीताराम सटक है–घटकवाद की उठा पटक है, तुमने कहा था, पृ. सं.--71
7. चीं-चपड़-फिक्र में पड़ गये कामरेड, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-151
8. गुड़ हो गया गोबर-काओ कीः स्वगत चिन्तन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-160
9. आँखों के तारे,-हत्यारा, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-161
10. चुल्लू भर पानी,-ताशों में ही बचे रहेंगे अब तो राजा-रानी, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-167
11. मुँह की खाई,-नोच रहे दहलीज खीझकर, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-33
12. मरी जा रही नानी–नोच रहे दहलीज खीझकर, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-33
13. उल्टे पड़े दाँव,-अमलेन्दु एम. एल. ए., पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-49
14. डींग मारें–चीलों की चली बारात, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-50

नागार्जुन ने कहीं-कहीं ग्रामीण मुहावरों का भी प्रयोग किया है। इस तरह के मुहावरे स्थानीय बोल-चाल में

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-117
2. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-14
3. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-18
4. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-10-11

प्रयुक्त होते हैं किन्तु कवि ने उन्हें साहित्य में स्थान दिया है, जैसे–

1. पाथ कर कान, फाड़कर नेत्र-अमलेन्दु एम. एल. ए., पुरानी जूतियों का कोरस,पृ. सं.-4
2. कल्लू तेरा नाना लगता है न?-तेरी खोपड़ी में, ऐसे भी हम क्या! एसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-17

(ग) कहावतें

सैकड़ों वर्षों से परीक्षित होकर कहावतें हमारे पास पहुँची हैं, उनमें हमारे पूर्वजों का ज्ञान एवं अनुभव सुरक्षित है। फलाँ परिस्थिति पर फलाँ कहावत लोकमानस को सटीक रूप से अभिव्यक्त करेगा, यही उनकी प्रासंगिकता है। नागार्जुन यथास्थान कहावतों का सही प्रयोग करते हैं। इस सन्दर्भ में वे अपने कथन को लोक मानस में और विश्वसनीय एवं सम्प्रेषणीय तो बनाते ही हैं, परम्परा से प्राप्त भाषा की पूरी व्यंजकता का भी सदुपयोग करते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ कहावतों का उल्लेख किया जा सकता है, 'चन्दना' कविता में सेठानी चन्दना के प्रति ईर्ष्यावश कह उठती है–

"खत्म कर दूँगी / पकड़कर राँड को, / रहेगा न बाँस और बजेगी न बाँसुरी ....."[1]

इसी तरह एक प्रसिद्ध कहावत है–"गुरु गुड़ चेला चीनी'। जब शिष्य गुरु से आगे बढ़ जाता है तब इसका प्रयोग किया जाता है, नागार्जुन ने राजनीतिक प्रसंग में इसका व्यंग्यात्मक प्रयोग किया है–

"गुरु गुड़
चेला चीनी
विदाई की बेला थी बेहद भाव भीनी....."[2]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को सम्बोधित कविता में कवि ने भारत की राजनीतिक स्थिति पर उन्हीं के नाटक की पंक्तियों द्वारा व्यंग्य किया है–

"लाटवाट का पता नहीं अब प्रेसिडेंट है / अपने ही बाबू भइया की गवर्मेंट है
चावल रुपये, सेर, सेर ही भाजी भाजा / नगरी है अँधेर और चौपट है राजा।"[3]

ऐसे और भी कई कहावत उनके काव्य में दिखाई पड़ जाएँगे।

(घ) अलंकार

नागार्जुन का काव्य, भाषा के सभी उपकरणों से लैस है। वे अलंकारवादी नहीं हैं किन्तु जिस तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं उसमें अलंकारों का स्वाभाविक रूप से सम्मिश्रण रहता है। अनुप्रास और रूपक उनके प्रिय अलंकार हैं जिसका वे खूब प्रयोग करते हैं किन्तु इसके साथ-साथ पुनरूक्ति प्रकाश, वीप्सा, मानवीकरण, उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का भी यथासंभव प्रयोग किया है।

i. अनुप्रास

तुलसीदास की तरह नागार्जुन भी अनुप्रास की छटा से कविता के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं; अनुप्रास के कारण कविता का सौन्दर्य तो बढ़ती ही है कई पंक्तियाँ यादगार हो जाती हैं, हर तरह की कविता में बीच-बीच में कवि ने शब्दों की पच्चीकारी द्वारा उसे मजबूत बनाया है। कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं–

1. **"सबल स्वस्थ सुन्दर फुर्तीले स्वामिभक्त"**[4]
2. **"लो, वे कोसी का कछार करते हैं तुमको दान!"**[5]
3. **"सहज सुप्ति के स्वस्थ सेक से"**[6]

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-24*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-64*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-14*
4. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-22*
5. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-51*
6. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-55*

4. "केरल कोंकण-कच्छ कुर्ग पर / कामरूप-काठियावाड़ पर"[1]
5. "सर्व सुखद सुन्दर समाज हो।"[2]
6. "हम सरल-तरल, हम द्रवणशील, निर्लिप्त-निरंजन-निराकार"[3]
7. "चारू चिरंतन चटुल चमत्कृत चरम चेतना चूर्ण"[4]
8. "जालिम जोंकों की जमात पर कस-कस लात जमाऊँ!
   चिन्तक चतुर चचा लोगों को जा-जा निकट चिढ़ाऊँ।"[5]
9. "धूप-धूल-धुआँ धुंध... / बचें बेचारे बचऊ की आँखें"[6]
10. (i) "सरल स्वभाव सदैव, सुधीजन, संकटमोचन"[7]
    (ii) "सुरपुरवासी हिरचंद जू, परम प्रबुद्ध प्रवीन हो"[8]

इन उदाहरणों को देखकर कहा जा सकता है कि कवि को अनुप्रास का प्रयोग रुचिकर लगता है। शब्दों को सही क्रम में वे सायास सजाते हैं और कविता को रोचक बनाते हैं।आधुनिक युग के शायद ही किसी कवि ने इतना सुन्दर उपयोग अनुप्रास का किया होगा। इधर तो गद्य का प्रभाव कविता पर ऐसे ही बढ़ा है लेकिन अभी भी इस तरह के प्रयोग बेकार नहीं हुए हैं। नागार्जुन ने तुलसीदास की भाषिक मर्यादा से सीखकर कुछ हद तक अपनी कलात्मक परम्परा का पोषण किया है। 'योगिराज अरविंद' कविता में तो लगता है कि कवि लगातार अनुप्रासिक शब्दावली का प्रयोग सप्रयास रूप में कर रहे हैं।

ii. रूपक

नागर्जुन 'रूपक' का प्रयोग बहुत जगह करते हैं इससे सम्प्रेषणीयता बढ़ती है और व्यंग्य करने में उन्हें सुविधा होती है। कहीं-कहीं तो पूरी कविता सांगरूपक के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। जीव जन्तुओं के माध्यम से कवि ने उनके जंगली, हिंसक, शोषक प्रवृत्तियों को नेताओं पर आरोपित किया है। रूपक उनके भाव बोध को सबसे अधिक प्रकट करने में सक्षम हैं क्योंकि इससे बिना कहे भी बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है और स्पष्ट बिम्ब भी बनता है। कई उदाहरण दिए जा सकते हैं लेकिन सिर्फ पाँच ही दे रहा हूँ-

1. "छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात"[9]
2. "केन-कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो!"[10]
3. "हम ठहरे तिनकों के टुकड़े
   टहनी हो तुम भारी भरकम डाल की"[11]
4. "धूम रहे हैं दनुज भेड़िये / प्राण टँगे हैं मनुज-मृगों के"[12]

---

1. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-91*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-46*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-09*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-19*
5. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-93*
6. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-121*
7. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-12*
8. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-12*
9. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-50*
10. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-62*
11. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-58*
12. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-147*

5. (i) "हमें शान्ति की सीख दे रहे चील गीध के चचे-भतीजे!"[1]

iii. वीप्सा

रूपक के बाद वीप्सा अलंकार कवि का पसंदीदा अलंकार है। किसी भी शब्द को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए कवि ने उसका प्रयोग दो बार किया है जिससे उसकी सम्प्रेषणीयता बढ़ गई है, कई कविताओं में उनकी इस कला को देखा जा सकता है–

1. "गाँव-गाँव में, नगर-नगर में / गली-गली में, मोड़-मोड़ पर"[2]
2. "कालिदास, सच-सच बतलाना ।
   * * * * *
   खड़े-खड़े तब हाथ जोड़कर
   * * * * *
   परपीड़ा से पूर-पूर हो / थक-थक कर औ चूर-चूर हो"[3]
3. " बार-बार लाखों की भीड़ जुटी / बार-बार सुरीले कण्ठों से लहराई
   जाग उठी तरुणाई....जाग उठी तरुणाई / बार-बार खचाखच भरा गाँधी-मैदान
   बार-बार प्रदर्शन में आए लाखों-लाख जवान... / बार-बार वापस गए
   बार-बार आए / बार-बार आए / बार-बार वापस गए
   हवा में भर उठी इन्कलाब के कपूर की खुशबू / बार-बार गूँजा आसमान
   बार-बार उमड़ आए नौजवान / बार-बार लौट गए नौजवान..."[4]
4. " हरे हरे नये-नये पात..... / पकुड़ी ने ढक लिये अपने सब गात
   पोर-पोर, डाल-डाल "[5]

इन प्रयोगों के आधार पर ही हम देख सकते हैं कि कवि शब्दों का कितना सर्तक प्रयोग करते हैं। एक ही शब्द को बार-बार इस तरह लाते हैं कि उस कविता के सौन्दर्य की श्री वृद्धि तो होती ही है उसके अर्थ के कई आयाम भी खुलते हैं।

iv. मानवीकरण

मानवीकरण अलंकार का भी अच्छा प्रयोग नागार्जुन ने किया है। वे अमूर्त भावों तक को मानव के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. " काली सप्तमी का चाँद ! / पावस की नमी का चाँद ।
   तिक्त स्मृतियों का विकृत विष वाष्प कैसे सूँघता है चाँद!
   जागता था, विवश था, अब ऊँघता है चाँद !
   क्षीण दुर्बल कलाधर की कांति प्रतिपल खो रही है"[6]

---

1. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-163*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-50*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-44-45*
4. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-19-20*
5. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-81*
6. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-41*

2. " सत्य को लकवा मार गया है / वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन, सारी रात / वह फटी-फटी आँखों से
टुकुर-टुकुर ताकता रहता है सारा दिन, सारी रात
कोई भी सामने से आए जाए / सत्य सूनी निगाहों में जरा भी फर्क नहीं पड़ता
पथराई नजरों से वह यों ही देखता रहेगा
सारा का सारा दिन, सारी-सारी रात "[1]
3. " हँसते गुलाब, खिलते गुलाब, कमलों की करता कौन बात
महलों की महँगी बिजली से डरती सन्ध्या डरता प्रभात"[2]
4. " कागज का सिक्का रोता है फूट-फूट कर
भाग गया कोई उसका ईमान लूट कर"[3]
5. " मेघ टहल-बूल रहे हैं / मेरे साथ-साथ / लगता है, मैं मेघवाहन हूँ"[4]

v. उपमा

इसी तरह उपमा का अच्छा प्रयोग कवि ने किया है। नागार्जुन ने कहीं-कहीं आधुनिक उपमा द्वारा भावों को मूर्त किया है। नये उपमा देने में भी वे बेमिशाल हैं। कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं–

1. " हिमानी-सी वे मुझे शीतल लगीं"[5]
2. " नेवले के मुँह-सी मूठ की नफीस छड़ी...."[6]
3. " आह! द्रौपदी की साड़ी-सी फाइल"[7]
4. " कछुओं-सा कर-चरण समेटे / देशी धन्नासेठ"[8]
5. " शीश पर गगन तना है नील, मुकुर-सा"[9]

vi. उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा अलंकार का भी उपयोग कवि ने कहीं-कहीं किया है, जैसे-

1. " अकचका कर उठा, देखा, गगन में नक्षत्रण
श्रान्त श्यामल हृदय पर ज्यों ढलमलाते स्वेदकण
ओढ़ मणि-मुक्ताजड़ित नव नील चीनांशुक निशा
मानो विराट विधान की परिकल्पना में लीन थी"[10]
2. " पीच रोड पर / धूसर दाग लहू के देखे
बेदम बूढ़े हाथी की खुरदरी पीठ पर
मसल गया हो कोई ज्यों सूखा-सूखा सिन्दूर !"[11]

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-30*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-9*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-136*
4. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, पृ. सं.-40*
5. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-32*
6. *नागार्जुन, युगधारा!, पृ. सं.-58*
7. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-96*
8. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-98*
9. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-60*
10. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-32*
11. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ.सं.-86*

vii. यमक

यमक अलंकार का भी उपयोग कवि ने बड़े सुंदर ढंग से एक जगह किया है–

1. " **कुत्ते ने भी कुत्ते पाले, देखो भाई !**
पैदल चलने वालों की तो शामत आई !"[1]

(ङ)कथन भंगिमा

नागार्जुन नाटकीयता और संवाद को प्रामाणिक बनाने के लिए कथन भंगिमा का सहारा लेते हैं। वे पात्रों के बोलने के अंदाज को कविता में उसी रूप में उतारते हैं जिससे पाठ की प्रामाणिकता भाषा और शिल्प के संदर्भ में और स्वाभाविक रूप में सम्प्रेषित हो जाती है। कई कविताओं में बिहारी टोन को देखा जा सकता है। बिहार में 'ठो' शब्द का इस्तेमाल बहुत लोग बोलने के क्रम में करते हैं और कुछ शब्दों को खींचकर बोलते हैं, कवि ने स्वंय अपने और प्रकाशक के सम्बन्ध में जो 'सौदा' (हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं. -57) कविता लिखी है उसमें इसे देखा जा सकता है–

"अबकी बचा लीजिएगा .... एँ हें हें हें
पचास ठो रूपइया लौंडे के नाम पर !"[2]

कुछ अन्य कविताओं के उदाहरण दिए जा रहे हैं -

(1) **"कब्भी नहीं, कब्भी नहीं, कब्भी नहीं"**[3]

(2) **(i) "चोऽप ! बाबा चोऽऽप !!**
(ii) लेकिन, तुमसे कौन कहे / किसके बाप की मजाल है कि / तुम्हें समझाएगा"[4]

(3) **(ii) "क्या तो गड़बड़ घटी 'गरभ' में"**[5]
(iii) पुरुब जनम में जाने कैसे पाप किया था।"[6]
(iii) शुकुर मनाओ / माता जी तुम शुकुर मनाओ।"[7]

(4) **"यह क्या हो रहा है जी? / आप मुँह नहीं खोलिएगा! / कुच्छो नहीं बोलिएगा।"**[8]

(5) **"सच-सच बतलाना / तुमको केत्ता रूपया मिला है?**
कुछ हमको भी दिलवाना भइया।"[9]

(6) **"मोरी मइया, नादान मैं तो / क्या जानूँ हूँ।**
सेठों के लहजे में कहूँ तो-/ "भूल-चूक लेणी-देणी ...."[10]

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-53*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-57*
3. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-55*
4. *नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. सं.-61*
5. *शोभाकान्त (सम्पादक), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-367*
6. *शोभाकान्त (सम्पादक), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-367*
7. *शोभाकान्त (सम्पादक), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-368*
8. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-14*
9. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-24*
10. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-16*

(7) "नब्बे वर्षीय उस बुढ़िया ने कहा था-
हजूर, वो तो परमेसुर के
अउतार रहे ..... हमारे नाना की
लाश को नई-नकोर चादर में
लपेट के अकेले गंगा-किनारे ले गये
अउर धार में बहा दिया
हजूर तुमसे का बतलाऊँ-
वो तो देउता रहे ...."[1]

इस तरह अधिकांश जगहों पर कवि ने ग्रामीण, भदेस, स्थानीय भाषा के बोलचाल के टोन को पकड़ा है। उसमें पात्र के भाषिक स्तर का भी ज्ञान होता है और कविता पढ़ कर यथार्थ जीवन का बोध होने लगता है। कवि ने अनावश्यक परिष्कार करने का प्रयास नहीं किया है।

(च) सम्प्रेषणीयता

नागार्जुन की काव्य भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सम्प्रेषणीयता। स्वंय नागार्जुन ने स्वीकार किया है कि—"**भाषा गहरी और सम्प्रेषणीय होने के साथ-साथ सजग होनी चाहिए। सम्प्रेषणीयता के अभाव में भाषा निर्जीव हो जाती है**"[2] इस वक्तव्य को उन्होंने अपनी काव्य-भाषा का आदर्श बनाया है।

नागार्जुन की भाषा सहज, स्वाभाविक स्पष्ट और सम्प्रेषणीय होती है। व्यापक जनता तक उसकी पहुँच और लोकप्रियता का यही राज है। वह पाठकों को अपनी भाषा लगती है। अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं से लैस वह नागार्जुन के व्यक्तित्व से निःसृत आम आदमी की भाषा है। उदाहरण के लिए 'मनुष्य हूँ' कविता को लिया जा सकता है—

"कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ
अतिमानव या लोकोत्तर किसको कहते हैं—
नहीं जानता!
कैसे जानूँ
सुख-सुविधा में हुलस-हुलस कर
दुख-दुविधा में झुलस-झुलस कर
सब जैसे अपने जीवन को बिता रहे हैं
वैसे मैं भी अपना जीवन बिता रहा हूँ।"[3]

नागार्जुन की काव्य भाषा में अभिधा का सौन्दर्य, लक्षणा का लाघव और व्यंजना का चमत्कार देखने को मिल जाता है। उनकी कई कविताओं में अभिधा की अभिराम अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण के लिए 'पैने दाँतों वाली' (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-130) एवं 'नेवला' (खिचड़ी विप्लव

---

1. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-59*
2. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-44*
3. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-78-79*

देखा हमने, पृ.सं.-46) को देखा जा सकता है। महाकवि देव ने अभिधा को उत्तम काव्य यूँ ही नहीं कहा था, इन कविताओं को पढ़कर इस कथन की सत्यता का बोध होता है। 'पैने दाँतों वाली' की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है -

"धूप में पसर कर लेटी है
मोटी-तगड़ी अधेड़, मादा सूअर .....
जमना-किनारे
मखमली दूबों पर
पूस की गुनगुनी धूप में
पसर कर लेटी है
यह भी हो तो मादरे हिन्द की बेटी है
भरे पूरे बारह थनों वाली"[1]

कवि अगर प्रतिभाशाली हो और उसकी दृष्टि पैनी हो, शब्दों पर पकड़ हो तो कैसी भी कविता सुन्दर हो उठती है। मादा सूअर पर भी सुन्दर कविता लिखी जा सकती है, यह कविता पढ़कर ही जान पड़ता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने इस संदर्भ में लिखा है—**"उनकी शक्ति कथ्य और उसकी प्रस्तुति में है। नागार्जुन अभिधा के ठेठ कवि हैं"[2]**। और उदाहरण देना व्यर्थ है।

इसी तरह उनकी कई कविताओं में लाक्षणिक सौन्दर्य अपने पूरे निखार पर है। 'अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन' कविता की कई पंक्तियों को देखा जा सकता है—

"अधभूखे अधनंगे डोले हरिजन-गिरिजन वन में
खुद तो चिकनी रेशम डाटे उड़ती फिरो गगन में
महँगाई की सूपनखा को कैसे पाल रही हो
शासन का गोबर जनता के मत्थे डाल रही हो।"[3]

उनकी और भी कविताओं में लक्षणा का श्रृगांर दिखाई पड़ता है यहाँ एक ही उदाहरण काफी है।

शब्द की तीसरी महत्त्वपूर्ण शक्ति है—व्यंजना जिसका बड़ा जबरदस्त प्रयोग नागार्जुन ने अपनी व्यंग्य कविताओं में किया है। उनकी कविताओं का एक बड़ा हिस्सा व्यंग्य कविताओं का है। जिसमें व्यंजना शक्ति के ही कारण कविता यादगार हो गई है। जहाँ कथन से अधिक महत्त्वपूर्ण उसकी व्यंजना है। ऐसी कई कविताएँ हैं। सिर्फ दो कविताओं का जिक्र कर रहा हूँ। एक कविता है 'बीते तेरह साल'। आजादी मिले 13 बर्ष बीत गए लेकिन आम जनता की बदहाली देखकर कवि व्यंग्य करने को लाचार हो जाता है, व्यंग्य में वे लिखते हैं—

---

1. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-130*
2. *नामवर सिंह (सम्पादक), आलोचना, जुलाई-सितम्बर-1987, वर्ष-36, अंक-82, पृ. सं.-72*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-48*

"पाँच वर्ष की बनी योजना एक-दो नहीं तीन
कागज के फूलों ने ली है सबकी खुशबू छीन
बलिहारी कागजी खुशी के क्यों न बजाएँ बीन
फटे बाँध से बालू बोले हम भी हैं स्वाधीन
अश्वमेघ का घोड़ा निकला चित है चारों नाल
कौन कहेगा, अजादी के बीते तेरह साल ? "[1]

इसी तरह कवि ने 'नया तरीका' कविता में भ्रष्टाचार के पनपते हुए रूप पर व्यंग्य किया है–

"नया तरीका अपनाया है राधे ने इस साल
बैलों वाले पोस्टर साटे चमक उठी दीवाल
सरकारी गल्ला चुपके से भेज रहा नेपाल
अन्दर टँगे पड़े हैं गाँधी तिलक जवाहरलाल
चिकनी तन, चिकना पहनावा, चिकने चिकने गाल
चिकनी किस्मत, चिकना पेशा, मार रहा है माल
नया तरीका, अपनाया है राधे ने इस साल"[2]

नागार्जुन की काव्य भाषा कथ्यानुकूल, भावानुरूप एवं पात्रानुसार होती है। वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि कथ्य या तथ्य के अनुकूल उसे सम्प्रेषित करने वाली भाषा हो । युग या काल को भी भाषा प्रतिध्वनित करे एवं पात्र के स्तर को भाषा उद्‌घाटित करे। चूँकि पात्र कविता में बातचीत करते हैं इसलिए उनमें संवादधर्मिता है। भाषा का यह रूप ही कविता को संवेदना और शिल्प के स्तर पर जनकविता बनाती है। संवाद से कविता में नाटकीयता आती है। कहना चाहिए कि उनकी कविता एक साथ पठनीय, श्रवणीय, संवादधर्मी और नाटकीय होती है। जिसका पूरा अर्थ तभी खुलता है जब सबकुछ का उद्‌घाटन होता है।

कथ्यानुकूल भाषा

'चन्दना' (युगधारा, पृ. सं.-20-31) एवं 'पाषाणी' (युगधारा, पृ. सं.-36-43) जैसी कविताओं का आधार पुरानी कथा है। इसलिए कवि ने यथासंभव संस्कृत निष्ठ हिन्दी में इन कविताओं को प्रस्तुत किया है।

भावानुरूप भाषा

कहना नहीं होगा कि कविता की भाषा भावों का अनुगमन करती है। नागार्जुन की काव्यभाषा अभिव्यक्त भाव के अनुकूल ही है जैसे 'जयति जयति जय सर्व मंगला' (तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-156) कविता में जब वे जीवन संघर्ष को रेखांकित करते हैं, तो सीधे-सीधे लिखते हैं–

"लटक रही तलवार रात दिन इस गर्दन पर
-बेकारी की / -लाचारी की / -बीमारी की / चैन नहीं, आराम नहीं है

---

1. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-123*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-128*

सपने में भी सुख सुविधा का नाम नहीं है। / तन विषण्ण, मन चिर अशांत है।
पल-पल छन-छन भयाक्रांत है। / कैसे लिखूँ, 'शांति' पर कविता ''[1]

लेकिन इसी कविता में आगे जब वे जवाहरलाल नेहरू को सावधान करते हैं तब वहाँ की भाषा चेतावनी भरी हो जाती है, नागार्जुन लिखते हैं–

''संभलो, संभलो पंडित नेहरू, दानव दल से नाता तोड़ो
आँख मिचौनी बहुत हुई, बस, महाकाल का सत्यानाशी दामन छोड़ो
वतन समूचा रेहन रखकर क्या पाओगे ?
किस मुँह से फिर गाँधीजी के गुण गाओगे ''[2]

इस तरह के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु वह अनावश्यक विस्तार होगा। कुल मिलाकर कहना चाहिए कि कवि को भावानुरूप भाषा लिखने में खूब सफलता मिली है।

पात्रानुकूल भाषा

जिस तरह के पात्र कविता में आते हैं कवि उन्ही की भाषा से कविता को रचते हैं, पात्र पढ़ा-लिखा होगा तो भाषा भी उसी तरह परिष्कृत होगी और पात्र अनपढ़ होगा तो भाषा भी अनगढ़ होगी। कई कविताओं में उनकी इस कलाकारी को देखा जा सकता है। कई उदाहरणों में से दो दे रहा हूँ–

(1) 'तेरी खोपड़ी के अन्दर' कविता में कलीमुद्दीन रिक्शेवाले का वक्तव्य पठनीय है–

''बाबा जी, हम अब चुटैया भी रखेंगे / आठ-दस रोज की
भुखमरी के बाद / हमारे अन्दर / य' अक्किल फूटी है।
*** * * * * * * * * ***
बाबा जी, अब हम / अपना नाम भी तो / ''परेम परकास'' बतलाते हैं...''[3]

(2) 'झुक आए कजरारे मेघ' कविता में पुजारिन भाभी अपने देवर से कहती है-

''तुम्हारे तो मजे ही मजे रहेंगे / धार के उस पार / झूसी की तरफ
रेती पर मारोगे टहलान / फड़कते रहेंगे होठ / चमकती रहेंगी आँखें
हल्की फुहियों से भीगता रहेगा बदन / छेड़ती रहेगी छिनाल पुरवइया
इकलौती बिटिया वाले अधेड़ बाप की भाँति / झुका रहेगा तुम पर बादल
तुम्हारे तो भई मजे ही मजे रहेंगे / ओ मेरे रसिया देवर । ''[4]

वास्तव में यह तो काव्य भाषा है इसलिए इसमें कवि की कारीगरी मिली हुई है लेकिन 'छिनाल पुरवइया' ओर 'रसिया देवर' जैसे शब्द इसे मजाकिया भाभी का कथन सिद्ध कर रहे हैं।

संवादधर्मी कथ्य के अनुरूप बहुत सी कविताएँ संवादधर्मी हैं। जिसमें पाठक, कवि और पात्र मौजूद हैं। 'पाषाणी' (युगधारा, पृ. सं.-36) इसी तरह की कविता है। संवाद का सबसे अच्छा रूप 'तेरी खोपड़ी के अन्दर' कविता में देखा जा सकता है। जहाँ छोटी सी घटना को संवेदनात्मक स्तर पर प्रस्तुत किया गया है। मेरठ में दंगे के बाद मुसलमान रिक्शावाले को वेश बदलकर अपना काम करना पड़ रहा है। कवि से उसका संवाद बड़ा मार्मिक, करुण और विचारोत्तेजक है। ऊपर इस कविता को उद्घृत किया जा चुका है।

---

1. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-156*
2. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-166*
3. *नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !, पृ. सं.-14-15*
4. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-39-40*

नाटकीयता

नागार्जुन की कई कविताओं में नाटकीय तत्त्व विद्‌मान है। लगता है रंगमंच पर 'नाटक' खेला जा रहा है। जैसे एक कविता है– 'अच्छा किया, उठ गए हो दुष्ट' इसमें कवि ने राजकमल चौधरी के बारे में लिखा है–

"उनकी ओर उठाकर तना हुआ हाथ / चीखे तुम ऊँची आवाज में
"चोट्टे हैं ससुरे ! / "पाजी हैं ससुरे ! / "गद्‌दार हैं साले
"पकड़ो, पकड़ो , भागने न पाएँ !"[1]

यह नाटकीय शैली है जिसे नाटकीय भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

नागार्जुन सम्पूर्ण जीवन के कवि हैं इसलिए उनकी कविता में इतनी विविधता है और उस विविधता को साकार करने के लिए उनके पास बहुरंगी भाषा है। जीवन की बहुत सी घटनाओं को उतारने की कला और भाषा है उनके पास । वे कविता में जीवन का पुनर्सृजन करते हैं वे समर्थ कवि हैं इसलिए हर स्तर की भाषा में हर चीज को नया रूप देते चलते हैं।

उनकी काव्य भाषा में मार्मिकता है, सहानुभूति है, करुणा है, व्यंग्य है, झुँझलाहट है, आक्रोश है, गुस्सा है, विडम्बना है, टिप्पणी है, शिकायत है, चुहल है, मज़ाक है, संघर्ष है, चुनौती है। कहने का तात्पर्य है हर तरह के मानवीय भावों की अभिव्यक्ति है।

भाषा के साथ उनका इतना गहरा और बहुस्तरीय रिस्ता है कि लगता है वे भाषा के मजदूर हैं, किसान हैं, राजमिस्त्री हैं, जुलाहा हैं, लोहार हैं, सुनार हैं, खिलाड़ी हैं, मदारी हैं, जादूगर हैं, पहरेदार हैं, योद्‌धा हैं। इसलिए कहीं भाषा का इस्तेमाल करते हैं, कहीं भाषा से खेलते हैं। कहीं मनोरंजन करते हैं कहीं आनन्द उठाते हैं।

छंद, तुक, टेक, ध्वनि, लय, धुन, गीत-संगीत

छंद

नागार्जुन की कविताएँ छंदोबद्‌ध भी हैं और मुक्तछंद में भी। उन्होंने पुराने काव्य रूपों, छंदों का भी उपयोग अपने काव्य में किया है और नए ढंग से कविता कहने में भी वे लाजवाब हैं। कविता रचते समय वे कथ्य और शिल्प पर बराबर ध्यान रखते हैं। छंदोबद्‌ध कविताएँ आम जनता को अधिक देर तक स्मरणीय रहती है और उनको याद करना आसान होता है इसलिए कवि इसपर जोर देते हैं। छन्द का बन्धन कविता को दीर्घजीवी और लोकप्रिय बनाने में सहायक होता है। इसलिए कवि का जोर ऐसी कविताएँ लिखने पर है हालाँकि वे मुक्त छन्द में भी अच्छी कविताएँ लिख लेते हैं। जिसमें आक्रोश या भावभिव्यक्ति का प्रबल प्रवाह होता है, वे मुक्तछंद में ही अच्छी लगती हैं। इस संदर्भ में स्वयं कवि के दो वक्तव्य महत्त्वपूर्ण हैं–

(1) **" मानता हूँ कि एक ही कलछी से सब नहीं चलाया जा सकता पर कुछ भावों को अगर जनता तक पहुँचाना है तो तुकों का, संगीत का, राग का सहारा लेना पड़ सकता है। भाषा की नाटकीयता भी हमारा साथ दे सकती है।"[2]**

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-23*
2. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-116*

(2) **"आपको यदि उनके (जनता) के बीच पहुँचना है तो छंद, तुक बंदी और लय जरूरी है। उनके बीच जाकर और गाकर सुनाने की क्षमता और साहस होनी चाहिए।"**[1]

इन वक्तव्यों से ही पता चलता है कि कवि छंदों का कितना हिमायती है। आधुनिक युग में जब अधिकांश कवि छंदों को छोड़ते रहे तब भी नागार्जुन छंदोबद्ध रचनाएँ करते रहे इसलिए आम जनता तक उनकी पहुँच अधिक है। इस मामले में उनमें परम्परा और आधुनिकता का अद्भुत संगम दिखाई पड़ता है। वे पुराने छंद में भी अपनी कविताएँ लिखते हैं, उन्होंने एक पूरा खण्डकाव्य 'भस्मांकुर' 'बरवै' छंद में लिखा है और कई कविताओं को 'दोहा' छंदों में अभिव्यक्त किया है। कुछ कविताएँ लोक छंदों में हैं। जो कविताएँ छंदोबद्ध नहीं हैं उनमें भी उन्होंने लय, तुक, ताल, धुन एवं ध्वनि का अच्छा ख्याल रखा है इसलिए वे पठनीय और प्रभावोत्तेजक हो गई हैं।

उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण छंदोबद्ध कविताएँ हैं–

(1) बादल को घिरते देखा है- युगधारा, पृ. सं.-67
(2) अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन - तुमने कहा था, पृ. सं.-48
(3) कब होगी इनकी दीवाली - खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-91-94
(4) भारतेंदु - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-12-17
(5) सात नवम्बर - नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृ. सं.-187-192
(6) पुरानी जूतियों का कोरस - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-85
(7) देवी तुम तो काले धन की बैशाखी पर टिकी हुई हो - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-125
(8) नदियाँ बदला ले ही लेंगी –पुरानी जूतियों का कोरस-, पृ. सं.- 160
(9) तीनों बंदर बापू के - तुमने कहा था, पृ. सं.-18
(10) शासन की बंदूक - तुमने कहा था, पृ. सं.-46

कुछ महत्त्वपूर्ण मुक्त छंद की कविताएँ हैं–

(1) मनुष्य हूँ - युगधारा, पृ. सं.-77-79
(2) ओ जन-मन के सजग चितेरे - सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-60
(3) तालाब की मछलियाँ - तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.- 41-47
(4) शपथ - युगधारा, पृ. सं.-46-50
(5) छोटी मछली ..बड़ी मछली - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-150
(6) फूलन कथा - नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-456-461
(7) जाति गौरव गंगादत्त - इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-51
(8) नेवला - खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-46-54
(9) जयति जयति जय सर्वमंगला - तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-156-167
(10) चंदना - युगधारा, पृ. सं.-20-31

---

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-44

इसी तरह कुछ कविताएँ मिश्रित शिल्प में हैं उनकी कुछ पंक्तियाँ छन्दोबद्ध हैं कुछ मुक्त छन्द में, उनमें तुकबन्दी भी है। इनमें से कुछ कविताएँ इस प्रकार हैं–

(1) बिजयी के वंशधर - युगधारा, पृ. सं.- 57
(2) हरिजन गाथा - खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-119-128

तुक / तुक बन्दी

कविता को पठनीय और श्रवणीय बनाने के लिए कवि तुकों का सहारा लेता है। नागार्जुन ने भी बहुत सी कविताओं में तुकों द्वारा कविता को प्रभावशाली बनाने की चेष्टा की है। नागार्जुन स्वंय तुक पर जोर देते हैं-**"मैंने देखा है कि तुकों वाली रचना शैली और प्रखर नाटकीयता का जनता पर जादुई असर होता है। इसी कसौटी पर मैं अपनी रचनाओं को कसता रहा हूँ।"**[1] वे शब्दों को इस ढंग से बाँधकर रखते हैं कि कविता का तुक मिलता चले, वह छन्द में भी हो सकती है और मुक्तछंद में भी। छन्दों में बंधी कविताओं की तुकबन्दी का एक उदाहरण दे रहा हूँ–

(1) **"झुकती स्वराज्य की डाल और / तुम रह जाते दस साल और"**[2]

ऐसी कविताओं की एक लम्बी सूची है यहाँ सिर्फ पाँच कविताओं के नाम दे रहा हूँ–

(1) शैलेन्द्र के प्रति - तुमने कहा था, पृ. सं.-33
(2) लाल भवानी - हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-49
(3) सच न बोलना - हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-47
(4) सिन्धुनद - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-99
(5) अनुरोध - पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-111

इसी तरह मुक्तछंद में तुकबन्दी वाली कविताएँ हैं–

(1) जन-वन्दना - युगधारा, पृ. सं.-9
(2) तुम जगी,संसार जाये जाग! - युगधारा, पृ. सं.-32-33
(3) रजनीगंधा - युगधारा, पृ. सं.-110-111
(4) आये दिन बहार के - तुमने कहा था, पृ. सं.-47
(5) अजगर करे न चाकरी - हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-90-91

'अजगर करे न चाकरी' कविता से एक उदाहरण देना काफी है

"तर्जनी का पोर- / छू गया असमिया अण्डी का छोर
आवर्त-बिवर्त-संवर्त-प्रवर्त-परावर्त / वामावर्त-दक्षिणावर्त अथ च घूर्णावर्त
विलक्षण था संकट... / खादी की धोती, खादी का कुर्ता, सधुअई प्रकट!!"[3]

लेकिन तुक बन्दी का सहारा लेना अलग बात है और सिर्फ तुक बन्दी करना अलग बात! विषय वस्तु ठीक हो तो भाषा को कलात्मक बनाने के लिए तुक का सहारा लिया जा सकता है लेकिन सिर्फ तुकबन्दी करना किसी भी दृष्टि से सराहनीय नहीं है। नागार्जुन ने इस तरह की तुकबन्दी का विरोध किया

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-124*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-9*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-90*

है–"पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं प्राणहीन तुकबन्दी का समर्थन कर रहा हूँ।"[1]

टेक

गीत की एक केन्द्रीय पंक्ति होती है जिसे टेक कहते हैं, गीत में उसका बार-बार उपयोग होता है। नागार्जुन की कई कविताएँ ऐसी हैं जिसमें एक टेक पंक्ति है जो बीच-बीच में आती है, इस टेक से काव्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है और कवि जिस बात पर जोर देना चाहता है बार-बार उसका उपयोग टेक के द्वारा करता है। कवि शब्दों को भी टेक बनाता है और एक पूरे वाक्य को भी। एक उदाहरण है–

(1) **"सुबह-सुबह / तालाब के दो फेरे लगाए / सुबह-सुबह**
रात्रि शेष की भीगी दूबों पर / नंगे पाँव चहलकदमी की
सुबह-सुबह "[2]

इस तरह की अन्य कविताएँ हैं

(1) परेशान हैं कांग्रेसी - खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-100-101
(2) नुक्कड़ जिंदाबाद - खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-111
(3) शासन की बंदूक - तुमने कहा था, पृ. सं.-46
(4) आये दिन बहार के - तुमने कहा था, पृ. सं.-47
(5) तीनों बंदर बापू के - तुमने कहा था, पृ. सं.-18

इनमें से कई में तो हर पंक्ति में टेक का इस्तेमाल किया गया है और कुछ में बीच-बीच में। टेक कविता को भटकाव से बचाती है और उसको एक परीधि के अन्दर रखती है। टेक वाली कविता लोगों की चेतना पर अधिक गहरा प्रभाव डालती है क्योंकि कविता सुनने के बाद 'टेक' ही याद रहता है।

ध्वनि

कई कविताओं में नागार्जुन ध्वनि द्वारा स्थिति, परिस्थिति, पात्र एवं उनके भावों को अभिव्यक्त करते हैं। कविता को जैसा महसूस करते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति के लिए वे ध्वनियों का सहारा लेते हैं जैसे-'प्रेत का बयान' कविता में प्रेत को प्रकट करने समय उन्होंने लिखा है–

"खड़ खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़ हड़
काँपा कुछ हाड़ों का मानवीय ढाँचा
नचा कर लम्बी चमचों-सा पंचगुरा हाथ
रुखी-पतली किट-किट आवाज में "[3]

यहाँ ऊपर की पंक्ति की यह ध्वनि अपनी सार्थकता के कारण अपनी उपयोगिता स्वंय घोषित करती है।

इसी तरह 'भुस का पुतला' कविता में लोमड़ी के भागने से उत्पन्न ध्वनि को इन शब्दों में रूपायित करतें है–

"वह भागी लोमड़ी
सर, सर, सर, सर, खर, खर, खर, खर"[4]

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-117*
2. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-75*
3. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-87*
4. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-94*

कई अन्य कविताओं में उन्होंने दृश्य, बिम्ब, पात्र को नाटकीय रूप से साकार करने के लिए विभिन्न ध्वनियों का प्रयोग किया है, ये कविताएँ हैं–

(1) और तू चक्कर लगा आया तमाम - सतरंगे पंखोंवाली- पृ. सं.-54
(2) झुक आए कजरारे मेघ - प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-40
(3) तालाब की मछलियाँ - तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-44
(4) गुरु गुड़ - तुमने कहा था, पृ. सं.-64
(5) घटकवाद की उठा पटक है - तुमने कहा था, पृ. सं.-60

लय

छंद के साथ लय का महत्त्व बताते हुए कवि नागार्जुन ने कहा है कि–"मैं यह मानता हूँ कि कवि को छंद साधना में दक्ष होना चाहिए। मुक्त छंद में भी लय का ध्यान रखा जाना बहुत जरूरी है।"[1]

नागार्जुन ने शब्दों को सर्जनात्मक रूप देने में लय का भी अच्छा ध्यान रखा है। कविता के शब्द 'रिदम' में हैं पढ़ने पर उनकी लयात्मकता सामने आती है। 'छोटे बाबू' कविता में कवि लिखते हैं–

"आह! द्रोपदी की साड़ी-सी फाइल
एक एक पर एक, एक एक पर एक / लगती जाती ढेर"[2]

एक और कविता का उदाहरण देना काफी होगा। कविता है 'पावस तुम्हें प्रणाम' पंक्तियाँ हैं–

"लोचन अंजन, मानस रंजन" / पावस तुम्हें प्रणाम
ताप तप्त बसुधा दुख भंजन / पावस तुम्हें प्रणाम"[3]

धुन

नागार्जुन कई कविताओं में संगीत का इस्तेमाल करते हैं वे धुनों के माध्यम से अपनी बात को अभिव्यक्त करते हैं। कई कविताओं में ये धुन व्यंग्य को और कलात्मक रूप में प्रकट करते हैं जैसे–'जयति जयति जय सर्वमंगला' कविता की कुछ पंक्तियाँ को देखा जा सकता है–

"तनन तनन तन, तुन तुन तुन तुन
सुबह रामधुन, शाम रामधुन
संस्कृति के नूपुर बजते हैं रुन झुन रुन झुन
छींक-मारने से भी इसमें हो जाता है भारी अ-सगुन"[4]

इसी तरह 'इन्दु जी क्या हुआ आपको' कविता में उन्होनें घोड़े की टाप का जो ध्वनि संकेत प्रस्तुत किया है वह पार्श्व संगीत की तरह प्रभावशाली बन पड़ा है। उसकी अनुगूँज देर तक याद रहती है या चेतना की स्मृति में बनी रहती है–

"सुन रहीं गिन रहीं / गिन रहीं सुन रहीं / सुन रहीं सुन रहीं / गिन रहीं गिन रहीं

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-43*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं. - 96*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.- 85*
4. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं. -162*

हिटलर के घोड़े की एक-एक टाप को / एक-एक टाप को, एक-एक टाप को
सुन रहीं गिन रहीं / एक-एक टाप को / हिटलर के घोड़े की, हिटलर के घोड़े की
एक एक टाप को.....''[1]

'गीत-संगीत'

नागार्जुन ने कई कविताओं को गीति शैली में लिखा है। कविता को गीति शैली में पढ़ने पर उसका पूरा अर्थ और व्यंग्य खुलता है लेकिन ये गीत नहीं हैं, कविता हैं। एक कविता है–'गाँधी टोपी : हैट के प्रति' स्वंय कवि ने इसे एक गीति नाट्य कहा है–

''हाय री हायेऽऽ / कोई आएऽऽ / मेरे को बचाये ऽऽ / लुटी री लुटी
पिटी री पिटी / जली री जली री जली .....
फिर भी निगोड़ी तू रहम ना खायेऽऽ / हाय री हायेऽऽ''[2]

इसी तरह 'पुरानी जूतियों का कोरस' है जो गीति शैली में है और इसमें जूतियों का कोरस चलता रहता है। बीच-बीच में 'सहगान' भी चलता रहता है, एक जगह का सहगान है–

''महल गिरायें प्रवंचना के / फूल खिलायें नव रचना के
अपना दुख हम तो जायेंगे भूल / गमलों में कैद पड़े हैं
उन फूलों पर डालेंगे हम / अपनी प्यारी धूल
धूल हमारी, धूल हमारी, धूल''[3]

एक कविता है 'त्रिमूर्ति' (पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-63) उसमें भी नाटकीयता, संवाद और कोरस है। अंत में पृष्ठभूमि से कोरस का प्रावधान है जिससे पता चलता है कि कवि उसे रंगमंच के लिए लिख रहा है।

गीति शैली में लिखी गई अन्य कविताएँ हैं–

(1) गुपचुप हजम करोगे - इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-20-21
(2) कीर्ति का फल - भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-94

4. अन्य भाषिक उपकरण

(क) बिम्ब

कविता को मूर्त रूप देने के लिए कवि बिम्बों का सहारा लेता है। इसी के माध्यम से कवि चीजों को संवेदना की गहराई तक पहुँचाता है। बिम्ब यथार्थ को साकार कर चीजों को नए रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रोफेसर नित्यानन्द तिवारी ने इसके महत्त्व को समझाते हुए लिखा है–**'' मोटे रूप में कहा जा सकता है-आधुनिक कवि का दृष्टिकोण सौन्दर्यवादी की अपेक्षा जीवनवादी अधिक है। यही कारण है कि कविता में बिम्ब का महत्त्व बढ़ गया है।''[4]** नागार्जुन की कविता विम्बधर्मी कविता है। किसी भी बात को साकार करने के लिए वे बिम्बों का निर्माण करते हैं और पाठकों तक भावों का सम्प्रेषण करते हैं। वे हर तरह के बिम्ब का निर्माण करते हैं और अपनी बात को पाठकों के कल्पनापट पर अंकित कर देते हैं। बिम्बों के महत्त्व को स्वीकारते हुए उन्होंने कहा है–**''बिम्ब और प्रतीक अपने भीतर समय और**

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-11*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.- 153*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.- 86-87*
4. *नित्यानन्द तिवारी, साहित्य का स्वरूप, पृ. सं.-68*

स्थितियों की अनेक व्याख्याओं को छुपाकर भी रखता है और खोलता भी जाता है''[1]

(1) मानवी बिम्ब

(i) श्रमिक वर्ग

नागार्जुन यथार्थ बिम्बों के निर्माण में बेजोड़ हैं। कविता का एक-एक टुकड़ा बिम्बों के कारण स्मरणीय बन जाता है, 'खुरदरे पैर' कविता इसका प्रमाण है–रिक्शेवाले के फटे पैरों का यथार्थ बिम्ब कितना करुणापूर्ण है–

"खूब गये / दूधिया निगाहों में / फटी बिबाइयों वाले खुरदरे पैर
धँस गये / कुसुम कोमल मन में / गुट्ठल घट्ठोंवाले कुलिश कठोर पैर "[2]

रिक्शेवाले और ठेलेवाले के फटे पैर नागार्जुन की दृष्टि में हमेशा गड़ते रहे हैं, एक कविता और है 'हुआ गिट्टियों में रस का संचार', जिसमें फटे हुए पैरों को 'होठों वाले पैर' कहा गया है, बिम्ब के द्वारा वे सड़क और पैरों को इस तरह प्रकट करते हैं-

"हुआ गिट्टियों में रस का संचार / होठों वाले चरण हज़ार-हज़ार
इन्हें चूमते चलते बारम्बार / महानगर को मिला कसैला प्यार
हुआ गिट्टियों में रस का संचार "[3]

वात्सल्य को भी कवि ने बिम्ब में प्रकट किया है, 'गुलाबी चूड़ियों' के बिम्ब से कवि ने एक बच्ची एवं बस चालक के प्रेम को साकार किया है -

"प्राइवेट बस का ड्राइवर है तो क्या हुआ
सात साल की बच्ची का पिता तो है / सामने गीयर से ऊपर
हुक से लटका रक्खी हैं / काँच की चार चूड़ियाँ गुलाबी"[4]

(i) स्त्री वर्ग

नागार्जुन ने कई कविताओं में स्त्रियों को भी बिम्बों में प्रस्तुत किया है। एक जगह गालियों को कवि ने काले-काले भौंरे के बिम्ब में प्रस्तुत किया है–

"होठ हिले / हिलते रहे /..... / निकलते रहे बाहर / एक के बाद एक
काले-काले भौंरे- / गालियाँ, आक्रोश, अभिशाप ।"[5]

प्रवास में पत्नी को कवि ने बिम्ब के माध्यम से ही कविता में याद किया है, 'सिन्दूर से भरी माँग' कवि को आकर्षित करती है, कवि ने लिखा है-

"घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल!
याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल!"[6]

'अहल्या' कविता में कवि ने दो पाटों के बीच पिसते एक नारी का बिम्ब प्रस्तुत किया है-

''समान आकृति वाले - / दो पुरुषों की छाया में / पथरा गई बेचारी।''[7]

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-43*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पांखोंवाली, पृ. सं.-23*
3. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-44*
4. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-25*
5. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-18*
6. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-48*
7. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-62*

एक कविता में नागार्जुन ने किसी घूँघट वाली नारी को बिम्बों में बाँधने की कोशिश की है, उसके सौन्दर्य को इस तरह प्रस्तुत किया है–

"गोरी कलाइयों पर
हरी-हरी चूडियाँ...
पूरा मुखमण्डल
बैंगनी घूँघट की ओट में....
और कुछ दिखाई ना भी पड़े / ना सही
अपना क्या जाता है / अपना क्या आता है....."[1]

(iii) साहित्यकार

छायावाद के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत को कवि ने बिम्बों के माध्यम से ही चित्रित किया है–

"कोटर गत नेत्र, धँसे हुए गाल
उदयशंकर कट के कुंतलीन बाल
गमन मराल का, चितवन चकोर की
कुहासा सी भाषा, सांझ की न भोर की "[2]

कुहासा सी भाषा का जो बिम्ब आँखों के सामने आता है उसे साकार करना कवि का अभिष्ट है। इसी तरह निराला का रेखाचित्र बिम्बों के माध्यम से खींच कर कवि ने उनके रूप को साकार किया है-

"बाल झबरे, दृष्टि पैनी, फटी लुंगी, नग्न तन
किन्तु अन्तर्दीप्त था अकाश सा उन्मुक्त मन
उसे मरने दिया हमने, रह गया घुटकर पवन
अब भले ही याद में करते रहें सौ-सौ हवन"[3]

इसी तरह नागार्जुन ने केदारनाथ अग्रवाल को इतने सुन्दर बिम्बों में बाँधा है कि प्रशंसा के लिए शब्द कम पड़ जाते हैं। पूरी प्रकृति और ग्रामीण सौन्दर्य के प्रतिमान के रूप में उन्होंने केदारनाथ अग्रवाल के लिए लिखा है–

"केन-कूल की काली मिट्टी वह भी तुम हो !
कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो!
ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो।
कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहें, वह भी तुम हो
खड़ी-सुनहली फसलों की छवि-छटा निराली, वह भी तुम हो!
लाठी लेकर कालरात्रि में करता जो उनकी रखवाली, वह भी तुम हो।"[4]

(iv) अन्य पात्र

नागार्जुन की कविता अजीबोगरीब बिम्बों का संग्रह है। नाक-हीन मुखड़े को कवि ने बिम्बों के द्वारा ही कविता में प्रस्तुत किया है-

"सुलग उठी माचिस की तीली / बीड़ी लगा धूँकने नाकहीन मुखड़ा

---

1. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-50*
2. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-81*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-10*
4. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-62-63*

आँखों के नीचे / होठों के ऊपर

दो बड़े छेद थे / निकला उन छिद्रों से धुआँ ढेर-ढेर सा "[1]

कवि ने बिम्बों के द्वारा असहाय, लाचार व्यक्ति का करुण चित्र खींचा है जैसे निराला ने 'भिक्षुक' का खींचा था, 'प्यासी पथराई आँखें' कविता में एक अपंग बूढ़े पहलवान का चित्र बड़ा दर्दनाक है -

''प्यासी पथराई उदास आँखें ... / थकी, बे-आसरा, निराश आँखें.....

*** * * * * * * * * * ***

कहाँ किसी ने देखा बेचारे की तरफ !''[2]

एक कविता है कवि की -'होती बस आँखें ही आँखें' किसी वृदध व्यक्ति का चित्रण कवि ने इस तरह किया है जिसमें सजीव बिम्बों का निर्माण हुआ है -

"बेतरतीब बालों का जंगल / झुर्रियों भरा कुंचित ललाट

खिचड़ी दाढ़ी का उजाड़ घोंसला / कुछ नहीं होता

कुछ नहीं होता / होती बस आँखें ही आँखें"[3]

कई कविताएँ ऐसी हैं जो बिम्बों से ही बनती हैं। ऐसा लगता है कवि एक बड़े बिम्ब द्वारा शब्द चित्र तैयार कर रहा है। वह चित्र ही अपने आप में कथ्य है। कवि ने शब्दों में सिर्फ उसे बँधा है-सजीव और यथार्थ रूप में। 'भुस का पुतला' एवं 'नई पौध' ऐसी ही कविताएँ हैं जो 'युगधारा' में क्रमशः 94 एवं 105 पृष्ठ पर संकलित हैं। यहाँ वे खुद भी अपने आपको शामिल करते हैं। एक बड़े अधिकारी पर व्यंग्य करते हुए कवि ने लिखा है–

"गाँधी नेहरू से गुंजित है मन मन्दिर का आँगन

यही चलाते पटना-दिल्ली का हकूमती इंजन "[4]

(2) देशकाल एवं परिस्थितियों का बिम्बात्मक चित्रण

(i) अभावग्रस्त जीवन

अभावग्रस्त जीवन का करुण बिम्ब कवि ने कई जगहों पर खींचा है, एक पंक्ति से ही सबकुछ जैसे साकार हो उठता है -

''जहाँ कहीं से एक अठन्नी लानी होगी

वर्ना इस चूल्हे के मुँह पर फिर मकड़ी का जाला होगा''[5]

आदमी महानगरों में जानवर की तरह रहता है उसी को बिम्बों में कवि ने 'आदम का तबेला' कविता में प्रस्तुत किया है -

"चुरते रहते है ढाई सौ प्राण / सत्रह कोठरियों में .....

हैजा भी नहीं होता है / काली माई को दया भी नहीं आती है !

*** * * * * * * ***

अंगूठा चूसती है नवजात बच्ची / खिड़की से लटका दिया गया है लाल खिलौना"[6]

---

1. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-24*
2. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-28*
3. *नागार्जुन, सतरंगे पंखों वाली, पृ. सं.-31*
4. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-61*
5. *नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-158*
6. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-18*

(ii) अकाल

कुछ कविताओं में बिम्बों के माध्यम से ही कवि ने अपनी बात को सशक्त रूप में रखा है, 'अकाल और उसके बाद' कविता इसका अच्छा उदाहरण है। केवल कुछ संकेतों के द्वारा कवि ने अकाल और उसके बाद के परिवेश को साकार कर दिया है, बिम्बों ने ही इसे अभिव्यंजनापूर्ण बनाया–

" **कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास**
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
*** * * * * * * ***
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाईं पाँखें कई दिनों के बाद "[1]

एक जगह कवि ने अकाल को गृह मंत्री के सीने पर बैठा हुआ बताया है, इस बिम्ब में जो विडम्बना है वह व्यंग्य को और तीखा बनाता है–

"गृह-मंत्री के सीने पर बैठा अकाल है / भारत-भूमि में प्रजातंत्र का बुरा हाल है।"[2]

(iii) देश-श्मशान

एक जगह और कवि ने अपने देश की दयनीय स्थिति को बिम्बों के माध्यम से चित्रित किया है -

"बहुत बड़ा मसान है / रात-दिन धू-धू करती हैं चिताएँ
आएँ महाकापालिक आएँ / इसी भूमि पर अपना आसन जमाएँ ।"[3]

(iv) आपातकाल

बिम्ब का सबसे महत्त्वपूर्ण काम है आँखों के सामने परिस्थितियों को साकार कर देना । नागार्जुन की भाषा बिम्बधर्मी है वे एक दो पंक्तियों में बिम्ब द्वारा उन चीजों को रूपायित कर देते हैं जो वर्णनात्मक ढंग से लम्बी कविता द्वारा भी संभव नहीं। इन बिम्बों का एक बड़ा काम भी है-कल्पना एवं स्मृति में टँगे रहने का। आपातकाल की खूँखार परिस्थितियों को कवि ने कई कविताओं में बिम्बों द्वारा और मूर्त ढंग से पेश किया है–

"देवी प्रतिमा चण्ड, मुण्ड को लिये साथ में
हुई अवतरित, बन्दूकें हैं दसो हाथ में
लगे बैठने गद्दों पर हिटलर-मुसोलिनी / हुई मूर्छिता भारत माता ग्रामवासिनी ।"[4]

इसी तरह 'सत्य' कविता में उन्होंने पूरे 'आपातकालीन समय' को लकवा मारा हुआ दिखाया है -

"सत्य को लकवा मार गया है / वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन, सारी रात / वह फटी-फटी आँखों से
टुकुर-टुकुर ताकता रहता है सारा दिन, सारी रात"[5]

नई कविता में ऐसी कविताएँ लिखी गई हैं, नागार्जुन ने उसी शैली में आपातकाल को प्रस्तुत किया है। व्यंग्य करने के लिए भी नागार्जुन ने बिम्बों का बखूबी प्रयोग किया है। 'तकली मेरे साथ रहेगी' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-73) में विनोबा भावे पर एवं 'तुनक मिजाजी नहीं चलेगी' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-89-90) में मोरार जी देसाई पर बिम्बात्मक ढंग से कविता लिखी है। इसमें कवि ने 'तकली' के बिम्ब को व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है जहाँ से विनोवा भावे की तटस्थता पर व्यंग्य किया गया है।

---

1. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-32*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-145*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-37*
4. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-15*
5. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-30*

व्यंग्य करने के लिए कवि ने जिन बिम्बों का चयन किया है उनमें बड़ी धार है । आपातकालीन शासन के खिलाफ जनता के विरोध को कवि ने 'शासन की बंदूक' कविता में बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है, उन्होंने विरोध के कोकिल स्वर को बिम्बों में इस तरह प्रस्तुत किया है -

"जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक "[1]

(3) राजनीतिक बिम्ब

(i) राजनीतिक शोषण

नागार्जुन ने शोषण को स्पष्ट करने के लिए हल्के-फुल्के अंदाज में भी व्यंग्य किया है जहाँ हास्य बिम्ब की सृष्टि हुई है। 'घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती' कविता में एक से एक बिम्ब की भरमार है, बिडम्बना और हास्य एक ही जगह चित्रित हैं–

"फटे वस्त्र हैं, घर से बाहर निकलेगी कैसे लजवन्ती
शर्म न आती,मना रहे हैं, वे महँगाई की रजत जयन्ती
*** * * * * * ***
सूट डालकर हाथी मचला / कछुआ इम्पाले पर लेटा "[2]

सरकारी शोषण, कुव्यवस्था और बदहाली को भी कवि ने बिम्बात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है, वे लिखते हैं–

"पेट-पेट में आग लगी है, घर-घर में है फाँका
यह भी भारी चमत्कार है, कांग्रेसी महिमा का
सूखी आँतों की ऐंठन का हमने सुना धमाका
यह भी भारी चमत्कार है, कांग्रेसी महिमा का "[3]

इसी तरह नेताओं के चित्रण में बिम्बों के द्वारा कवि ने व्यंग्य को रुपायित किया है । एक से एक बिम्ब यहाँ मौजूद है और कवि ने उनके द्वारा अपने मन की भड़ास निकाली है -

"बिजली की नीली लाइट में सजा चोर-बाजार
गाँधी-टोपी की किश्ती में कलयुग हुआ सवार
पीच रोड पर मचल रही है तीस हज़ारी कार "[4]

(iii) इंदिरा गाँधी

कई कविताओं में नागार्जुन ने आपातकाल के तानाशाही वातावरण एवं सहमे समय को चित्रित किया है। 'जाने तुम कैसी डायन हो' (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-25) भी बिम्बात्मक कविता है जिसमें इंदिरा गाँधी के शोषित रूप को बिम्बों के माध्यम से कवि ने प्रस्तुत किया है। 'सूरज सहम कर उगेगा' कविता में आपातकाल में डरे हुए भारत का सच्चा चित्र है। कवि ने लिखा है–

''लगता है / हिन्द के आसमान में / अब सूरज सहम कर उगेगा
अपनी किरणें बिखेरेगा डरता-डरता काँपता-काँपता
*** * * * * * * * ***
लगता है / हिन्द के आसमान में / अब सूरज सहमकर उगेगा .....''[5]

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-46*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-56*
3. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-133*
4. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-127*
5. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-27*

'जाने तुम कैसी डायन हो', (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-25) एवं 'हे देवी अब तो बन्द करो ये चुनाव का प्रहसन' (तुमने कहा था, पृ. सं.-50) में कवि ने बिम्बों के माध्यम से इंदिरा गाँधी को चुड़ैल और डायन के रूप में प्रस्तुत किया है।

नागार्जुन वीभत्स बिम्ब प्रस्तुत करने से भी पीछे नहीं हटते। 'यह बदरंग पहाड़ी गुफा सरीखा' कविता में इंदिरा गाँधी को चुड़ैल कहते हुए 'संविधान का पोथा' निगलने वाली बताया है। निगलने की वीभत्स प्रक्रिया बिम्बात्मक है और स्मृति में टँगी रहती है।

(iv) मोरार जी देसाई

उसी तरह मोरारजी देसाई की तुनक मिजाजी और क्रोधी स्वभाव पर वैसा ही बिम्ब बनाते हुए कवि ने लिखा है–

"हाँ, हाँ तुम बूढ़ी मशीन हो / जनता तुमको ठीक करेगी
*** * * * * * * * ***

तरुण हिंद के शासन का रथ / खींच सकोगे पाँच साल क्या?
जिद्दी हो पहले दरजे के / खाओगे सौ-सौ उबाल क्या।"[1]

(v) लाल बहादुर शास्त्री

लाल बहादुर शास्त्री जी की शहादत पर कवि ने जो बिम्ब प्रस्तुत किया है वह उनके व्यक्तित्व और कर्म का दर्पण है–

"रक्ताभ भूमि पर उग आते नव दूर्वांकुर / फिर विश्व-मंच पर मुखरित थे
फिर लगे दमकने हिमगिरि के उत्तुंग सानु / फिर प्रखर हुआ भारत माता का भाग्य-भानु
सब खड़े रहे उसकी बलिवेदी के समीप
लौ चली गयी बिल्कुल ऊपर / रह गया रिक्त आकाशदीप"[2]

(4) आर्थिक बिम्ब

'बताऊँ?' कविता तो बिम्बों से ही बनी है, इसमें कवि नें दरिद्र देश के धनिक, पंचवर्षीय योजना एवं नेहरू जी की विदेशी-वाणिज्य-भक्ति पर व्यंग्य करते हुए बिम्ब बनाया है, उन बिम्बों में ही व्यंग्य मौजूद है–

"'बताऊँ ? / कैसे लगते हैं- / दरिद्र देश के धनिक ?
कोढ़ी- कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण !!
*** * * * * * ***

बताऊँ? / कैसी लगती है-/ पंचवर्षीय योजना? / हिडिंबा की हिचकी, सुरसा की जंभाई।।
*** * * * * * ***

बताऊँ / कैसी लगती है- / नेहरू की विदेशी-वाणिज्य -भक्ति?
धीरोदात्त नायक की सुदर्लभ परकीया-रसाई!!"[3]

(5) प्राकृतिक बिम्ब

(i) आकाश

उनकी कविताओं में प्रकृति के बिम्बों को सहज ही देखा जा सकता है जो पाठकों की स्मृति में टँग जाते हैं–

"प्रतिक्षा की / बहुत जोहा बाट
जेठ बीता, हुई बर्षा नहीं, नभ यों ही रहा खल्वाट "[4]

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-89-90*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-20*
3. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-55*
4. *नागार्जुन, युगधारा, पृ. सं.-53*

खाली आकाश को कवि ने खल्वाट की संज्ञा देकर मानवी बिम्ब बनाया है।

(ii) मेघ

नागार्जुन की कविताओं में प्राकृतिक बिम्बों की भी भरमार है। पूरी प्रकृति कवि के काव्य में अनेक रूपों में विद्यमान है, 'मेघ' का बिम्ब कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है –

झुक आये कजरारे बादल / ..... / दम साध लिए धरती ने"[1]

(iii) बसंत की अगवानी

प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से कवि ने प्रकृति के उल्लसित रूप को 'बसंत की अगवानी' कविता में चित्रित किया है–

"दूर कहीं पर अमराई में कोयल बोली / परत लगी चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृद्ध वनस्पतियों की ठूंठी शाखाओं में / पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकुलों के गुच्छे गदराए / अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया"[2]

(6) अमूर्त भावों का बिम्बात्मक चित्रण

कई जगहों पर नागार्जुन ने अमूर्त भावों, विचारों, ख्यालों को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए बिम्ब का सहारा लिया है।'झाग ही झाग तो हो' (ऐसे भी तुम क्या! ऐसे भी हम क्या!, पृ. सं.-50) कविता में रसबोध के ठस हो जाने का जिक्र 'पंगु' के बिम्ब के माध्यम से किया है। कहाँ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्द की सूक्ष्म अनुभूति और कहाँ उसकी 'पंगुता' किन्तु बिम्ब से कवि ने उसके संवेदनहीनता का सही चित्र प्रस्तुत किया है ।

(i) अहंकार

अहंकार आदमी को अंधा बना देता है, अहंकार के शेष शैया पर लेटकर वह नारायण मोहांध हो जाता है। कवि ने शेष शैया पर लेटे विष्णु के पौराणिक विम्ब को अहंकार जैसे अमूर्त भाव को मूर्त करने के लिए इस्तेमाल किया है–

"हज़ार फन फैलाए / बैठा है मारकर गुंजलक
अहं का शेषनाग / लेटा है मोह का नारायण"[3]

(ii) क्रोध

एक जगह और गुस्से को 'काले नाग' के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है। यह बिम्ब उसी तरह का है जैसे 'अहं का शेषनाग' था। कवि ने लिखा है–

"जाने कितने वर्षों बाद / आज शाम / हम पर / काले साँप का हमला हुआ
यानि / आज शाम / सवा सात बजे / हम पे गुस्से का हमला हुआ।"[4]

लोग सीधे-सीधे नहीं समझेंगे, इसलिए कवि ने इसे समझाकर लिखा है।

(iii) अहिंसा

इसी तरह अहिंसा को बिम्बों में मूर्त करते हुए कवि ने एक नेता को सीख दी है कि–

"हार रे / तेरा पूरा का पूरा धड़ / अब भी बाहर नहीं निकला
भारत माँ का गर्भ द्वार / कहाँ खुला है पूरी तरह तेरी खातिर
हाय रे अभागे, / हाय रे जिद्दी / खा भी तो जल्दी अहिंसा की कसमें
तेरे को वे मिनिस्ट्री में शामिल कर लेंगे

*** * * * * * ***

---

1. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.39*
2. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-33*
3. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-39*
4. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-81*

थोड़ी देर की ही सही / खा ले जल्दी-जल्दी अहिंसा की कसमें
सुगन्धित भाफ वाली अहिंसा की / गरम-गरम ताजा ताजा कसमें
तड़फी हुई कसमें, बघारी हुई कसमें / ओ रे, देर न कर
खा ले कसमें / अहिंसा की कसमें "[1]

कवि ने अहिंसा को सुगन्धित भाप के बिम्ब में प्रस्तुत करके उसे हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

(7) अन्य बिम्ब

(i) पाठशाला

शिक्षा और शिक्षक की बदहाली पर कवि ने 'मास्टर!' कविता में जो बिम्ब प्रस्तुत किया है वह अनूठा है, आज भी सरकारी विद्यालयों और शिक्षकों का यही हाल है, अपनी प्रामाणिकता में यह बिम्ब अद्वितीय है–

"घुन-खाए शहतीरों पर की, बारा खड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेवस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम के साँचे"[2]

(ii) भोपाल गैस कांड

भोपाल गैस कांड जैसी विभिषिका को भी कवि ने बिम्ब द्वारा एक कविता में चित्रित किया है। प्रदूषित हवा का विषैला वातावरण बिम्ब द्वारा साकार हो उठा है। विषैले गैस को कवि ने पिशाच के रूप में प्रस्तुत किया है–

"नृत्यराज पिशाच का चटख विकराल मुखौटा
होता गया और चटख और भी विकराल
आकार बढ़ता गया उसका / दुगुना-चौगुना-अठगुना-दसगुना
नृत्यरत पिशाच की बेडौल वीभत्स काया / आकार में बढ़ती गई "[3]

(iii) पेट

एक कविता में कवि ने आम जनता के भूख को बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जनता इतनी फटेहाल है कि उसके शरीर में सिर्फ 'पेट' ही बचा है, 'कबंध' के माध्यम से कवि ने यहाँ मिथकीय बिम्ब का प्रयोग किया है–

"पेट ही पेट है / डोलता फिरता हूँ / माथे की टोह में–
जाने कब तक भटकना पड़ेगा ? / मैं तो कबंध हूँ।"[4]

(ख) प्रतीक

कविता में सघन व्यंजना के लिए प्रतीक की जरूरत होती है। इसी के द्वारा कवि अपनी बात को इशारे से कहता है। नागार्जुन ने कई कविताओं में प्रतीक का इस्तेमाल किया है। कहीं कुछ पंक्तियों में प्रतीक है तो कहीं-कहीं पूरी कविता प्रतीकात्मक हैं। इन प्रतीकों में आम जनता, नेता, शोषक एवं शोषित हैं। कुछ अन्य प्रतीक भी कहीं-कहीं दीख पड़तें हैं। अधिकांश जगहों पर ये प्रतीक व्यंग्य और शोषण को प्रकट करते हैं। उन्होंने प्रतीकों के द्वारा शोषण के विकराल रूप को स्पष्ट किया है, एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा

---

1. *नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. सं.-29*
2. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-173*
3. *नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-10*
4. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-115*

है- **"सृजनात्मक प्रतिभा और कल्पनाशीलता के आधार पर प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। मैं शोषक और तानाशाह व्यक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना अपना दायित्व मानता हूँ, इसलिए जो प्रतीक अधिक मुखरित होते हैं–दुर्गा, काली, त्रिमूर्ति जैसे प्रतीक हैं, इन्हें अधिक उभारता हूँ ताकि जगह-जगह वह माहौल बने।"**[1]

(1) आम आदमी से जुड़े प्रतीक

(i) साहित्य के सर्वहारा प्रतीक पात्र

सबसे पहले हम उन प्रतीकों को देखेंगे जिनमें आम आदमी, शोषित वर्ग कविता में प्रतीक के रूप में आया है राजनीति करने वाले नेता और उनके कारनामों की कवि ने प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। नागार्जुन सर्वहारा को कभी नहीं भूलते जब कुछ लिखते हैं उनके ध्यान में उनका अस्तित्व होता है। 'प्रेमचन्द' पर कविता लिखते वक्त वे कुछ सर्वहारा साहित्यिक पात्रों का जिक्र करते हैं, वे नाम गरीब मजदूरों के प्रतीक के रूप में प्रयोग किए गए हैं, जैसे–

"हे अन्तर्यामी, हे कथाकार / गोबर महँगू बलचनमा और चतुरी चमार
सब छीन ले रहे स्वाधिकार"[2]

(ii) पेट-आम आदमी का प्रतीक

इसी तरह 'कबंध' कविता में कवि ने मिथकीय प्रतीक के माध्यम से यह बताया है कि आम जनता के पास अब सिर्फ पेट-ही पेट बचा है, वह उसी में परेशान है। अपने ऊपर लेकर कवि ने लिखा है-

"पेट ही पेट है / डोलता फिरता हूँ / माथे की टोह में -
जाने कब तक भटकना पड़ेगा ? / मैं तो कबंध हूँ ।"[3]

(2) राजनीतिक शोषण

एक कविता है–'बाकी बच गया अण्डा' (हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-150)। यह अण्डा यहाँ शून्य का प्रतीक बन गया है। सबकुछ समाप्त हो गया है। उसी को प्रकट करने के लिए कवि ने इस वाक्य का प्रयोग किया है। भारत माता के पाँच बेटों में से जब ईमानदार, देशभक्त बेटा जेल चला गया तो कोई नहीं बचा झण्डा उठाने कि लिए, सिर्फ अण्डा बच गया। इस तरह सामान्य शब्दों को भी नागार्जुन कभी-कभी प्रतीक की तरह इस्तेमाल करते हैं यही उनकी कलाकारी है।

कई कविताओं में नागार्जुन ने नेताओं को प्रतीकों के रूप में चित्रित किया है 'तीस हज़ारी कार' कविता में कवि ने 'कार' को शोषण के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। यह कार नेहरू सरकार के मंत्री की है, जो स्वाधीनता संघर्ष के सिपाही थे, जिन्होंने देश सेवा का व्रत लिया था किन्तु जो अब महँगी कारों में सैर कर रहे हैं, नागार्जुन लिखते हैं –

"सौ का खाना एक खा रहा आती नहीं डकार / नेहरू के इन चेलों की है लीला अपरंपार
पीच रोड पर मचल रही है तीस हजारी कार "[4]

ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिन्हें नागार्जुन प्रतीक के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

'पूरानी जूतियों का कोरस' कविता प्रतीकात्मक है। हर तरह के नेताओं को जूते के माध्यम से कवि ने प्रस्तुत किया है। वे अपने मुँह मियाँ मिट्ठू खुद बनते हैं। वहाँ आम आदमी भी मौजूद है किन्तु वह अपनी बदहाल अवस्था में ही चित्रित है। तमाम तरह के जूते हैं। उनकी खुशहाली-बदहाली का वर्णन है और उसी

---

1. *नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ. सं.-43*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-09*
3. *नागार्जुन, पूरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-115*
4. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाहोंवाली, पृ. सं.-127*

में व्यंग्य है। हर तरह के नेताओं को उनके जूते के माध्यम से कवि ने प्रस्तुत किया है, एक-दो उदाहरण ही काफी है, अहिंसक ग्रामोद्योगी चप्पल का आत्मकथन है–

"साथिन पहुँची राज भवन में / मैं हूँ यहाँ अकेली
उन चरणों की रुची हवाई / चप्पल नई नवेली
बालम हार गये निर्वाचन / राज्यपाल होना था
मुझको तो भूदान यज्ञ के/ सेंटर में रोना था"[1]

गाँधी वादी रूप-रंग अपनाने वाले ढोंगी नेतागण शुरू से ही सत्ता का सत्त लूट रहे हैं। इन्हीं पर कवि ने टिप्पणी किया है। 'भद्दे टायर की चप्पल' का आत्मकथन है–

"मुझे पहनने वाला आज / किसी सूबे का बना मिनिस्टर
उन कदमों को चूम रहे हैं। / कितने जज, कलक्टर।"[2]

इंदिरा गाँधी के तानाशाही रवैये को पेश करने के लिए कवि ने तरह-तरह के प्रतीकों का सहारा लिया है–

(1) 'इसके लेखे संसद-फंसद सब फिजूल है' कविता में वे उन्हें 'बाघों की रानी' एवं 'हिटलर की नानी' कहकर सम्बोधित करते हैं, हिटलर तानाशाही प्रवृत्ति का प्रतीक बन चुका है इसलिए कवि ने इंदिरा गाँधी को उसकी भी नानी सिद्ध करने की कोशिश की है। उसी तरह 'बाघ' जैसे हिंसक जानवर को प्रतीक बनाकर उनके हिंसक स्वभाव को प्रस्तुत किया है–

"जय हो, जय हो, हिटलर की नानी की जय हो ।
जय हो, जय हो, बाघों की रानी की जय हो ।"[3]

(2) इसी तरह एक जगह वे उन्हें 'चुड़ैल' कहते हैं -

"यह चुड़ैल है! / मुस्कानों में शहद घोलकर चुम्बन देती
दिल में तो विषकन्या वाला वही प्यार है
देशी तानाशाही की पूर्णावतार है"[4]

ये विशेषण भी हैं, रूपक भी और प्रतीक भी। कवि ने चुन-चुन कर उनकी तानाशाही प्रवृत्तियों को प्रकट किया है। कवि ने कहीं-कहीं उन्हें 'डायन' एवं 'काली माई' भी कहा है।

'काली' हिन्दू समाज में राक्षसों के संहार की देवी है किन्तु इस मिथकीय पात्र को कवि ने प्रतीक बनाया है–शोषिका का। इंदिरा गाँधी के तानाशाही शासन को चित्रित करने के लिए कवि ने काली माई के संहारक स्वभाव का सहारा लिया है–

"कितना खून पिया है, जाती नहीं खुमारी। / सुर्ख और लंबी है मइया जीभ तुम्हारी।
*** * * * * * * * * * ***
अस्सी प्रतिशत जनता की खातिर कृपाण है / बाकी लोगों की खातिर बस पुष्प वाण है"[5]

इस कविताओं में अंत में आकर कवि ने काली माई के हिंसक उपासकों पर व्यंग्य किया है।

(3) सामाजिक शोषण

(i) सार्वभौम शोषण

कुछ कविताओं में कवि ने सार्वभौम शोषण को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। जीवन में हर जगह

---

1. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-88-89*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-86*
3. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-26*
4. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.- 28*
5. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-36-37*

शोषण मौजूद है, हर जगह शक्तिशाली कमजोर को निगल जाता है उसी प्रवृत्ति को कवि ने 'छोटी मछली बड़ी मछली' कविता में कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। शोषण कई बार संक्रमणशील भी होता है वह शोषित को भी भ्रष्ट बना देता है, इसी को कवि ने मछली के माध्यम से लिखा है–

"तो अन्त में हुआ यह कि / छोटी मछली का वो सींकिया ढाँचा
बड़ी मछली के मल-मार्ग से / एक रोज बाहर आ गया .....
फिर एक अवधि के बाद- / जादुई करिश्में से
छोटी मछली का सींकिया ढाँचा / मझोली मछली का आकार प्रकार
धारण कर गया दिखने लगा / तरुण 'ह्वेल' की भांति
दिखने लगा 'तरुणी ह्वेल' की भाँति
यानी बड़ी मछली की एक 'सम्पूर्ण शिष्या'
तैयार थी उदीयमान मगरमच्छ / यानी मादा मगरमच्छ.....
तैयार थी जी हाँ अब तो / आगे चलकर बड़ी मछली न.-5
या फिर बड़ी मछली न0-7 कहलाएगी।
विश्व के सारे समुद्र इसके चारागाह होंगे।
चारागाह, जी हाँ, लीला निकेतन और / शिकार क्षेत्र.....
फिर तो पानी के छोटे-छोटे जीव / उसके उदर में समाते चले जाएँगे
सुरसा की वो नानी तो यही चाहेगी / कि सारी की सारी दुनिया
उसी के जबड़ों के अन्दर आ जाए!!"[1]

इस शोषण-सूत्र को किसी भी क्षेत्र में, किसी जगह में, कभी भी सच होते देखा जा सकता है। मछलियों के द्वारा कवि ने इसे सिर्फ एक रूप दिया है।

(ii) सामाजिक शोषण

इसी तरह एक कविता है 'जाति गौरव गंगदत्त'। मेढ़क और साँप को प्रतीक बनाकर कवि ने जो कथा प्रस्तुत की है उससे यही सीख मिलती है कि कभी भी अपने सामान्य शत्रु से निबटने के लिए शक्तिशाली शत्रु को आमंत्रित नहीं करना चाहिए नहीं तो उससे निबट कर वह हमसे भी निबटेगा। एक मेढ़क दूसरे मेढ़क से लड़ने के लिए किसी भयंकर साँप को बुलाता है और अपनी समस्या का समाधान करवाता है। साँप उसके शत्रुओं का तो संहार करता है किन्तु खुद उसकी कमजोरी का फायदा उठाकर उसकी ओर भी लालच की नजर रखता है और तब समस्या और विकट हो जाती है। शोषक स्वभाव के लोगों को कभी शरण नहीं देनी चाहिए, वह अत्याचार के गिरफ्त में सबको लेने की कोशिश करता है। साँप के माध्यम से कवि ने बहुत कुछ कह दिया है। प्रतीक कथा की यह बहुत बड़ी खाशियत है–

"दास-दासियों में से / दस को देकर के / चतुर गंगदत्त ने
विदा करना चाहा / महामित्र साँप को! / पर वह गया नहीं
दास दासी कमकर / अनुचर और परिचर / सभी को खा गया
*** * * * * * * * * * ***

---

1. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-152-153

कुछ भी कहना / असंभव था बिल्कुल / संभव था केवल चुपचाप रहना
सभी कुछ सहना / कर देना आगे / जो कुछ भी माँगे
दिन हो या रात हो / कोई भी बात हो / सभी में हाँ करना
उपस्थित रहना अंजलिबद्ध होकर / सदा उद्धत रहना खाने को ठोकर''[1]

शोषण को सहन करना उसे बढ़ावा देना है, गंगदत्त उसका प्रतीक है। कमजोर, लाचार, स्वार्थी होकर भी वह समझदार है। इतिहास गवाह है, वर्तमान साक्षी है जब कभी आतंकवादियों को संरक्षण मिला है वह उसी देश को खा गया है जिसकी सरजमीन पर वह पनपा–पला-बढ़ा। आज सम्पूर्ण विश्व जिस बीमारी की चपेट में आता जा रहा है उसके पीछे इन्हीं स्वार्थी नीतियों का हाथ है जिसमें पहले बुराई को शह देना है और फिर बाद में मेंढक की मौत मरना है। किसी की संदर्भ में आप इस कविता को पढ़कर एक नया पाठ बना सकते हैं। 1944 ई. में लिखी गई इस कविता की यही प्रासंगिकता है कि यह हमें अभी भी सबक सिखाती है।

(iii) स्त्री शोषण

नागार्जुन ने समाज में हो रहे नारी शोषण को कई कविताओं में प्रतीकों के माध्यम से चित्रित किया है। इस प्रसंग में सबसे महत्त्वपूर्ण कविता है 'तालाब की मछलियाँ' । कविता अभिधा से व्यंजना और प्रतीकात्मकता की ओर मुड़ जाती है। घर की महिला जब मछली बनाने बैठती है तो तलते समय उनसे अपनी तुलना करने पर पाती है कि उनकी अवस्था मछलियों से भी बदतर है। मथुरा पाठक बूढ़े हो चुके हैं किन्तु तीसरी शादी करके एक कुँवारी कन्या को अपनी हवेली में कैद कर चुके हैं । वह सामाजिक, आर्थिक गुलामी की चक्की में पिस रही है। तलते वक्त कड़ाही से जो आवाज निकलती है वह कवि और उस युवती के अंतस्तल की आवाज है -

''हम भी मछली, तुम भी मछली / दोनों ही उपभोग वस्तु हैं
इसलिए तो / हमें इन्होंने कैद कर लिया तालाबों में
*** * * * * * ***

इसलिए तो / तुम्हें इन्होंने कैद कर लिया
सात-सात डेवड़ियों वाली हवेलियों में / सुविधा और सामर्थ्य मुताबिक
*** * * * * * ***

आज या कि कल / तुम भी तो निकलोगी बाहर
हवेलियों से, डेविड़यों से / फिर जनपद के खंडनरक ये मिट जाएँगे
शब्दकोष को छोड़ कहीं भी / नहीं 'असूर्यमपश्या' का अस्तित्व रहेगा
औरत दारी रह न जाएगी। ''[2]

इसी तरह 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' कविता में उन्होंने एक ऐसे बाबा (कछुआ) को चित्रित किया है जो भोली भाली स्त्रियों (मछलियों) को फँसाता है और उनका शोषण करता है। जब मछलियाँ उसके पास इस बात का फैसला करवाने आती है, कि हममें से सुन्दर कौन है तब वह दोनों को सुन्दर बताता है। वह स्वंय को सुन्दर कहते हुए उन्हें पास आने को कहता है किन्तु दोनों मछलियाँ भाग जाती हैं। उसको कवि ने जिस तरह चित्रित किया वह बड़ा प्रतीकात्मक है, हमारे समाज में ऐसे बुर्जुग, महंथ, साधु, महात्मा भरे पड़े हैं जिनका अंदाज चापलूसी भरा और इरादे खतरनाक हैं–

---

1. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-55-56
2. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. सं.-45-46

"तुम भी सुंदर हो गंगा की मछली / जमना की मछली, तुम भी सुंदर हो
किन्तु, बनिस्वत तुम दोनों के / मैं अधिक सुंदर हूँ
देखी नहीं होगी ऐसी खूबसूरती / आओ और निकट आओ! / यूँ मत घबराओ!"[1]

(4) आर्थिक शोषण

(i) महँगाई

अन्य प्रतीकों में 'महँगाई की सुरसा' का मुँह फाड़ते जाना यथार्थवादी प्रतीक है। दिन व दिन जिस गति से महँगाई बढ़ती जा रही है वह आम आदमी की परेशानी का सबब बन गई है, सीमित आमदनी में पैसे का अवमूल्यन कितना दुखद और त्रासदायक है इसे कवि ने प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है–

"कागज का सिक्का रोता है फूट-फूट कर
भाग गया कोई उसका ईमान लूटकर
वह रोगी है, वह शिकार है गलित कुष्ठ का
कौन शत्रु है, पता न चलता उसी दुष्ट का?
फूल गया है पेट, करेंसी हाँफ रही है
अर्थनीति कुंडलिनी को भाँप रही है
रूपये की क्या कीमत है, बस सत्रह पैसे!
मँहगाई की सुरसा मुँह फाड़े है कैसे?
* * * * * *
क्रियाहीन चिन्तन का कैसा चमत्कार है
दस प्रतिशत आलोक और बस अंधकार है।"[2]

(5) पौराणिक प्रतीक

एक कविता में कवि ने 'राम' का जिक्र करते हुए कहा है कि वे अपना 'प्रजापालक', 'उद्धारक' रूप भुला चुके हैं यह कविता आज के सत्ताधारी नेताओं पर व्यंग्य भी है जो चुनाव के पहले तो गरीबों को बहलाते फुसलाते हैं ओर बाद में भुला देते हैं। 'राम' यहाँ प्रतीक बन गए हैं, पूरी कविता प्रतिकों के माध्यम से व्यंग्य है–

"सीता हुइ भूमिगत, सखी बनी सूपनखा / बचन बिसर गए देर के, सबेर के।
बन गया साहूकार लंकापति विभीषण / पा गए अभयदान शावक कुबेर के।
बुढ़भस की लीला है, काम के रहे न राम / शबरी न याद रही, भूले स्वाद बेर के!"[3]

'ऊर्जा हमारी अखूट असीम' कविता में महाभारत के पात्रों को शोषण के प्रतीक के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है। नए ढंग से कविता लिखकर कवि ने यह दिखा दिया है कि समय बदलने के साथ प्रतीकों के अर्थ को बदला जा सकता है। कल तक जो महाभारत में नायक और प्रभु बने हुए थे आज खलनायक बने हुए हैं, कविता इस तरह है–

"मुँह की खाएँगे हमीं से / वर्ण शत्रुओं के अर्जुन और भीम
ऊर्जा हमारी / अखूट -असीम / फिर से महाभारत जमा नहीं पाएँगे
दुःशासन-दुर्योधन / काम नहीं आएगा / गीतावाले सारथी का
छलिया प्रबोधन / करेंगे हम / महर्षि वेद व्यास का ही / सचमुच संशोधन

---

1. *नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. सं.-42*
2. *नागार्जुन, हज़ार-हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-136-137*
3. *नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, पृ. सं.-55*

आत्मघात करेगा / सम्राट वो बूढ़ा अंधा / युधिष्ठिर तक नहीं देगा।
अंधे ताऊ की अर्थी को कंधा / अन्त में / विदुर / करेगा / आत्मदाऽऽऽह !
किसी के मुँह से / निकलेगी नहीं आऽऽह !!"[1]

कवि यहाँ महाभारत के पात्रों को, उसकी व्याख्या को नए ढंग से पेश करते हैं और आम जनता के बर-अक्श इन्हें वर्ग शत्रु के रूप में प्रस्तुत करके खलनायक बनाते हैं। महाभारत में सबकी क्रूरता, छल-प्रपंच की कहानी के कारण ही कवि ने उनका अवमूल्यन किया है। क्या भीष्म, क्या द्रोण, क्या अर्जुन, क्या भीम कहीं न कहीं सब अमानवीय हो गए हैं, क्रूर हो गए हैं ।

(6) अन्य प्रतीक

इंदिरा गाँधी और उनके मंत्रीगणों पर व्यंग्य करते हुए एक जगह पर कवि ने उन्हें ताश के 'बेगम' और 'गुलाम' के रूप में प्रस्तुत किया है। यह प्रतीक बड़ा व्यंग्यपूर्ण और धारदार है -

"हुकुम चलाएँगे ताशों के तीन तिगड्डे / बेगम होगी, इर्द गिर्द बस गुल्लू होंगे
मोर न होगा, हंस न होगा, उल्लू होंगे"[2]

चापलूस चमचों को कवि ने उल्लू कहकर सम्बोधित किया है जो प्रतीक भी है 'गुलाम' और 'मूर्ख मंत्री' का।

कई कविताओं में छोटे-छोटे प्रतीकों का प्रयोग कवि ने अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए किया है। जैसे चीन में साम्यवादी व्यवस्था आने पर कवि ने हर्षित होकर लिखा है कि वहाँ 'लाल कमल' खिल गया, यह लाल कमल ही प्रतीक है साम्यवाद का। कवि लिखते हैं–

"मच गई स्वर्ण अमरीका में भारी हलचल
चिन्तित कुबेर के दल-बल अब हो उठे विकल
खिल गये चीन की धरती -तल पर लाल कमल
आ रहा हिमालय-पार यहाँ उनका परिमल "[3]

एक जगह 'अफलातून' शब्द का प्रयोग प्रतीकात्मक ढंग से हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ में एक से एक दिग्गज वक्ता, विद्वानों के लिए यह शब्द प्रतीकात्मक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है–

"चीखें यू.एन.ओ.' में सौ-सौ अफलातून। "[4]

(ग) मिथक

कविता में बिम्ब और प्रतीक की तरह नागार्जुन ने मिथक का भी प्रयोग किया है। अपनी बात को पाठकों की चेतना में सही-सही उतारने के लिए वे मिथकीय पात्रों का सहारा लेते हैं। उन मिथकों के अपने संदर्भ हैं किन्तु कविता में उनके किसी न किसी गुण-दोष का सहारा लिया गया है। जिससे आधुनिक सन्दर्भ और अधिक प्रभावशाली बन सके। नागार्जुन ने व्यंग्य करने के लिए भी इन मिथकीय पात्रों का सहारा लिया है। उनके काव्य में भस्मासुर, जरासन्ध, कबन्ध, बंभोला, लम्बोदर, रणचंडी, वामन, व्योमकेश, त्रिलोचन, महिषासुर, सुरसा, दुर्गा, रावण, सीता, राम, अर्जुन, भीम, कृष्ण, इत्यादि पात्र बीच-बीच में दिखाई पड़ते हैं। कवि ने इन पौराणिक पात्रों को मिथक के रूप में इस्तेमाल किया है, जिससे कविता का अर्थ और व्यंजनापूर्ण हो गया है।

(1) सामाजिक मुद्दों का मिथकीय प्रस्तुतिकरण

(i) आम जनता

भारतीय जनता के भोलेपन को साकार करने के लिए नागार्जुन ने उन्हें 'बम्भोला अनाड़ी' कहा है। यह लोगों

---

1. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-29-30*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-135*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-32*
4. *नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहोंवाली, पृ. सं.-158*

की सरलता है, जो वे नेताओं की जय-जय कार करते हैं और उन्हें पाँच वर्षों के लिए जिताते हैं। नेताओं के भाषण सुनने के लिए जनता जब दौड़ पड़ती है तो कवि का व्यंग्य मिथकीय पात्र द्वारा साकार हो जाता है-

"बुढ़िया पर कैसी फबती है दस हजार की सिल्कन साड़ी
उफ, इसकी बकवास सुनेंगे लाख-लाख बम्भोला अनाड़ी"[1]

'छोटी मछली बड़ी मछली' कविता में कवि ने बड़ी मछली को शोषण का प्रतीक मानते हुए उसे 'सुरसा की नानी' कह कर सम्बोधित किया है। शोषक तो चाहता है कि सब कुछ उसके गाल में समा जाए, वे लिखते हैं–

"फिर तो पानी के छोटे-छोटे जीव / उसके उदर में समाते चले जाएँगे
सुरसा की वो नानी तो यही चाहेगी / कि सारी की सारी दुनिया
उसी के जबड़ों के अन्दर आ जाए ! "[2]

(2) राजनीतिक मुद्दों का मिथकीय प्रस्तुतिकरण

(i) कमजोर नेता

'तुम रह जाते दस साल और' कविता में कवि ने विभिन्न लोगों पर व्यंग्य करते हुए मिथकीय चरित्रों का सहारा लिया है। एक जगह वे लिखते हैं कि यदि जवाहरलाल नेहरू दस वर्ष और शासन में रह जाते तो 'विश्वशान्ति के लम्बोदर' अपने चूहों को वापस ले लेते। कहने का तात्पर्य है कि जो छोटे-छोटे देश विश्व शान्ति के लिए प्रयास रत हैं वे अधिक कारगर नहीं हो पाते क्योंकि अणु युग की भारी मोटर वे नहीं खींच पाते। कवि ने कहा कि निर्बल नेता बड़े देश को निःशस्त्रीकरण के लिए मबजूर नहीं कर सकते। यहाँ लम्बोदर कमजोर नेताओं के लिए प्रयुक्त हुआ है, कविता की पंक्ति इस तरह है–

"निज चूहों को वापस लेते ओ विश्व शान्ति के लम्बोदर
इनसे कैसे चल पायेगी अणु युग की वह भारी मोटर"[3]

(ii) लाल बहादुर

लाल बहादुर शास्त्री की शहादत पर कवि ने उनको श्रद्धांजलि देते हुए उन्हें 'वामन का परमावतार' बताया है। विष्णु ने वामन का रूप धरकर बलि का घमण्ड तोड़ा था कुछ वैसा ही काम छोटे कद के महान नेता लाल बहादुर जी ने पाकिस्तान को हरा कर किया, कवि ने लिखा है -

"वह वामन का परमावतार / अपनी मिट्टी की महिमा का वह कलाकार।"[4]

(iii) इंदिरा-भक्त नेता

पौराणिक सन्दर्भ के जुड़े होने से कविता की अर्थवत्ता सघन हो जाती है। आगे 'महिषासुर' के मिथक का प्रयोग कवि ने किया है। इंदिरा गाँधी के भक्त नेताओं के लिए कवि ने 'महिषासुर' कहा है, कवि ने उन्हें अत्याचारी न कह कर 'महिषासुर' कहना अधिक उचित समझा है जिससे अर्थ के अनेक स्तर पर कविता खुलती है–

"जैसी प्रतिमा, जैसी देवी / वैसे ही नटगोत्र पुजारी
नए सिंह , महिषासुर अभिनव / नए भगत श्रद्धा-संचारी "[5]

(iv) इंदिरा गाँधी

'तुनक मिजाजी नहीं चलेगी' कविता में नागार्जुन ने इंदिरा गाँधी को 'भस्मासुर की माता' कहा है, इसी से पता चलता है कि वे उन्हें क्या कहना चाहते हैं, जैसे भस्मासुर वरदान पाकर वरदान देने वाले को ही भस्म करने की चेष्टा करने लगा था वैसे ही इंदिरा गाँधी आपातकाल लागू करके जनता और प्रजातंत्र का सर्वनाश

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-109*
2. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-153*
3. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-10*
4. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-20*
5. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-125*

करने पर तुली हुई थी। कवि ने उन्हें भस्मासुर की माता कहकर इस मिथक का उपयोग किया है जिससे संक्षेप में ही बहुत कुछ कहना आसान हो गया है और पौराणिक मिथक का भी सदुपयोग हो गया है । यह भाषा की शक्ति को बढ़ाता भी है और पाठक की चेतना में सही अभिव्यक्ति एवं बोध को भी प्रस्तुत करता है। कविता की पंक्ति है–

"नेहरू की पुत्री की क्या थी। / भस्मासुर की माता थी वो"[1]

नागार्जुन ने इतिहास के पात्रों को भी कहीं-कहीं मिथक बनाकर प्रस्तुत किया है। 'शासन की बंदूक' कविता में उन्होंने हिटलर जैसे तानाशाह को मिथकीय प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। इंदिरा गाँधी के तानाशाही घमंड के लिए उन्होंने 'हिटलरी गुमान' का प्रयोग किया है -

"उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक "[2]

इसी कविता में कवि ने इंदिरा गाँधी को 'सुरसा' कहा है। उन्हें इंदिरा गाँधी का आपातकालीन चरित्र इतना खतरनाक लगता है कि वे तरह-तरह के नाकारात्मक मिथकों द्वारा उनका काव्यांकन करते हैं। लिखते हैं–

"सौ कंसों की खीझ भरी है। / इस सुरसा के दिल के अन्दर"[3]

रामायण में सुरसा के नकारात्मक चरित्र को देखते हुए ही कवि ने इसका उपयोग किया है। 'पता नहीं, दिल्ली की देवी गोरी है या काली' कविता में उन्होंने इंदिरा गाँधी को 'नव दुर्गा' कहा है। यहाँ उन्होंने दुर्गा को खून की प्यासी देवी के रूप मे चित्रित करते हुए लिखा है–

"नए राष्ट्र की नव दुर्गा है / नए खून की प्यासी"[4]

(v) लोभ-लाभ

इसी तरह 'नागपाश' एक अस्त्र है जो नाग साँप के खतरनाक बन्धन को दिखाता है। कवि ने इसका इस्तेमाल लोभ-लाभ के खतरनाक बन्धन के लिए किया है जिससे छूटना आसान नहीं है-

"लोभ लाभ के नागपाश में / जकड़ गए है अंग तुम्हारे"[5]

(iv) भारत रत्न

इसी तरह एक महत्त्वपूर्ण कविता है 'भारत-रत्न'। 1990 के बाद जिस तरह 'भारत रत्न' सम्मान दिया गया वह स्वयं उन नेताओं एवं उनके देने वालों के लिए व्यंग्य साबित हुआ। देर से सम्मानित करना, राजनीति से प्रेरित लगा इसलिए कवि ने व्यंग्य करते हुए लिखा है कि तब तो राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध और महावीर भी हैरान-परेशान हो उठे पुरस्कार पाने हेतु। यहाँ तक कि 'गजानन' की नाम की सिफारिस भी की जानी चाहिए थी 'पद्म विभूषण' के लिए। कवि ने इन पुराने पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को भी याद किया है इससे व्यंग्य और तीखा हुआ है। वे लिखते हैं–

"चरम सीमा पर / पहुँच गया है / दारिद्रय विवेक का .... / सौ-सौ प्रतिमाएँ
जाग पड़ी थीं / म्यूजियम सारे के सारे / भास्कर की, मुस्कान में खिले थे
राम और कृष्ण / गौतम बुद्ध और महावीर / सभी में आ गयी थी जान
ये सब के सब 'भारत-रत्न' थे।"[6]

---

1. *नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. सं.-89*
2. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-46*
3. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-127*
4. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-131*
5. *नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. सं.-125*
6. *नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-33*

सम्मान और पुरस्कारों की राजनीति कई विडम्बनाओं को जन्म देती है, कवि ने इन नामों के माध्यम से उसी पर व्यंग्य किया है।

(vii) अमेरिकी राष्ट्रपति

अमेरिकी राष्ट्रपति जान्सन पर नागार्जुन ने दो कविताएँ लिखी हैं। उनमें से 'ख' वाले भाग में उन्होंने उन्हें 'महाकापालिक' कहा है। भारतभूमि को श्मशान के रूप में चित्रित करते हुए उन्होंने उन्हें यहाँ का 'शव-साधक' कहा है। यहाँ का नेता शिव की तरह लेटा है। यहाँ-व्यंग्य में कवि ने उस शिव के रूप का मिथकीय चित्रण किया है जो हर स्थिति में आराम फरमाते रहते हैं, कविता की पंक्तियाँ हैं -

"लेटा है चित व्योमकेश त्रिलोचन धूर्जटि / खाली है विशाल वक्ष"[1]

(3) अन्य मिथक

(i) अर्जुन-भीम-वर्गशत्रु

कई कविताओं में कवि ने पौराणिक पात्रों को मिथकीय प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। अर्जुन, भीम जैसे पात्रों को कवि ने दूसरे रूप में प्रस्तुत कर उनके परम्परागत अर्थ को बदलने की चेष्टा की है, कविता है - 'ऊर्जा हमारी अखूट असीम' (भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-29) कवि ने उन्हे 'वर्ग शत्रु' कहा है।

(ii) वामन

'सबके लेखे सदा सुलभ' कविता में कवि ने अपने आपको 'वामन' कहा है। छोटी आकृति में महानता का काम दिखाने के लिए कवि ने विष्णु के वामन अवतार का सहारा लिया है इससे उन्हें अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने में आसानी हुई है–

"वामन हूँ मैं, मैं विराट हूँ / मैं विराट हूँ, मैं वामन हूँ"[2]

इस तरह हम देखते हैं कि बहुत से मिथकीय पात्र एवं मिथकीय टर्म का इस्तेमाल नागार्जुन के कविता में किया है। कुछ मिथक इस तरह हैं–

(1) 'वैकुंठ लोक'- इस गुब्बारे की छाया में, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-13
(2) 'रामराज' - रामराज, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-62
(3) 'किष्किन्धा'–छतरी वाला जाल छोड़कर- इस गुब्बारे की छाया में, पृ. सं.-68
(4) 'भवानी अन्नपूर्णा' - बुढ़वा मंगल - भूल जाओ पुराने सपने, पृ. सं.-32
(5) 'माखनचोर'-घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती, तुमने कहा था, पृ. सं.-59
(6) 'सूपनखा'- अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन, तुमने कहा था, पृ. सं.-48

मिथकीय प्रयोग से कविता की सम्प्रेषणीयता बढ़ जाती है। कविता पूरे सन्दर्भ के साथ खुलती है क्योंकि पहले से इनका अपना सन्दर्भ होता है। नागार्जुन ने इसका अच्छा उपयोग किया है।

---

1. *नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. सं.-37*
2. *शोभाकान्त (सं.), नागार्जुन रचनावली, भाग-2, पृ. सं.-369*

उपसंहार

नागार्जुन का जन्म 22 जून 1911 ई. को अपने ननिहाल, मधुबनी जिले के 'सतलखा' गाँव में हुआ था। उनका पैत्रिक गाँव 'तरौनी बड़की' है जो दरभंगा जिले के बहेड़ा थाना में पड़ता है। माता-पिता ने नाम रखा 'बैजनाथ मिश्र' (वैद्यनाथ मिश्र), घर में प्यार से कहते थे—'ठक्कन'। नागार्जुन मैथिली में 'यात्री जी' एवं हिन्दी में 'नागार्जुन' नाम से विख्यात हुए।

गरीब, ग्रामीण एवं कृषक कुल में जन्म लेने के कारण आजीवन वे भारत की आम जनता एवं निम्नवर्ग के हिमायती रहे। उन्हीं के हर्ष-विषाद, शोषण-संघर्ष एवं समस्या-सौन्दर्य से जुड़े रहे और उनके जीवन को बेहतर बनाने के लिए संघर्षरत रहे।

नागार्जुन एक संवेदनशील मनुष्य और स्वाभिमानी कवि थे। प्रखर प्रतिभाशाली साहित्यकार होते हुए भी उन्होंने अपने आप को सदैव साधारण मनुष्य माना और सुख-सुविधाओं का त्याग कर प्रतिबद्ध जनकवि की भूमिका का निर्वहन किया।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन एक साथ संवेदनशील मानवतावादी साहित्यकार, प्रखर व्यंग्यकार, व्यवस्था विरोधी कवि एवं यथार्थवादी रचनाकार थे। निम्नवर्ग और आम जनता के साथ खड़े होकर वे उच्च-वर्ग, शोषक-समुदाय एवं भ्रष्ट-राजनेताओं पर प्रहार करते हैं।

नागार्जुन सोच समझकर आम जनता का साथ देते हैं। 'जन पक्षधरता' उनके लिए सबसे बड़ा 'नैतिक मूल्य' है। जो साहित्यकार स्वार्थ की भट्ठी में साहित्य की रोटी सेंकते नजर आते हैं नागार्जुन उनपर व्यंग्य वाण छोड़ते हैं जबकि जनसेवक सामाजिक साहित्यकारों की प्रशंसा करते नहीं अघाते। जहाँ वे सुमित्रनंन्दन पंत, अज्ञेय एवं परिमल-वादियों की कटु आलोचना करते हैं वहीं कालिदास, कबीर, भारतेन्दु प्रेमचंद एवं निराला जी की प्रशंसा तो करते ही हैं उनसे प्रेरणा भी लेते हैं।

इस जीवन और जगत में जहाँ कहीं विषमता शोषण और अत्याचार है वे उससे संघर्ष करते नज़र आते हैं। उनका सौन्दर्य बोध बड़ा सूक्ष्म एवं अद्भुत है, वे वहाँ भी सौन्दर्य देख लेते हैं जहाँ दूसरे कवि नाक-भौं सिकोड़ते हैं। उनकी सौन्दर्यवादी दृष्टि के अंदर श्रमिक वर्ग तो है ही उसमें मानवेतर जीव-जन्तु भी मौजूद हैं।

नागार्जुन व्यापक भारतीय समाज के कवि हैं। उसमें हर वय, लिंग, वर्ग और श्रेणी के लोग हैं। यहाँ शोषक-शोषित, उच्च वर्ग-निम्न वर्ग, दलित, आदिवासी, स्त्री-समाज, विशिष्ट-उपेक्षित, जीव-जन्तु एवं पशु-पक्षी अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उपस्थित हैं।

नागार्जुन इन सबका तटस्थ चित्रण नहीं करते बल्कि उनके जीवन के तमाम पहलुओं को प्रकट कर उसपर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं। आम जनता और निम्नवर्ग के शोषण का पर्दाफाश करते हैं और अत्याचारी शोषकों पर व्यंग्य द्वारा प्रहार करते हैं। गरीबों के जीवन के सुखद एवं सुंदर पहलुओं को साहित्य में अभिव्यक्त करते हुए कवि उनके संघर्ष का समर्थन करते हैं। वे सामाजिक अन्याय और राजनीतिक भ्रष्टाचार का खात्मा करना चाहते हैं ताकि सबको आधारभूत सुख-सुविधा मिल सके। समाज के उपेक्षित पात्रों एवं जीव-जन्तुओं के प्रति उनके मन में अपार करुणा है। उनका पूरा साहित्यिक कर्म इन्हीं लोगों के संघर्ष की दास्तान है।

नागार्जुन सिर्फ राजनीतिक कवि नहीं हैं किन्तु उन्होंने बड़े पैमाने पर राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं। आज का जीवन राजनीति प्रेरित है क्योंकि वह जनता, सत्ता, सरकार और शासन से जुड़ा हुआ है। बिना राजनीतिक-तंत्र को ठीक किए व्यापक परिवर्तन की बात करना बेमानी है इसलिए नागार्जुन आम आदमी के पक्ष में खड़े होकर सतातंत्र से बार-बार टकराते हैं।

स्वतंत्र भारत के राजनीतिक पतन का काला चिट्ठा एक-एक कर कवि खोलते हैं। कैसे सच्चे और देशभक्त नेताओं की हत्या कर दी गई, कैसे महत्त्वाकांक्षी राजनेता भ्रष्ट होते गए और भारतीय राजनीति भ्रष्टाचार के दलदल में धँसती चली गई। इन सब का विश्लेषण करते हुए कवि ने प्रारम्भ से ही सत्ता के शीर्ष पर बैठे राजनेताओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार शुरू कर दिया। कुछ नेताओं को छोड़कर नागार्जुन ने हर युग के अधिकांश बड़े नेताओं की आलोचना व्यंग्य के माध्यम से की। जहाँ उनका व्यंग्य उत्कृष्ट बन पड़ा है वहाँ उनकी प्रशंसा की गई है और जहाँ निकृष्ट बन पड़ा है वहाँ उनकी आलोचना की गई है।

नागार्जुन आपातकाल में कांग्रेसी सत्ता के विरोध में सक्रिय भूमिका में उतरे फलस्वरूप उन्हें जेल जाना पड़ा लेकिन नजदीक से उस आन्दोलन की विसंगतियों को देखकर उन्होंने बाहर आकर उसका विरोध किया , यह उनका विचलन नहीं था। वे पहले भी जनता के साथ थे और बाद में भी, हाँ! आंदोलन के अंदरूनी चरित्र को देखकर वे मौन नहीं रह सके। इस संदर्भ में उनका साहसी और लड़ाकू जनकवि का रूप प्रशंसनीय है।

नागार्जुन का काव्य नेताओं के चरित्र का अजूबा व्यंग्य अलबम है। उसमें पक्ष-विपक्ष, स्थानीय-राष्ट्रीय छोटे-बड़े नेताओं के विविध क्रिया-कलापों का व्यंग्यपूर्ण चित्र अपनी पूरी भाषिक क्षमता के साथ मौजूद है।

नागार्जुन प्रकृति प्रेमी कवि हैं उनका प्रकृति प्रेम आत्मीय, वात्सल्यपूर्ण एवं यथार्थमय है। उसमें अपने देश की मिट्टी की सोधी सुगंध तो है ही उसके बहुरंगी सौन्दर्य का नयनाभिराम रूप भी चित्रित है। कवि का सम्बन्ध प्रकृति से जीवंत, सहज, स्वाभाविक और निश्छल है। वे उसे प्रदूषण से तो बचाना ही चाहते हैं, उन्हें नष्ट भी नहीं होने देना चाहते हैं।

नागार्जुन गाँव की प्रकृति का आकर्षण अपनी रग-रग में महसूस करते हैं। उनकी आत्मा ग्रामीण प्रकृति के रूप, रस, गंध एवं स्वाद को पाने के लिए बेचैन हो उठती है और अवसर मिलने पर वे इन तत्त्वों का भरपूर उपभोग कर तृप्त भी होते हैं। पर्वतीय प्रकृति के प्रति भी उनका लगाव जग-जाहिर है वे वहाँ की प्रकृति को लोक-संस्कृति के साथ चित्रित करते हैं।

नागार्जुन ऋतु प्रेमी जीव हैं। बसंत और पावस उनको प्रिय हैं क्योंकि एक में जीवन का उल्लास व्यक्त होता है, दूसरे में पूरी धरती को नया जीवन मिलता है। वे किसान-चेतना से वर्षा—ऋतु का इंतजार करते हैं।

प्रकृति के अन्य उपादानों में नागार्जुन बादल, नदी, समुद्र, सूरज, चाँद, तारे, पेड़, पत्ती, फूल, फल एवं पक्षी का चित्रण बड़ी आत्मीयता से करते हैं। जो लोग अज्ञानतावश इस सुन्दर प्रकृति को प्रदूषित करते हैं, कवि उनकी भर्त्सना करते हैं।

नागार्जुन के काव्य में शिल्प की विविधता एवं भाषा की बहुस्तरीयता देखने को मिलती है। कथ्य और तथ्य के अनुकूल उन्होंने काव्य का ढाँचा चुना है। कहीं स्थापत्य प्रबंधात्मक है, कहीं खण्डकाव्यात्मक। जरुरत के अनुसार वे कविताओं का रूप रखते हैं—लम्बी, मध्यम एवं छोटी। कुछ कविताएँ छंदोबद्ध हैं, कुछ मुक्तछंद में तो कुछ मिश्रित।

नागार्जुन प्राचीन परम्परा का पोषण भी करते हैं और आधुनिक प्रगतिशील चेतना का विकास भी। उन्होंने 'बरवै' एवं 'दोहे' जैसे प्राचीन काव्य रूपों में काव्य लिखकर अपने परम्परा प्रेम को प्रकट किया। नागार्जुन ने अपनी बात कहने के लिए विविध शैलियों का सहारा लिया है।

नागार्जुन का भाषा पर असाधारण अधिकार है, वे हर तरह की भाषा बड़े स्वाभाविक ढंग से लिखते हैं चाहे बोलचाल की सामान्य भाषा हो या संस्कृतनिष्ठ। उनकी भाषा सम्प्रेषणीय, सर्जनात्मक, नाटकीय एवं हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप है।

उनका भाषिक संस्कार अद्‌भुत है। प्राकृत, पालि, मैथिली, उर्दू, फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी, चीनी, जापानी, तिब्बती एवं अन्य भाषाओं के शब्दों को सटीक इस्तेमाल करते हैं। अपनी भाषा के अलंकार, मुहावरे एवं कहावत से लैस यह भाषा अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ उपस्थित है। उसमें लय, तुक, ताल, धुन, ध्वनि, टेक और संगीत सबकुछ है। यह काव्य भाषा तरह-तरह के बिम्बों, प्रतीकों एवं मिथकों से और अधिक सम्प्रेषणीय एवं अर्थगर्भित हो गई है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

परिशिष्ट 'क' : आधार ग्रंथ
परिशिष्ट 'ख' : संदर्भ ग्रंथ
परिशिष्ट 'ग' : पत्र-पत्रिकाएँ

परिशिष्ट 'क' : आधार ग्रंथ

नागार्जुन :

अपने खेत में (प्रथम संस्करण - 1997)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002.

आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, (प्रथम संस्करण -1996)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002.

इस गुब्बारे की छाया में (प्र. सं.-1989)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002.

ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!, (प्रथम संस्करण-1985)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002.

खिचड़ी विप्लव देखा हमने (द्वि. सं.-1993)
यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली - 110094.

तालाब की मछलियाँ (प्रथम संस्करण - 1975)
अनामिका प्रकाशन, खजांची रोड, पटना - 4.

तुमने कहा था (द्वितीय संस्करण -1988)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

प्यासी पथराई आँखें (संस्करण-1982)
अनामिका प्रकाशन, नया बैरहना, इलाहाबाद-211003.

पुरानी जूतियों का कोरस (द्वितीय संस्करण-1995)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

भस्मांकुर (संस्करण - 1997)
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002.

भूमिजा (तीसरी आवृत्ति-1995), राधाकृष्ण प्रकाशन
प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

भूल जाओ पुराने सपने (प्रथम संस्करण-1994)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

युगधारा (चतुर्थ संस्करण-1994)
यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली-110094.

रत्नगर्भ (संस्करण - 1994)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

सतरंगे पंखोंवाली (प्रथम संस्करण (वाणी) - 1984)
वाणी प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली-110007.

हज़ार हज़ार बाँहोंवाली (संस्करण-1994)
यात्री प्रकाशन, सादतपुर, दिल्ली-110094.

नागार्जुन : मेरे साक्षात्कार (सं.-2000), किताबघर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

शोभाकान्त : नागार्जुन रचनावली (भाग-1-7),पहला संस्करण-2003
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी,
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

परिशिष्ट 'ख' : संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल कैलाशचन्द्र (संकलनकर्ता एवं संपादक) : गृहस्थ गीता, नटराज युवासंघ
2/1 ए, भूपेन्द्र बोस एवेन्यू
(श्याम बाजार), कोलकाता
700004, पं. बंगाल

अग्रवाल महावीर (संपादक) : नागार्जुन : विचार सेतु (प्र. सं. - 1996)
श्री प्रकाशन, एच. 24/7, सिविल लाइन, कसारीडीह,
दुर्ग (म. प्र.), 491001.

अज्ञेय (संकलनकर्त्ता एवं संपादक) : तार सप्तक (छठा संस्करण-1995)
भारतीय ज्ञानपीठ,
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003.

कमल अरूण : कविता और समय (प्रथम संस्करण-1999)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

कमलेश्वर : अपनी निगाह में (प्रथम संस्करण - 1982)
शब्दकार, तुर्कमान गेट, दिल्ली-110006.

कोहली नरेन्द्र (संपादक) : बाबा नागार्जुन, (प्रथम संस्करण - 1987)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

गुप्त प्रकाश चन्द : आज का हिन्दी साहित्य (यथार्थवाद) (सं.-1966)
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

हिंदी साहित्य की जनवादी परम्परा (प्र. सं.-1953)
किताब महल, इलाहाबाद.

जैन निर्मला : कविता का प्रति संसार (प्रथम सं.-1994)
राधकृष्ण प्र. प्रा. लि.,दरियागंज,
नई दिल्ली-110002.

जैन नेमिचन्द्र (संपादक) : मुक्तिबोध रचनावली (1-6), (सं.-1998),
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002.

त्यागी सुरेशचन्द्र : नागार्जुन, (प्र. सं.-मार्च-1984),
आशिर प्रकाशन, रामजीवन नगर, चिलकाना रोड,
सहारनपुर - 247001.

तिवारी अजय : नागार्जुन की कविता (प्र. सं.-1990)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

प्रगतिशील कविता के सौंदर्य-मूल्य (प्रथम सं.-1984)
परिमल प्रकाशन, अल्लापुर, इलाहाबाद-211006.

समकालीन कविता और कुलीनतावाद (प्र. सं.-1994)
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज,
नई दिल्ली-110002.

तुलसीदास : रामचरितमानस (संस्करण-सम्वत्-2048)
गीता प्रेस, गोरखपुर.

द्विवेदी हजारी प्रसाद	:	साहित्य-सहचर (सं.-1996) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1.
दुआ प्रेमलता	:	समाजवादी यर्थाथवाद और नागार्जुन का काव्य, (प्रथम सं.-1997), यात्री प्रकाशन, बी-131, सादतपुर, दिल्ली - 110094
धूमिल	:	कल सुनना मुझे (प्रथम सं.-1977) युगबोध प्रकाशन, वाराणसी.
		संसद से सड़क तक (सं.-1975) राजकमल प्र. प्रा. लि., दिल्ली -110006.
नगेन्द्र (संपादक)	:	हिन्दी साहित्य का इतिहास (मयूर पेपर बैक, सं.-1993),नोएडा, उत्तर प्रदेश-201301.
नवल नन्द किशोर (संपादक)	:	निराला रचनावली (1-8) (पेपर बैक सं.-1992) राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002.
नवल नन्द किशोर	:	शब्द जहाँ सक्रिय हैं (प्र. सं.-1986) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002.
पाण्डेय मैनेजर	:	शब्द और कर्म (सं.-1997), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली -110002.
प्रकाशन विभाग	:	नयी कविता (सं.-1967), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
		भारत 1998 (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ) (सं.-1997) प्रकाशन विभाग,पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001.
प्रसाद गोबिन्द (संकलन एवं संपादन)	:	त्रिलोचन के बारे में (प्र. सं.-1994) वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली -110002.

प्रसाद गोबिन्द : कविता के सम्मुख (प्र. सं.-2002)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली -110002.

प्रेमचन्द : साहित्य का उद्देश्य (सं.-1991)
एस. के. पब्लिशर्स, लाजपतनगर, नई दिल्ली.

प्रेमशंकर : नयी कविता की भूमिका (प्र. सं.- 1988)
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002.

भट्ट प्रकाशचन्द्र : नागार्जुन : जीवन और साहित्य (प्र. सं.-1974)
सेवा सदन प्रकाशन, रामपुरा, मन्दसौर (म. प्र.)

शोभाकान्त : नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ (1,2,3) (सं. -1993)
(संचयन, संपादन एवं संयोजन) वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता (प्र. सं. -1971)
प्रगतिशील प्रकाशन, कटरा, दिल्ली-61

वर्मा धीरेन्द्र : हिन्दी साहित्य कोश(भाग-1-2) (प्र. सं.-1985)
ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी -1

वाजपेई नंददुलारे : नई कविता (प्रस्तोता-डॉ. शिवकुमार मिश्र) (सं.-1976),
मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली

नया साहित्य नए प्रश्न (सं.-1978)
मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि., दिल्ली

शर्मा रामविलास : आस्था और सौंदर्य (सं.-1990)
राजकमल प्र. प्रा. लि., नई दिल्ली-110002

नयी कविता और अस्तित्ववाद (पहला छात्र सं.-1993),
राजकमल प्र. प्रा. लि., नई दिल्ली-110002

शर्मा विष्णुचंद्र : नागार्जुन : एक लम्बी जिरह, (प्र. सं.-2001)
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली -110002.

शुक्ल रामचन्द्र : चिंतामणि (भाग-1) (सं.-1989)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा. लि., इलाहाबाद

हिंदी साहित्य का इतिहास (सं.-सम्वत्-2045)
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

रस-मीमांसा (सं.-सम्वत्-2048)
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

सत्यनारायण : नागार्जुनः कवि और कथाकार (प्र. सं.-1991)
रचना प्रकाशन, 254, शास्त्री सदन,
खूंटेटों का रास्ता, किशनपोल बाज़ार, जयपुर-1.

सिंह केदारनाथ : मेरे समय के शब्द (पहला सं.-1993)
राधाकृष्ण प्र. प्रा. लि., दरियागंज,
नई दिल्ली-110002.

सिंह कुंवर पाल : साहित्य और राजनीति (सं.-1981),
भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली.

सिंह चन्द्रहास : नागार्जुन का काव्य (प्र. सं.- 1996)
राधाकृष्ण प्र. प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली -110002.

सिंह तेज : नागार्जुन का कथा-साहित्य (प्र. सं.-1993)
पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-110032.

सिंह नामवर : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (सं.-1995)
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1.

इतिहास और आलोचना (सं.-1986),
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002.

कविता के नए प्रतिमान (पहला छात्र सं.-1993)
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002.

छायावाद (सं.-1995)
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002.

वाद-विवाद-संवाद (द्वि. सं.-1991),
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002.

सिंह नामवर (संपादक) : नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ (सं-1996)
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली- 110002.

सिंह बच्चन : हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (सं.-1997)
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

सिंह विजय बहादुर (संपादक) : जनकवि (प्र. सं.-1984)
राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

सिंह विजय बहादुर : नागार्जुन का रचना संसार (प्र. सं.-1982)
संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़-245101

सिंह वीरेन्द्र : यायावर कवि नागार्जुन
अंतः अनुशासनीय मूल्यांकन, (प्र. सं.-1995)
रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, म. प्र.-464001

हरदयाल : आधुनिक हिन्दी कविता (प्र. सं.-1993)
शब्दकार, 159, गुरू अमंद नगर (वेस्ट),
दिल्ली - 110092

त्रिपाठी विश्वनाथ : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (सं.-1998)
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली -16

परिशिष्ट 'ग' : पत्र-पत्रिकाएँ

आग्नेय (संपादक) : साक्षात्कार-नवम्बर-1998, मध्य प्रदेश साहित्य परिषद
संस्कृति भवन, वाणगंगा, भोपाल-3, म. प्र.

साक्षात्कार-अगस्त-2001, मध्य प्रदेश साहित्य परिषद
संस्कृति भवन, वाणगंगा, भोपाल-3, म. प्र.

कुमार अजेय (संपादक) : उद्भावना, वर्ष-15, अंक : 51,52
प्रबंधकीय पता-ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया,
जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-95.

जयनारायण (संपादक)	:	कल के लिए, नागार्जुन, अंक-1 (त्रैमासिक) वर्ष-3, अंक-12, अक्टूबर-दिसम्बर-1995 अनुभूति प्लानिंग कालोनी, बहराइच, उत्तर प्रदेश - 271801
		कल के लिए, नागार्जुन, अंक-2 (त्रैमासिक) वर्ष -4, अंक-13, जनवरी-मार्च-1996 अनुभूति प्लानिंग कालोनी, बहराइच, उत्तर प्रदेश-271801
नवल नंद किशोर	:	कसौटी - 8, (संपादक) पुनश्च, 303, पवनपुत्र अपार्टमेंट्स फ्रेजर रोड, पटना-800001.
यादव राजेन्द्र (संपादक)	:	हंस (मासिक), जून-2000 अक्षर प्रकाशन प्रा0 लि0, 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.
वाजपेयी नन्द दुलारे (संपादक)	:	आलोचना (त्रैमासिक), अप्रैल-1957, वर्ष-6, अंक-2, पूर्णांक-22
विष्ट प्रताप सिंह (संपादक)	:	आजकल (त्रैमासिक) जून-1996, वर्ष-53, अंक-2, पूर्णांक-621, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001
सिंह नामवर (संपादक)	:	आलोचना (त्रैमासिक), जुलाई-सितम्बर-1971, वर्ष-19, नवांक-18, (पूर्णांक-55) राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 नई दिल्ली - 110002
		आलोचना (त्रैमासिक), जुलाई-सितम्बर-1987, वर्ष-36, अंक-82, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली-110002
सेतिया सुभाष (संपादक)	:	आजकल (मासिक), जनवरी-1999, वर्ष-55, अंक : 9, पूर्णांक-651, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस नई दिल्ली-110001